॥ ૐ ३ अर्हं ॥

अध्यात्मसार

रचयिता

श्रीमद् યશોવિજયજી ઉપાધ્યાયજી

પંડિત શ્રી વીરવિજયજીના ટબા સહ

પ્રગટકર્ત્તા

શ્રી અધ્યાત્મજ્ઞાનપ્રસારક મંડળ

(હા. મણિલાલ મોહનલાલ પાદરાકર)

વીરાત ૨૪૬૪]   પ્રત ૧૦૦૦   [વિક્રમ સં ૧૯૯૪

મૂલ્ય ૦-૧૨-૦

मुद्रक-शेठ देवचंद दामजी
आनंद प्री. प्रेस—भावनगर.

प्रस्तावना.

श्री यशोविजयजी उपाध्यायना पून्य नामथी जैन समाज सुपरिचित छे तेओ आजे विदेही छता अक्षरदेहे जीवता छे. तेमनी केटलीक अमर कृतिओ जनसमाजमा घेर घेर वंचाय छे. तेमना जेटली लोकप्रियता मेळववा बहु ओछी व्यक्तिओ शक्तिमान् थइ छे जे थोडाएक पवित्र–प्रथम पक्तिना साधुओ जैन समाजे प्रकटाव्या छे तेमाना तेओश्री एक छे

सर्वदर्शनमा तेम जैनदर्शनमा अध्यात्मज्ञान उपर घणो भार मूकवामा आव्यो छे तेनुं कारण छे. अध्यात्मज्ञान सर्व ज्ञानने मोखरे छे. जेणे आत्माने जाण्यो तेणे सर्व जाण्यु, अने जेणे सर्व जाण्यु छता आत्माने न जाण्यो तेणे कइ न जाण्युं धार्मिक विधिविधानो, अनुष्ठानो वगेरे विकासने मार्गे लइ जनारा छे खरा परन्तु आत्मानो पूर्ण विकास अध्यात्मज्ञाननी प्राप्ति सिवाय शक्य नथी आत्मकल्याण ए ज जेनु ध्येय छे तेने माटे अध्यात्म विना आरो नथी

आत्मा गहन छे, अगम्य छे आनदघनजीए पोताना "निशानी क्या बताउ रे, तेरा अगम अगोचर रुप" थी शरु थता एक सुदर पदमा एनी अगम्यता बहु कुशळतापूर्वक बतावी छे तेथी ज महापुरुषो आत्मानु शुद्ध स्वरूप जाणवा सतत प्रयत्नशील रहे छे–जीवन सुद्धा समर्पी दे छे

अध्यात्मरसिकने अन्य कोई विषयमा रस पडतो नथी. अध्यात्मनी तेने लगनी लागे छे श्री यशोविजयजी स्वयं कहे छे के " स्त्रीना अधररूप अध्यात्मशास्त्रना स्वादथी जुवान पुरुषने

जे सुख उपजे छे, ते सुखनो स्वाद अध्यात्मशास्त्रना स्वादनो जे समुद्र छे तेना एक बिंदुमात्र छे" (अ. सा श्लो ९) परंतु तेनी प्राप्ति अत्यंत मुश्केल छे "जेम वनने विषे घर, दरिद्रने धन, अंधारामा उद्योत, तथा मरुदेशने विषे जे पाणी, ते दुःखे पामवा योग्य छे, तेम जे धन्य प्राणी होय छे तेने ज अध्यात्म शास्त्र कलियुगने विषे प्राप्त थाय छे" (अ सा श्लो १७) अध्यात्मनो आ रस अमर्यादित छे, निरवधि छे, अद्भुत छे, अनंत छे "कामनो जे रस ते भोगवता सुधी मधुर छे भक्ता भोजननो रस ते जमवाना वखत सुधी मधुरपणे वर्ते छे, पण अध्यात्मशास्त्रनी सेवानो जे रस ते तो निरवधि छे, केमके ते प्रारंभकाळथी माडीने सदा वधतो ज रहे छे, पण क्यारे विरम न थाय" (अ सा श्लो २१)

अध्यात्म ज्ञाननी प्राप्तिथी ज मनुष्य महान् थइ शके छे ते विना साची महत्ता आवती नथी "जे प्राणी निश्चे अध्यात्मशास्त्रने पाम्या नथी अने आचार्य–पंडितपणु इच्छे छे ते पण व्यर्थ छे" (अ सा श्लो ११)

ग्रंथनी भाषा संस्कृत छे, परंतु संस्कृतना सामान्य ज्ञाता पण समजी शके एवी सरळता अने सुगमता तमनी भाषामा छे तमनी काव्यशक्ति घणा उच्च प्रकारनी छे तेमना गुजराती काव्योमा नजरे पडती मधुरता, प्रासादिकता, शब्दलालित्य अने मनोहर उपमाओ तेमना संस्कृत काव्यमा पण नजरे पडे छे रम्य कल्पनाओथी तेमनी काव्यपंक्तिओ दिपी उठे छे अहिंसाने साचा स्वरूपमा जीवनमा उतारनार जैन वेशधारीमा जे मृदुता अने मार्दवनी आशा राखी शकाय ते मृदुता अने मार्दव तमनी

कलममाथी टपकी रहेला आजे पण देखाय छे. भाषामा तेना लेखकना मानसनु प्रतिबिंब पडे छे. तेमना अनेक लखाणोमांथी आपणे एक एवा यशोविजयनी कल्पनामूर्ति घडी शकीए छीए के जे तेओनी जीवतमूर्ति साथे कदाच अत्यंत निकटनु साम्य धरावती होय.

तेओश्री संस्कृतना महा विद्वान् हता. परंतु विद्वान् के पंडित कहेवडाववा माटे ते जमानामा जडबातोड शब्दो, क्लिष्ट समासो अने भारेखम भाषानो उपयोग करवानी आवश्यकता रहेती हती तेवी भाषा न लखनार पंडितोनी टीकाने पात्र थतो, पंडितोमा तेनी गणना थती नहि श्रीमद् यशोविजयजीनामा पंडितोनी भाषा वापरवानी शक्ति हती, परतु तेमने सामान्य जनसमूहने प्रबोधवो हतो एवी क्लिष्ट भाषा वापरी ग्रंथने समजी न शकाय एवा कोयडारूप बनाववानी तेमनी इच्छा नहोती पंडितोनी टीका पण कातिल हती जनसमूहनी अने पंडितो वच्चेनी भाषानी खेंचाखेंची तेमना पोताना शब्दोमा आ प्रमाणे छे." जे वारे पोतानी मेळे पद वाचता अर्थ सूझे एवा अल्पार्थे ने सुगम पद जो अमे जोडीये तो खल माणस एम कहेशे जे, आ ग्रथमा काइ मार नथी, वळी जो अमे गंभीर अर्थ सहित पद बाधीए तो खल माणस कहेशे के कठण पद बाध्या छे, एनो शु अर्थ करीए ? ए तो मुगानी पारसी छे एवे ग्रंथे कोइने गुण न थाय " (अ सा प्रशस्ति श्लो० ४) तेमनो आखो ग्रथ अवलोकता जणाय छे के तेओश्रीए काव्यनु अने विषयनुं गौरव साचवता छता भाषानी सरळता टकावी राखी छे, अने पंडित–अपडित वच्चे समाधान स्वीकारी समतुला जाळवी बन्नेनी टीकाओथी पर थवा प्रयत्न कर्यो छे.

आ ग्रथ उपर पडित वीरविजयजी गणीए अर्थ भर्या छे श्रीवीरविजयजीना परिचयनी जैन समाजने के साहित्यरसिक वाचकने भाग्येज जरूर छे तेमनी भाषानी मीठाश अने ललित उपमाओमा तओ बीनहरिफ छे तेमनी पूजाओथी भाग्येज जैनतु नानु बाळक पण अजाण हशे पर्युषणना पवित्र दिवसोमा मदिर मदिरे तेमनी पूजाओना मधुर घोप कर्णपटल पर अथडाय छे तेमना काव्योनी प्रासादिकता अने मधुरता पर मात्र जैनो नहि, जैनेतरो पण मुग्ध बन्या छे ए सर्वविदित छे तेमना जेवा समर्थ पुरुषने हाथे लखायेलो टबो बीजा कोइ लेखकना करता वधारे प्रमाणिक होइ शके ए स्वाभाविक छे सस्कृत नहि जाणनार वर्ग उपर तेमनो उपकार अनहद छे

आ युगमा ज्यारे अध्यात्मज्ञान तरफ विशेष बेदरकारी बतावाती जाय छे, ज्यारे अध्यात्मशास्त्रना गहन समुद्रमा डुबकी मारवाने बदले थोडाएक आचारविचारो अने पडिताइ पाछळ मथी धर्मना किनारा उपर घूम्या करवामा आवे छे, ज्यारे धर्म, धर्म-धूरधरो माटे, कुरुक्षेत्रनु मदान पूरु पाडे छे तेवा समये आवा मार्गसूचक ग्रन्थनी खास जरूर छे थोडाएक विचारवत पुण्यात्माओ आ ग्रथ वाची अध्यात्मज्ञानने मार्गे वळशे अने अध्यात्म रसनो यत्किंचित् आस्वाद करवा पण शक्तिवान् थशे तो ग्रन्थ-लेखकनो श्रम सफळ थयो गणाशे

राजमहेल रोड
वडोदरा
ता १-८-३७

नागकुमार मकाती
बी ए, एलएल बी



श्री यशोविजयजी उपाध्यायकृत

अध्यात्मसार (सार्थ)



ऐंद्रश्रेणिनतः श्रीमान्नंदतान्नाभिनंदनः ।
उद्दधार युगादौ यो जगदज्ञान पंकतः ॥ १ ॥

श्रीशांतिस्तांतिभिद्भूयाद्भविनां मृगलांछनः ।
गावः कुवलयोल्लासं कुर्वते यस्य निर्मलाः ॥ २ ॥

अर्थ—इंद्र संबंधी जे श्रेणि तेणे नत के० नमस्कार कर्यो छे जेने एवा अने अष्ट महा प्रातिहार्यरूप लक्ष्मीए करी युक्त तथा युगने आदे जगतने अज्ञानरूप कादवमांथी उद्धार करनार एहवा जे श्रीऋषभदेव भगवान् ते जयवंता वर्तो ! ॥ १ ॥ श्रीशांतिनाथ भगवंत ते भव्यप्राणीओ प्रति संतापना भेदनारा थाओ ! मृगनुं लांछन छे जेने एवा तथा जेम चंद्रकिरण निर्मल थका कुमुदिनीने विकसित करे छे तेम जेनी गाव के० वाणी ते पृथ्वीने विषे उल्लास करे छे ॥ २ ॥

श्रीशैवेय जिन स्तौमि भुवन यशसेव यः ।
मास्तेन मुखोत्थेन पाचजन्यमपूपुरत ॥ ३ ॥

जीयात् फणिफणप्रात सक्रातततनुरेकदा ।
उद्धर्तुमिव विश्वानि श्रीपार्श्वोबहुरूपभाक् ॥ ४ ॥

अर्थ—शिवाराणीना पुत्र श्रीनेमनाथजी तेमने स्तवु छु जे भगवते पोताना यशे करीने जेम जगतने भर्यु छे तेमज पोताना मुखथी प्रगट्यो जे वायु तेणे करीने पाचजन्य नाम शखने पूरीने तेनो नाद कीधो ॥ ३ ॥ फणी के० शेषनाग तनी फणना प्राते जे मणी तेने विषे सक्रम्यु जे शरीर तेणे करीने त्रण जगतनो उद्धारज जाणे करता होयनी एवा जे श्रीपार्श्वनाथ बहुरूपना कर्ता ते जयवता वर्तो ॥ ४ ॥

जगदानदन स्वामी जयति ज्ञातनदन. ।
उपजीवति यद्वाचामद्यापि विबुधा सुधाम् ॥५॥

एतानन्यानपि जिनान्नमस्कृत्य गुरूनपि ।
अध्यात्मसारमधुना प्रकटीकर्तुमुत्सहे ॥ ६ ॥

अर्थ—जगतने आनदना करनार, वली जेहनी अमृतसरिखी वाणीने हजी सुधी पडित लोको सेवे छे, अगीकार कर छे एहवा ज्ञातनदन जे श्री वीरजिन ते जयवता वर्तो ॥५॥ ए पाचे परमेश्वरने तथा बीजा पण जिनोने तथा पोताना गुरुने नमस्कार करीने अध्यात्मनो सार जे रहस्य ते प्रगट करवाने हु उत्साह करु छु ॥ ६ ॥

शास्त्रात्परिचिता सम्यक् सप्रदायाच धीमता ।
इहानुभवयोगाच्च प्रक्रिया कामपि ब्रुवे ॥ ७ ॥

योगिना प्रीतये पद्यमध्यात्मरसपेशलं ।
भोगिनां भामिनीगीतं सगीतकमयं यथा ॥ ८ ॥

अर्थ—घणा शास्त्रोथी भली रीते परिचयेकरीने ने वली पंडितलोकोना संप्रदायथकी जे अध्यात्मशास्त्रने विषे अनुभव थयो तेथकी हुं काइक सक्षेप मात्र प्रस्तावना करु छु ॥७॥ जे रीते भोगीपुरुषने स्त्रीना गीतसंगीत प्रियकारी लागे छे ते रीते योगीश्वर पुरुषने प्रीतिना अर्थे अध्यात्मरसे करीने मनोहरकारी एवो आ ग्रन्थ पद्यरचनाये करु छु ॥ ८ ॥

अथ अध्यात्ममाहात्म.

कांताधरसुधास्वादा यूनां यज्जायते सुखं ।
बिंदुः पार्श्वे तदध्यात्मशास्त्रस्वादसुखोदधेः ॥९॥
अध्यात्मशास्त्रसंभूत संतोषसुखशालिनः ।
गणयंति न राजानं न श्रीदं नापि वासवम् ॥१०॥

अर्थ—स्त्रीना अधररूप अमृतना स्वादथी जुवान पुरुषने जे सुख उपजे छे ते सुखनो स्वाद अध्यात्मशास्त्रना स्वादनो जे समुद्र छे तेना एक बिंदुमात्र छे ॥ ९ ॥ जे प्राणीने अध्यात्मशास्त्रथी मनोहर संतोषरूप सुख प्राप्त थयु ते प्राणी राजाने तथा धनदने अने इंद्र सरिखाने पण लेखामा गणतो नथी ॥ १० ॥

यः किलाशिक्षिताध्यात्मशास्त्रः पांडित्यमिच्छति ।
उत्क्षिपत्यंगुलीं पंगुः स स्वद्रुफललिप्सया ॥ ११ ॥
दंभपर्वतदंभोलिः सौहार्दां बुद्धिचंद्रमाः ।
अध्यात्मशास्त्रमुत्ताल मोहजालवनानलः ॥ १२ ॥

अर्थः—जेम कल्पवृक्षना फलने लेवानी इच्छाये पांगलो पुरुष आंगली ऊंची करे छे ते जेम व्यर्थ छे, तेम जे प्राणी निश्चे

अध्यात्मशास्त्रने पाम्या नथी अने आचार्य-पडितपणुं इच्छे छे ते पण व्यर्थ छे ॥ ११ ॥ कपटरूप पर्वतने भेदवाने वज्र समान, मैत्रता भावरूप समुद्रनी वृद्धि करवाने चद्रमा समान एहवु अध्यात्मशास्त्र ते वृद्धि पामलु एहवु जे मोहजालनु वन तेहने बालवाने अर्थे दावानल समान छे ॥ १२ ॥

अध्वा धर्म्मस्य सुस्थ. स्यात्पापचौर. पलायते ।
अध्यात्मशास्त्रसौराज्ये न स्यात्कश्चिदुपप्लवः॥१३॥

येपामध्यात्मशास्त्रार्थ तत्त्व परिणत हृति ।
कषायविषयावेशक्लेशस्तेषा न कर्हिचित् ॥१४॥

अर्थ—अध्यात्मशास्त्रनु भलु राजप्रवर्तते थके कशोये उपद्रव थाय नहीं, धर्मनो मार्ग सुगम थाय अने पापरूप चोरटा नासी जाय ॥ १३ ॥ जे प्राणीना हृदयने विषे अध्यात्मशास्त्रना अर्थनु तत्त्वत· ज्ञान थयु छे तेने कपायरूप विषयना वेगनो क्लेश ते कदी ए न थाय ॥ १४ ॥

निर्दयः कामचडाल पडितानपि पीडयेत् ।
यदि नाध्यात्मशास्त्रार्थबोधयोधकृपा भवेत् ॥१५॥

विषवल्लिसमा तृष्णा वर्धमाना मनोवने ।
अध्यात्मशास्त्रदात्रेण छिदति परमर्षय. ॥ १६ ॥

अर्थ—जो अध्यात्मशास्त्रना अर्थना बोधनी कृपा पंडित जेवान पण न होय तो निर्दय एवो जे कामरूप चडाल ते पडितने पण पीडा कर्या विना रहे नही ॥ १५ ॥ जे परमऋषीश्वर छे ते अध्यात्मशास्त्ररूप दातरडे करीने मनरूपी वनने विषे वृद्धि पामती एहवी तृष्णारूप झेहरनी वेली तेने छेदी नाखे छे ॥ १६ ॥

वने वेश्म धन दौस्थ्ये तेजो ध्वाते जल मरौ ।
दुरापमाप्यते धन्यैः कलावध्यात्मवाङ्मयं ॥१७॥

वेदान्यशास्त्रवित् क्लेश रसमध्यात्मशास्त्रवित ।
भाग्यभृद्भोगमाप्नोति वहते चदन खर. ॥ १८ ॥

अर्थ—जेम वनने विषे घर, दरिद्रिने धन, अधारामा उद्योत तथा मरुदेशने विषे जे पाणी, ते दुःखे पामवा योग्य छे, तेम जे धन्य प्राणी होय छे तेनेज अध्यात्मशास्त्र कलियुगने विषे प्राप्त थाय छे ॥ १७ ॥ वेदना जाण तथा बीजा शास्त्रना जाणनारा ते क्लेशना भोक्ता छे, अने रसना भोक्ता ते अध्यात्मशास्त्रना जाणनारा छे ए रसनो भोग तो जे भाग्यवत होय तेज पामे, अने जे गधेडो होय ते तो मात्र चदनना भारने उपाडे एटलुज ॥ १८ ॥

भुजास्फालनहस्तास्यविकाराभिनयाः परे ।
अध्यात्मशास्त्रविज्ञास्तु वदत्यविकृतेक्षणाः ॥१९॥

अध्यात्मशास्त्रहेमाद्रि मथितादागमोदधेः ॥
भूयासि गुणरत्नानि प्राप्यते विबुधैर्न किम् ? ॥२०॥

अर्थ—भुजाना आस्फोट करवे करीने, वली हाथने तथा मुखने विकारे करीने, इत्यादिक नाटिकना अभिनय करवे करीने भोगी पुरुष सुख करी माने छे, अने अध्यात्मशास्त्रना जाण जे पुरुष छे, ते तो अविकारी नेत्रना धणी इंद्रियना विकार रहित छे ॥ १९ ॥ अध्यात्मशास्त्ररूप जे हेमाचल पर्वत तेणे मथ्यो छे आगमरूप समुद्र ते थकी नीकल्या घणा गुणरूपीया जे रत्न ते तो विबुध जे पडित लोक तेओज पामे छे ॥ २० ॥

रसोभोगावधि कामे सद्भक्ष्ये भोजनावधि ।
अध्यात्मशास्त्रसेवाया रसोनिरवधिः पुन. ॥२१॥

कुतर्कग्रथसर्वस्व गर्वज्वरविकारिणी ।
एति दग्निर्म्मलीभाव मध्यात्मग्रथभेषजात् ॥२२॥

अर्थ—कामनो जे रस ते भोगवता सुधी मधुर छे, भला भोजननो जे रस ते जमवाना वखत सुधी मधुरपणे वर्त्ते छे, पण अध्यात्मशास्त्रनी सेवानो जे रस ते तो निरवधि छे केमके ते प्रारभकालथी माडीने सदा वधतो ज रहे छे, पण क्विार निरस न थाय ॥ २१ ॥ कुतर्कशास्त्रना सर्व रहस्यनो जे अहकार, ते रूपी ताव तेहना विकारवाली थइ एहवी जे दृष्टि ते अध्यात्मशास्त्ररूप औषधना योगथी निर्मलपणाने पाम छे ॥२२॥

धनिना पुत्रदारादि यथा ससारवृद्धये ।
तथा पाडित्यदप्ताना शास्त्रमध्यात्मवर्जित ॥२३॥

अधेतव्य तदध्यात्मशास्त्र भाव्य पुन पुन ।
अनुष्ठेयस्तदर्थश्च देयो योग्यस्य कस्यचित् ॥२४॥

अर्थ—धनवत जनने जेम पुत्र अने स्त्री ते ससारनी वृद्धिना कारण छे तेम अभिमाने भरायेला पडित लोकने अध्यात्मशास्त्र विना मात्र ससारनी वृद्धि छे ॥ २३ ॥ ते माटे अध्यात्मशास्त्रने भणवु, वली वारवार हृदयने विषे भाववु, एना अर्थनु वारवार चितन करवु अने जे पुरुषो योग्य होय तेनेज शीखववु–पुस्तक आपवु ॥ २४ ॥ ए रीते अध्यात्मशास्त्रना महात्म्यनो पहलो अधिकार पूरो थयो

अथ अध्यात्म स्वरूप.

भगवन् ! किं तदध्यात्म यदित्थमुपवर्ण्यते ।
शृणु वत्स यथाशास्त्र वर्णयामि पुरस्तव ॥ १ ॥
गतमोहाधिकाराणामात्मानमधिकृत्य या ।
प्रवर्तते क्रिया शुद्धा तदध्यात्म जगुर्जिनाः ॥ २॥

अर्थ—हवे शिष्ये पूछ्यु के–हे भगवत ! अध्यात्म ते शु छे के जेनु तमे आवु वर्णन करो छो ? त्यारे गुरु कहे छे के–हे शिष्य ! शास्त्रमर्यादाये तने कहुं छुं ते सांभळ ॥ १ ॥ जे मुनिराजनो मोहनो अधिकार नाश पाम्यो छे अने जे आत्माने आश्रीने शुद्ध क्रियाये अंतरआत्माने विषे प्रवर्त्ते, तेनु नाम परमेश्वर अध्यात्म कहे छे ॥ २ ॥

सामायिक यथासर्व चारित्रेष्वनुवृत्तिमत् ।
अध्यात्म सर्वयोगेषु तथानुगतमिष्यते ॥ ३ ॥
अपुनर्बंधकाद्यावद्गुणस्थान चतुर्दश ।
क्रमशुद्धिमती तावत् क्रियाध्यात्ममयी मता ॥४॥

अर्थ—सामायिक चारित्र जेम सर्व चारित्रने विषे अनुगत कारणपणे वर्त्ते छे तेम सर्व जोगने विषे अध्यात्म पण सहचारीपणे वर्त्ते छे ॥ ३ ॥ अपुनर्बंधी जे चोथु गुणठाणु त्यांथी मांडीने चौदमा गुणठाणा लगण अनुक्रमे जे आत्मानी विशुद्धता प्रगट थाय ते सर्व अध्यात्म क्रिया जाणवी ॥ ४ ॥

आहारोपधिपूजार्द्धि गौरवप्रतिबंधतः ।
भवाभिनंदी यां कुर्यात् क्रिया साध्यात्मवैरिणी॥५॥

क्षुद्रो लोभरतिर्दीनो मत्सरी भयवान् शठः ।
अज्ञो भवाभिनन्दीस्या निष्फलारंभसंगत ॥ ६ ॥

अर्थ—अने जे आहारोपधिने अर्थे तथा पूजा पामवानी ऋद्धि तेनी गौरवताय बधाणा थका भवाभिनंदी जे क्रिया करे ते सर्व अध्यात्म क्रियानी वैरिणी जाणवी ॥ ५ ॥ १ क्षुद्रता, २ लोभ, ३ रति, ४ दीनता, ५ मत्सरीपणु, ६ भय, ७ शठता, ८ अज्ञानताए भवाभिनंदिपणाना संगथकी जे क्रिया करे ते क्रियानो आरंभ निष्फल थाय छे ॥ ६ ॥

शांतो दांत, सदागुप्तो मोक्षार्थी विश्ववत्सल. ।
निर्दंभा या क्रिया कुर्यात् साध्यात्मगुणवृद्धये ॥७॥

अत एव जन' पृच्छो त्पन्नसंज्ञ. पिपृच्छिषु' ।
साधुपार्श्वे जिगमिषुर्धर्म्मं पृच्छन् क्रियास्थित. ॥८॥

अर्थ—१ शांतगुण, २ दांतगुण, ३ सदागुप्तेंद्रियपणु, ४ मोक्षार्थीपणु, ५ विश्वनु वात्सल्यतापणु इत्यादिक गुणवालो निर्दंभीपणे जे क्रिया करे ते क्रिया अध्यात्मगुणनी वृद्धिकर्त्ता थाय ॥ ७ ॥ ते माटे जेने तत्त्व पूछवानी संज्ञा उपनी छे तथा पिपृच्छिषु के० तत्त्व प्रते हवे पूछवाने सन्मुख थयो छे ते, साधुनी पासे तत्त्व सांभलवाने अर्थे जवानुशील छे जेनु ते तथा क्रिया योगने विषे रह्यो थको धर्मना तत्त्वने पूछे छे ते ॥ ८ ॥

प्रतिपित्सु सृजन् पूर्वं प्रतिपन्नश्च दर्शनं ।
श्राद्धोयतिश्च त्रिविधोऽनंतांशक्षपकस्तथा ॥९॥

दृग्मोहक्षपको मोहशमक शांतमोहक ।
क्षपक क्षीणमोहश्च जिनोऽयोगी च केवली ॥१०॥

अर्थ—वली तत्त्वने अंगीकार करता थका पूर्वे प्रतिपन्न थयु छे सम्यक्त्वदर्शन जेने एवा श्रावक तथा यति ते त्रण प्रकारना १ उपशमसमकिती, २ क्षयोपशमसमकिती, ३ क्षायकसमकिती ते अनंतानुबंधीनो अंश खपाव्यो छे जेणे ॥९॥ वली जेणे दर्शनमोहनीय खपावी छे अथवा मोहनीयने उपशमावी छे एहवा जे उपशांतमोही तथा क्षपकश्रेणिने विषे वर्ते छे तथा जेणे मोहनो क्षय कर्यो छे ते सयोगीकेवली तथा अयोगीकेवली भगवंत जाणवा ॥१०॥

यथाक्रममसी प्रोक्ता असंख्यगुणनिर्जराः ॥
यतितव्यमतोध्यात्मवृद्धये कलयापि हि ॥ ११ ॥
ज्ञानं शुद्धं क्रिया शुद्धेत्यंशौ द्वाविह संगतौ ॥
चक्रे महारथस्येव पक्षाविव पतत्रिणः ॥ १२ ॥

अर्थ—ए अनुक्रमे जे कह्या ते सघला एक एक थकी असंख्यातगुणी निर्जराना कर्ता छे, माटे एक कलाए करीने पण अध्यात्मनी वृद्धिने अर्थ उद्यम करवो एहीज हेतु छे ॥ ११ ॥ जेम रथना बे चक्र ते रथनी साथे सलग्नज छे, तथा पक्षीनी बे पांखो ते पक्षीनी साथे सलग्नज छे, तेम एक शुद्ध ज्ञान अने बीजी शुद्ध क्रिया ए बे अंश ते अध्यात्मनी साथे सलग्न छे ॥१२॥

तत्पंचमगुणस्थानादारभ्यैवैतदिच्छति ॥
निश्चयोव्यवहारस्तु पूर्वमप्युपचारतः ॥ १३ ॥
चतुर्थेऽपि गुणस्थाने शुश्रूषाद्या क्रियोचिता ॥
अप्राप्तस्वर्णभूषाणां रजताभूषणं यथा ॥ १४ ॥

अर्थ—पूर्वे पण निश्चयनय अने व्यवहारनयतु आरोपण

उपचारथी छे, पण पाचमा गुणठाणाथी माडीने ए नय इच्छे छे ॥ १३ ॥ अने चोथे गुणठाणे पण शुश्रूषादिक क्रिया ते उचित छे, जेम कोइन सोनाना घरेणा न मलता होय तेने रुपाना मले ते पण रुडा मनाय ॥ १४ ॥

अपुनर्बंधकस्यापि या क्रिया शमसयुता ॥
चित्रादर्शनभेदेन धर्मविघ्नक्षयाय सा ॥ १५ ॥
अशुद्धा पि हिशुद्धाया क्रियाहेतुः सदाशयात् ॥
ताम्र रसानुवेधेन स्वर्णत्वमधिगच्छति ॥ १६ ॥

अर्थ—समभाव करीने सहित, दर्शन भेदे करीने विचित्र प्रकारनु अपुनर्बंध जे चोथु गुणठाणु तहनी क्रिया पण धर्मना विघ्न क्षय करनारी छे ॥ १५ ॥ तो पण भला आशय-थकी अशुद्ध क्रिया करे ते पण शुद्ध कहवाय जेम त्रांबु जे छे तेने गाली तेमा रसानुवेध कर्याथी (रसायन मळवाथी) सोनु थइ जाय छे तेम ॥ १६ ॥

अतो मार्गप्रवेशाय व्रत मिथ्यादृशामपि ॥
द्रव्यसम्यक्त्वमारोप्य ददते धीरबुद्धय ॥ १७ ॥
यो बुध्वा भवनैर्गुण्य धीर. स्याद व्रतपालने ॥
सयोग्यो भावभेदस्तु दुर्लक्ष्योनोपयुज्यते ॥ १८ ॥

अर्थ—ए ज कारण माटे धीरबुद्धिना धणी रत्नत्रयना मार्गने विषे प्रवेशवाने मिथ्यादृष्टिवालाने पण द्रव्य समकितनो आरोप करीने चारित्र आपे छे ॥ १७ ॥ जे प्राणी ससारनु निर्गुणपणु जाणीने व्रत पालवाने विषे धीर थाय ते प्राणी धर्मने योग्य जाणवो अने अंतरगभावनो भेद तो दु खे करीने समजाय छे, माटे ते उपयोगमा न आणवो ॥ १८ ॥

नोचेद्भावापरिज्ञानात्सिद्ध्यसिद्धोपराहते ॥
दीक्षाऽदानेन भव्याना मार्गोच्छेदः प्रसज्यते ॥१९॥
अशुद्धानादरेभ्यासायोगान्नो दर्शनाद्यपि ॥
सिद्धिर्नैसर्गिकीमुक्ता तदप्यभ्यासिक यतः ॥२०॥

अर्थ—कदापि कोइ एम कहेशे जे भाव जाण्या विना चारित्र देनाथी सिद्धि असिद्धि सर्व हणाइ जाय, ते वारे भव्यने पण दीक्षा न आपवी केम के तेने अतरंगनी खबर नथी, अने ए रीते दीक्षा न आपवाथी तो सम्यग्मार्गनो उच्छेद थाय ॥१९॥ एम अशुद्धनो अनादर करे अने शुद्ध जोगनो अभ्यास न करे त्यार दर्शन जे समकित ते पण शुद्ध न थाय, केम के एक निसर्ग समकित टालीने शुद्ध करवु ते पण अभ्यासथी ज थइ शके ॥ २० ॥

शुद्धमार्गानुरागेणाशठाना यातु शुद्धता ॥
गुणवत्परतन्त्राणा सानकापि विहन्यते ॥ २१ ॥
विषयात्मानुबन्धैर्हि त्रिधाशुद्ध यथोत्तर ॥
ब्रुवते कर्म्म तत्राद्य मुक्त्यर्थपतनाद्यपि ॥ २२ ॥

अर्थ—शुद्धमार्गने अनुरागे करीने अशठता भावे जो आत्मानी शुद्धता के० निर्मलताये गुणवत प्राणीने आधीन थइने वर्त्ते, तो ते प्रवृत्ति कोइ ठेकाणे हणाय नहीं ॥ २१ ॥ विषये करीने, आत्माये करीने अने अनुबंधे करीने ए त्रण प्रकारनी विशुद्धि छे ते एकेकथी निर्मल छे ए त्रणे कर्म छे, तेमा जे दुःखथी पोताना आत्माने मूकाववाने झपापात प्रमुख करे तेहने विषयशुद्धि कहिये ॥ २२ ॥

अज्ञानीना द्वितीय तु लोकदृष्ट्यायमादिक ॥
तृतीय शातवृत्त्यात्तत्वसंवेदनानुग ॥ २३ ॥
आद्यानाज्ञानबाहुल्यान्मोक्षबाधकबाधनं ॥
सद्भावाशयलेशेनोचितं जन्मपरे जगुः ॥ २४ ॥

अर्थ—अज्ञानीने आत्मशुद्धि नामे बीजी शुद्धि थाय, ते लोकदृष्टिये पाच यम नियम प्रमुख पाले छे-ए बीनो भेद त्रीजो आत्मानुबंध ते कहिये, जे शात वृत्तिये तत्त्वनु संवेदन करे, चिंतन करे ॥ २३ ॥ पहली शुद्धिमा अज्ञाननी बहुलता छे, जेणे करीने मोक्षना बाधकने बाध न करे अने तेना सद्भावथकी शुभाशयनो लेशमात्र होय, तो तेथी जन्म-मरणनी परंपरा काइ तुटे नही एहवु योगाभ्यासी पुरुष कहे छे ॥ २४ ॥

द्वितीयाद्दोषहानिः स्यात्क्वचिन्मडूकचूर्णवत् ॥
आत्यंतिकी तृतीया तु गुरुलाघवचिंतया ॥ २५ ॥
अपिस्वरूपतःशुद्धाक्रिया तस्माद्विशुद्धिकृत् ॥
मौनींद्रव्यवहारेण मार्गबीजं दृढादरात् ॥ २६ ॥

अर्थ—आत्मशुद्धि नामे बीजा जोगथकी काइक लव-लेश मात्र दोषनी हानि तो थाय, पण परंपराये घणा दोष थयेला ते देडकाना चूर्णनी पठे एक देडकानो नाश थाय, पण तेथी बीजा घणा देडका उत्पन्न थाय त्रीनी शुद्धि आत्यंतिक छे, तेथी कर्मनी हानि थाय केम के ते गुरुताभाव अने लघुताभावनी विचारणा करवाथी प्रगटे एवी छे ॥ २५ ॥ स्वरूप थकी जे क्रिया शुद्ध छे ते ज निश्चयपणे आत्माने विशुद्धतानी करनारी छे, ते माटे शुद्धक्रिया करवी मुनींद्र जे परमेश्वर तेणे बताव्यो जे

व्यवहार तेनु सेवन करवे करीने घणा आदर सहित क्रिया करे, तो मार्ग जे रत्नत्रयी तेनु बीज प्रगट थाय छे ॥ २६ ॥

गुर्वाज्ञापारतन्त्र्येण द्रव्यदीक्षाग्रहादपि ॥
वीर्योल्लासक्रमात्प्राप्ता बहवः परम पद ॥ २७ ॥

अध्यात्माभ्यासकालेपि क्रिया काप्येवमस्ति हि ॥
शुभौघसज्ञानुगत ज्ञानमप्यस्ति किंचन ॥ २८ ॥

अर्थ—गुरुनी आज्ञाने आधीन रहेनाथी द्रव्यदीक्षा लीधी होय तो पण वीर्योल्लासनी अनुक्रमे वृद्धि करीने घणा जीव परमपदने पाम्या छे ॥ २७ ॥ ए रीते अध्यात्मना अभ्यास-कालने विषे पण क्रिया काइक लेशमात्र निश्चे वर्तेज छे, अने शुभकारी ओघ सज्ञाने सहचारीपणे तिहा ज्ञान पण काइक वर्ते छे ॥ २८ ॥

अतो ज्ञानक्रियारूपमध्यात्म व्यवतिष्ठते ॥
एतत्प्रवर्द्धमान स्यान्निर्दभाचारशालिना ॥ २९ ॥

अर्थ—ए ज कारण माटे ज्ञानने क्रियारूप ते अध्यात्म-पणु वर्ते छे, जे ज्ञान क्रियारूप ते अध्यात्म छे ए ज ज्ञानक्रिया निर्दभाचारे करीने मनोहर एहवो जे प्राणी तेने विषे उत्तरोत्तर वृद्धिने पामे छे ॥ २९ ॥ ए बीजो अध्यात्मना स्वरूपनो अधिकार सपूर्ण थयो ॥

दभो मुक्तिलतावह्निर्दभो राहुः क्रियाविधौ ॥
दौर्भाग्यकारण दभो दभोध्यात्मसुखार्गला ॥ १ ॥

दभो ज्ञानाद्रिदभोलिर्दभः कामानलेहविः ॥
व्यसनाना सुहृद्दभो दभश्चौरो व्रतश्रियः ॥ २ ॥

दम्भेन व्रतमास्थाय यो वाञ्छति परम पद ॥
लोहनाव समारुह्यसोऽब्धे पार यियासति ॥ ३ ॥

अर्थ—मुक्तिरूप वेलीने दहन करवामा कपट ते अग्नि समान छे, ने क्रियारूप चंद्रनो ग्रास करवाने कपट ते राहु छे, धर्मे कपट ज दुर्भाग्यनु कारण छे, अध्यात्मसुखनी प्राप्तिमा अर्गलारुप छे ॥ १ ॥ ज्ञानरूप पर्वतने तोडवाने कपट ते वज्र समान छे, कामरूपी अग्निनी वृद्धि करवाने घृत जोइये ते पण कपट छे, व्यसननो मित्र ते कपट छे, अने व्रतरूप लक्ष्मीनो चोर पण दंभ ज छे ॥ २ ॥ कपट राखी व्रतने लिए रही जे प्राणी परम पद जे मोक्ष तेनी वाच्छना करे छे, ते प्राणी लोढानी नावमा बेसी समुद्र तरवानी इच्छा राखे छे ॥ ३ ॥

किं व्रतेन तपोभिर्वा दम्भश्चेन्न निराकृत. ॥
किमादर्शन किं दीपैर्यद्याध्य न दृशोर्गत ॥ ४ ॥

केशलोचधराशय्या भिक्षाब्रह्मव्रतादिक ॥
दम्भेन दुष्यते सर्व त्रासेनैव महामणिः ॥ ५ ॥

अर्थ—ते तपे पण शु ? ते व्रते पण शु ? जो कपट दिलमाने तजी नहीं तो ते सर्वे निष्फल छे, ते आरसीए पण शु ? अने दीवे पण शु ? जो दृष्टीए अंध छे तो तेहने सर्वे ठेकाणे अंधकारज रहशे ॥ ४ ॥ केश लोच करवो, भूमि उपर शयन करवु, भिक्षा मागवी, शीलव्रतादिक पालवा, ए सर्वे धर्मकरणी कपटे करीने दुपाइ जाय छे, जेम सुदर मणि होय ते उपर एक डाघ लागवाथी तेनी काति मंद थाय छे तेहनी परे जाणवु ॥ ५ ॥

सुत्यज रसलापट्य सुत्यज देहभूषण ॥
सुत्यजाः कामभोगाश्च दुस्त्यज दंभसेवन ॥ ६ ॥
स्वदोषनिन्हवो लोक पूजा स्याद् गौरव तथा ॥
इयतैव कदर्थ्यंते दंभेन यत बालिशाः ॥ ७ ॥

अर्थ—रसनु लोलपीपणु ते सुखे तजी शकाय, देहनी शोभा पण सुखे तजी शकाय, कामभोगादिने पण सुखे तजाय, पण कपटनो त्याग करवो घणो ज विकट छे ॥ ६ ॥ पोताना दोषने ढांकी राखे तेथी लोकमा पूजना थाय, तथा मोटाइ थाय, एहि ज पूजा प्रमुखनी लालच माटे पोताना आत्माने मूर्ख प्राणी कदर्थना उपजावे छे ! ॥ ७ ॥

असतीना यथा शीलमशीलस्यैव वृद्धये ॥
दंभेनाव्रत वृद्धयर्थ व्रत वेषभृता तथा ॥ ८ ॥
जानानाअपि दंभस्य स्फुरित बालिशाजनाः ॥
तत्रैव धृतविश्वासा· प्रस्खलति पदे पदे ॥ ९ ॥

अर्थ—जेम कुलटा नारीनु शील जे आचारते कुशीलनी वृद्धिने अर्थे ज होय, तेम कपटे वेष धरनार व्रतव्रताने भवनी वृद्धि थाय, ते अव्रतनी वृद्धिने अर्थे ज थाय ॥ ८ ॥ कपटना विपाकने जाणता थका पण मूर्ख अज्ञानी प्राणी ते ज कपटने विषे विश्वास करता थका पगले पगले स्खलना पामे छे ॥ ९ ॥

अहो मोहस्य माहात्म्यं दीक्षा भागवतीमपि ॥
दंभेन यद्विलुपति कज्जलेनेव रूपक ॥ १० ॥
अब्जे हिम तनौ रोगो वने वह्निर्दिने निशा ॥
ग्रंथे मौर्ख्य कलिः सौख्ये धर्म्मे दंभउपप्लवः ॥ ११ ॥

अर्थ—अहो इति खेदे जूओ ! मोहराजानो महिमा ! जे भगवत सबधी दीक्षा ते पण जेम काजले करीने चित्रामणनुं लोप थाय छे, तेहनी पर कपटे करीने लोपी नाखे छे, जेम कमलने विषे हिम, शरीरने विषे रोग, वनने विषे अग्नि, दिवसने विषे रात्री, ग्रथने विषे मूर्खता, सुखने विष क्लेश, ते उपद्रवना करता छे तेम धर्मने विष कपट ते दु खकर्त्ता छे ॥ १०–११ ॥

अतएव नयो धर्तु मूलयोत्तरगुणानल ॥
युक्ता सुश्राद्धता तस्य न तु दभेन जीवन ॥ १२ ॥
परिहर्तु न यो लिगमप्यल दृढरागवान् ॥
सविज्ञपाक्षिक सस्यान्निर्दभ, साधुसेवक ॥ १३ ॥

अर्थ—एहिज हतु माटे मूलगुण पचमहाव्रत अने उत्तरगुण करणसित्तरी प्रमुख धरवाने जे प्राणी समर्थ न होय, तेणे श्रावकना व्रत पालवा ते युक्त ज छे, पण कपट चारित्रे जीवनु ते रुडु नथी ॥ १२ ॥ हव जे प्राणी व्रतने मूकवाने समर्थ नथी कमके जेने व्रत उपर दृढराग लाग्यो होय ते मूकी शके नहीं तो तेणे सविग्नपक्ष अगीकार करवो श्रेष्ठ छे, कमके निर्दभी साधुनी सेवना करवाथी घणो गुण थाय छे ॥ १३ ॥

निर्दभस्यावसन्नस्याप्यस्य शुद्धार्थभाषिण. ॥
निर्जरा यतनादत्ते स्वल्पापि गुणरागिण ॥ १४ ॥
व्रतभारासहत्व ये विदतोप्यात्मन स्फुट ॥
दभात्यतित्वमाख्याति तेषा नामापि पाप्मने ॥१५॥

अर्थ—निष्कपटी होय, शुद्ध सिद्धातना अर्थना भाषक होय, ते गुणे करीने ते उसन्नाप्रमुख साधु जो थोडी पण जतना

करे छे, तो पण ते गुणना रागीपणाथी वर्तता थका तेने निर्ज्जरा थाय छे ॥ १४ ॥ पोताथी व्रतनो भार नथी उपडतो, एवुं जाण्या छता पण जे पोताना आत्माने प्रगट रीते कपटे करीने यतिपणु ठरावे छे, संयमीपणु स्थापे छे ते लिंगीनुं नाम लेता पण पाप थाय तो तेनी सेवना तो पापकारी थाय ज तेमा शु कहेवु ? ॥ १५ ॥

कुर्वते ये न यतना सम्यगालोचितानपि ॥
तैरहो यतिनाम्नैव दांभिकैर्वंच्यते जगत् ॥ १६ ॥
धर्माख्यातिलाभेन प्रच्छादितनिजाश्रवः ॥
तृणायमन्यते विश्व हीनोऽपि धूर्तकैतवः ॥ १७ ॥

अर्थ—जे लिंगी भली रीते द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव जोईने यत्ना नथी करता, ते लिंगी यति एवे नाम करीने कपटी थई लोकने ठगता फरे छे ॥ १६ ॥ जे हीनाचारी थको कपटनो धरनारो लिंगी होय अने ते यति धर्मी छे एवी प्रसिद्धि थइ, तेना लाभे करीने पोताना आश्रवने ढाक्या होय एवा जे यति ते समग्र जगत्‌ने तृण तुल्य जाणे छे ॥ १७ ॥

आत्मोत्कर्षात्ततो दंभात्परेषा चापवादतः ॥
बध्नाति कठिन कर्म्म बाधक योगजन्मनः ॥ १८ ॥
आत्मार्थिना ततस्त्याज्यो दंभोऽनर्थनिबंधन ॥
शुद्धिः स्यादृजुभूतस्येत्यागमंप्रतिपादित ॥ १९ ॥

अर्थः—पोताना आत्मानी वडाइ करे, घणु कपट धरे अने पारका अवर्णवाद बोले तेथी करीने कठिण कर्म बाधे छे,

तेवा पुरुषो ते योगीना जन्मने बाधक करनारा छे, ते शुद्ध चारित्रने पामी शके नहीं ॥ १८ ॥ माटे अनर्थनुं कारण जे कपट तेने धर्मार्थी प्राणीए तजवुं, केमके आत्मानी शुद्धि तो सरलताभावे थाय छे, एवुं आगमने विषे कह्युं छे ॥ १९ ॥

जैनैर्नानुमतं किंचिन्निषिद्धं वा न सर्वथा ॥
कार्यभाव्यमदंभेनेत्येषाज्ञा पारमेश्वरी ॥ २० ॥
अध्यात्मरतचित्तानां दंभः स्वल्पोऽपि नोचितः ॥
छिद्रलेशोऽपि पोतस्य सिंधुं लंघयतामिव ॥ २१ ॥

अर्थ—तीर्थंकरे एकांत आज्ञा पण नथी करी, तेम सर्वथा निषेध पण नथी कीधो, तोपण जे कार्य करवुं ते कपट रहित करवुं एहीज परमेश्वरनी आज्ञा छे ॥ २० ॥ जेम वहाणमां छिद्रनो लेश होय ते पण समुद्र तरवामां योग्य नथी, तेम अध्यात्मने विषे जेनुं मन रमायुं छे, तेने जरापण कपट करवुं ते योग्य नथी ॥ २१ ॥

दंभलेशोऽपि मल्ल्यादेः स्त्रीत्वानर्थनिबंधनं ॥
अतस्तत्परिहाराय यतितव्यं महात्मना ॥ २२ ॥

अर्थ—जेम मल्लिनाथजीने कपटनो लेश पण स्त्रीवेदनो कारणिक थयो, माटे महान् पुरुषे कपट तजवाने घणो यत्न करवो ॥ २२ ॥ इति श्रीअध्यात्मसार ग्रंथने विषे दंभत्याग नामा त्रीजो अधिकार समाप्त थयो ॥

भवस्वरूपचिन्ताधिकार

तदेव निर्दंभाचरणपटुता चेतसि ...
स्वरूप संचिंत्य क्षणमपि मना...
इय चिंताऽध्यात्मप्रसरसरसी ...
सता वैराग्यायप्रियपवनपीना ...

अर्थ—एटला माटे निर्दंभ ...
तुं सावधान था ! आत्मस्वरूपनु चिं...
मात्र पण सद्बुद्धि हृदयमां ...
तेही ज आत्मदिशारूप सरोवरनी ...
एवी छे, एही ज सज्जन लोकने ...
पुष्टाकारी छे, माटे ते आतिश...

इतः कामौर्वाग्निर्ज्वलति परि...
पतति ग्रावाणो विषयगिरि...
इत' क्रोधावर्ता विकृतितटि...
समुद्रे ससारे तदिह न ...

अर्थ—एक तरफ कामरू...
रह्यो छे ते दुःखे सहन थाय एवा ...
प्रकारना विषयरूप पर्वत, तेहथी ...
तेणे करी भयकर, वली एक तरफ ...
थकी क्रोधना आवर्त पड्या छे, ...
कहो कया ठेकाणे प्राणीने भय ...

प्रिया ज्वाला यत्रोद्गमति रतिसत्तापतरला
कटाक्षान् धूमौघान कुवलयदलश्यामलरुचीन् ॥
अथाङ्गान्यङ्गारा कृतबहुविकाराश्च विषया
दहन्त्यस्मिन्नहो भववपुषि शर्म क्व सुलभ ? ॥३॥

अर्थ—जे ससारने विषे रतिना सतापे करीने तरला के० चपल एवी जे प्रिया के० भार्या ते कुकुज्वाला वर्त्ते छे, वली नीलकमल दलना सरखी जेनी काति छे एहवा नेत्रना त्रिकोण-माथी जे जोवु तेनु नाम कटाक्ष ते रूप धूम्रना समूह चाले छे, तथा स्त्रीना अग ते अगारा समान छे, जे अगथकी घणा प्रकारना विकार प्रगट थाय छे, ते माटे ससाररूप अग्निमा बली रह्या जे प्राणी तेने भवमा पण सुख नथी तेमज शरीरमा पण कई ज सुख नथी ॥ ३ ॥

गले दत्वा पाश तनयवनितास्नेहघटित
निपीड्यते यत्र प्रकृतिकृपण प्राणिपशव ॥
नितान्त दु खार्त्ता विषमविषयघातिकभटै-
र्भव सूनास्थान तदहह महासाध्वसकर ॥ ४ ॥

अर्थ—जेना गलाने विषे पुत्र तथा स्त्रीरूप स्नेहनो फासो नखायो छे, तेना स्नेहपाशमा पड्या तुच्छ स्वभावना धणी ते अतिशयपणे पीडा पामे छे, आकरा विषयरूप जे घातकी सुभट तेणे करीने ससार ते खाटकीनु स्थानक छे, माटे हाहा ससार ते केवल दु खनु मूल छे ॥ ४ ॥

अविद्याया रात्रौ चरति वहते मूर्ध्नि विषम
कषायव्यालौघ क्षिपति विषयास्थीनि च गले ॥

महादोषान् दंतान् प्रकटयति वक्रस्मरमुखो
न विश्वासार्होय भवति भवनक्चर इति ॥ ५ ॥

अर्थ—अज्ञानदिशारूप रात्रिनो चालनार जेना माथा उपर विषमकषायरूप सर्पनो समूह रह्यो छे, जेना गलाने विषे विषयरूप हाडका बांध्या छे, जे महोटा दोषरूप दांत प्रगट करे छे, जेनुं मुख कामनी चेष्टा करे छे, एवो संसाररूपी राक्षस ते विश्वास करवाने योग्य नथी ॥ ५ ॥

जना लब्ध्वा धर्मद्रविणलवभिक्षां कथमपि
प्रयातोवामाक्षीस्तनविषमदुर्गस्थितिकृता ॥
विलुण्ठ्यते यस्यां कुसुमशरभिल्लेन बलिना
भवाटव्यां नास्यामुचितमसहायस्य गमनं ॥ ६ ॥

अर्थ—जे प्राणी धर्मरूप धनना लवलेशने पाम्यो छे, तेणे भिक्षा मागवाने एकला विचरवुं नहि, केमके भवाटवीने विषे बलवत्तर भील एवो जे काम ते स्त्रीना स्तनरूप विषयी कोटमां रहीने ते प्राणीमात्रना धर्मरूप धनने लुटी ले छे, माटे सहाय विना ते प्राणीए एकलुं विचरवुं (चालवुं) योग्य नथी ॥ ६ ॥

धनं मे गेहं मे मम सुतकलत्रादिकमतो
विपर्यासादासादितविततदुःखा अपि मुहुः ।
जना यस्मिन् मिथ्यासुखमदभृतः कूटघटना-
मयो य संसारस्तदिह न विवेकी प्रसजति ॥ ७ ॥

अर्थ—धन, घर, पुत्र ने स्त्री आदि सर्व वस्तु मारी छे,

एवा विपर्यासपणाथी विशेष प्रसिद्ध दु खज छे, माटे जे प्राणी वारवार सुखने मळे मर्या थका सुख माने छे, ते फोकट छे ए ससार तो कवल कपट रचनाथी भर्यो छे, तेने विषे विवेकी प्राणीए प्रीति करवी नही ॥ ७ ॥

प्रियास्नेहो यस्मिन्निगडसदृशो यामिकभटो-
पमः स्वीयो वर्गो धनमभिनव बन्धनमिव ॥
महामेध्यापूर्णं व्यसनबिलसंसर्गविषमं
भव. कारागेहं तदिह न रतिः क्वापि विदुषां ॥ ८ ॥

अर्थ—स्त्रीनो स्नेह ते बेडी समान छे, बीजा सगामथी लोक ते पोरियात समान छे, धनसपत्ति ते नवा बधन सरखी छे अने महा अमेध्येकरी सहित छे, मात प्रकारना व्यसनरूप बिले सहित छे, इत्यादि कहिये तो आ ससार ते बदिखाना जेवो छे माटे पडित लोकने ए वस्तुमाहेनी एके वस्तु उपर रति के० मरजी थती नथी ॥ ८ ॥

महाक्रोधोगृध्रोऽनुपरतिशृगाली च चपला
स्मरोलूको यत्र प्रकटकटुशब्दः प्रचरति ॥
प्रदीप्तः शोकाग्निस्ततमपयशोभस्म परित
स्मशान संसारस्तदतिरमणीयत्वमिह किं ? ९ ॥

अर्थ—जे पंडित लोक ते आ ससारने स्मशान सरखो कहे छे, केमके स्मशानमां रहेनारी चीजो सर्व ससारमा छे, ते कही बतावे छे जेम स्मशानमा गिध पक्षी छे तेम ससारमा महाक्रोध ते गीध पक्षी छे, अरतिरूप घणी चपल शियाळणी छे, घुवड पक्षीरूप काम छे, ते प्रगटपणे कडवा शब्दथी रुदन करे छे,

देदीप्यमान शोकरूपी अग्नि प्रज्वले छे, निरतर अपयशरूप राख छे, माटे ससार ते स्मशान छे, एमा रमणीक चीज कोई नथी।९।

धनाशा यच्छायाप्यति विपममूर्छा प्रणयिनी
विलासो नारीणा गुरुविकृतये यत्सुमरसः ॥
फलास्वादो यस्य प्रसरनरकव्याधिनिवह-
स्तदास्या नो युक्ता भव विपतरावत्र सुधिया॥१०॥

अर्थ—धननी जे इच्छा ते अतिशय विपयरूप विपम मूर्च्छाने विस्तारनारी छे, स्त्रीयोनो विलास ते महाविकारकारी कुसुमनो रस छे, जेना फलनो स्वाद विस्तार पामतो नर्कनी पीडाना समूह तुल्य थाय, एवु ससाररूप विपयवृक्ष छे, एनी हेठल विश्राम करवो युक्त नथी ॥ १० ॥

कचित् प्राज्य राज्य कचन धनलेशोप्यसुलभः
कचिज्जातिस्फातिः कचिदपि च नीचत्वकुयशः ॥
कचिल्लावण्यश्रीरतिशयवती कापि न वपुः
स्वरूप वैपम्य रतिकरमिद कस्य नु भवे ॥ ११ ॥

अर्थ—कोइने तो विस्तारवालु राज्य छे, कोइने धननो लेश पण दोहलो छे, कोइनी उत्तम जाति छे, कोइनी नीच जाती छे, कोइने अपयश छे, कोइने लावण्यलीलानी लक्ष्मी घणी छे, कोइनु शरीर पण रुडु नथी, एवुं ससारनु स्वरूप विपम छे, ते कोने रतिकारी थाय ? ॥ ११ ॥

इहोद्दामः कामः खनति परिपथि गुणमही-
मविश्रामः पार्श्वस्थितकुपरिणामस्य कलहः ॥

निलात्यत कामन्मदफणभृता पामरमत
वदाम कि नाम प्रकटभवधामस्यितिसुख ॥ १२ ॥

अर्थ—इहा उद्दाम काम दिशा छे, ते ज परिपथी के० शत्रु छे, ते गुणरूप जे मही के० पृथ्वी तेने खणे छे अने पासे रह्यो जे दुपरिणाम ते विश्राम लीधा विना निरतर क्लेश करे छे, ए क्लेशवडे खरटाया एवा जे प्राणी ते अष्ट मदरूप सर्प तेणे करी युक्त छे एवु पामर लोकने मानवा योग्य आ ससाररूप जे घर तेनु शु सुख कहीए? ॥ १२ ॥

तवार्त्ता ग्रियत विषयविवशा यत्र भविन
करालक्रोधार्कान्उममरसि शोष गतवति ॥
स्मरस्वेदक्लेदग्लपितगुणमेदस्यनुदिन
भवग्रीष्मे भीष्मे किमिह शरण तापहरण ॥ १३ ॥

अर्थ—ससारने विषे प्राणी मात्र पुद्गलनी तृष्णारूप तरसे करीने पीडाणा छे, अने विषयनी आशाए करी परवश थया छे, एहवा प्राणीया विहामणा क्रोध करी पीडाय छे, केमके तेमने माट ममतारूप सरोवर ता सुकाइ गयु छे, अने काम-विकाररूप जे परस्वेद तेनी जे ग्लानता तेणे करी निरतर गुण सदा खरडाय छे एवा एहवो विहामणो आ ससाररूप उष्णकाल ने त्या तेना तापने हरे एवो कोइ नथी ॥ १३ ॥

पिता माता भ्रातास्यभिलपितमिष्टावभिमतो
गुणग्रामज्ञाता न खलु धनदाता च धनवान् ॥
जना स्वार्थस्फालावनिशमवदा नाशयभृत
प्रमाना क ख्यातावह भवसुखस्याशु रसिक ॥१४॥

अर्थ—आ संसारने विषे पिता, माता ने भ्राता के० भाइ आदि ते सर्व चिंतित अर्थनी अभिलाषा पूरे त्या लगी अभिमतके० ममत करी माने, तथा गुणना समूहनो जाण एहवो धनवंत प्राणी होय ते पण कृपणपणे करीने गुणी जनने धन देइ शके नहीं, एम सर्व प्राणी पोताना स्वार्थ साधन करवाने सावधानपणे वर्ते छे, पण परमार्थथी वेगला वसे छे, एवा भव-सुखना रसिया जे जीव तेहना स्वरूपने कहवाने कोण समर्थ थइ शके ? ॥ १४ ॥

पर्णः पाणि गृह्णात्यहहमहति स्वार्थ इह यान्
त्यजत्युच्चैर्लोकस्तृणवदघृणस्तानपरया ॥
विष स्राते वस्त्रेऽमृतमिति च विश्वासहतिकृद्-
भवादित्युद्वेगो यदि न गदितैः किं तदधिकैः ॥१५॥

अर्थ—एम स्वार्थने वश थईने प्राणी चंडालनो हाथ पकडी चाले छे ! अहो इति आश्चर्य ! जे स्वार्थपणु ते एहवुं छे. वली जे उत्तम कुलथी उपजेला तेहने तजे छे अने तरणा जेवो निर्लज्ज थईने हैयामा झेर भर्युं होय पण मोढे अमृत जेवु मीठु बोले छे. एवा अनेक प्रपच स्वार्थ माटे प्राणी कर छे ने विश्वा-सघाती थाय छे, एवा प्राणी आ संसारमा वसे छे, ते जोईने पण आ ससारथी जेनु मन उद्वेग पामतु नथी तेने घणु शु कहीए ? ॥ १५ ॥

दृशा मातैः कातैः कलयति मुद कोपकलितै-
रमीभिः खिन्नः स्याद्घनधननिधीनामपि गुणी ॥

उपायै स्तुत्याद्यैरपनयति रोष कथमपी-
त्यहो मोहस्यैव भरभवनवैषम्यघटना ॥ १६ ॥

अर्थ—स्त्रीनी दृष्टिना प्रात के० खूणा ते मनोहर छे, माटे तेना जोवाथी हर्ष उपजे छे, अने स्त्रीनी कोपयुक्त दृष्टि खराब छे माटे ते देखीने खेद उपजे छे, तथा घणा धनवाला पुरुषने गुणीजनो स्तुति आदि करी रीझवे छे; ने कष्ट सहीने तेमनो रोष उतारे छे, ए सघलु मोहथकी थाय छे, माटे जुओ मोहरूपी रानानु केवु विषमतापणुं छे, के जे तजवा योग्य छे तेनो आदर करावे छे अने जेनो आदर करवो जोइए तेनो त्याग करावे छे ॥ १६ ॥

प्रिया प्रेक्षा पुत्रो विनय इह पुत्री गुणरति-
र्विवेकाख्यस्तात परिणतिरनिन्द्या च जननी ॥
विशुद्धस्य स्वस्य स्फुरति हि कुटुम्ब स्फुटमिद
भवे तन्नो दृष्ट तदपि यन सयोगसुखधीः ॥ १७ ॥

अर्थ—जीवने तत्त्वविचारणा करवी त स्त्री छे, विनय करवो त पुत्र छे, गुणने विषे जे रति करवी त पुत्री छे, स्याद्वाद दर्पणे स्वपर-विवेचन करवु त पिता छे, अनिंद्या जे पारकी निंदा तजवी त आत्मानी माता छे, एवुं जे अतरंग कुटुंब छे त तो जे वार आत्मा शुद्ध थाय ते वार प्रगट रीते पेदा थाय, पण तेने जे पुरुष सयोगी सुखमा मग्न थइ रह्यो छे ते तो क्यार पण देखतो नथी ॥ १७ ॥

पुरा प्रेमारम्भे तदनुतद विच्छेदघटने,
तदुच्छेदे दु खान्यय कठिनचेता विषहते ॥

विपाकादापाकादितकलशवत्तापबहुलात्,—
जनो यस्मिन्नस्मिन्क्वचिदपि सुख हत न भवे ॥१८॥

अर्थ—प्रथम प्रेम करता दु:ख छे, ते पछी तेने निश्चलपणे राखवाने पण घणु दु:ख छे, वली ते प्रेमपात्रनो विच्छेद थाय, मरण थाय अथवा प्रेम त्रुटे त्यारे मोथी वधारे दु:ख उपजे, ने ते सहन करवाने छाती घणी कठण राखवी पडे. नींभाडाना पाकने विषे आरोपित कर्यो एवो जे घट तेना सरखी तापनी बहुलता छे एवो जे आ ससाररूप नींभाडो तेमा सुख तो काइ ज नथी, समग्र दु:खमय ज छे ॥ १८ ॥

मृगाक्षीदृग्वाणैरिह हि निहत धर्म्मकटक,
विलिप्ताहृद्देशा इह च बहुलैरागरुधिरैः ॥
भ्रमंत्यूर्ध्वं क्रूरा व्यसनशतगृधाश्च तदिय
महामोहक्षोणीरमणरणभूमिः खलु भवः ॥ १९ ॥

अर्थ—आ ससारने विषे धर्मराजाना कटकने तो मृगनयनीना दृष्टिरूपी बाणे हणी नाख्यु छे, रागदिशारूप रुधीरवडे लेपाइ गया छे हृदयप्रदेश जेना ते उपर अनेक प्रकारना मनतन सबंधी कष्टरूपी गीधपक्षीओ भमी रह्या छे, एवो महामोहरूप क्षोणीरमण जे राजा तेनी रणभूमि समान आ संसार छे ॥१९॥

हसंति क्रीडंति क्षणमथ च खिद्यंति बहुधा,
रुदंति क्रंदति क्षणमपि विवाद विदधते ॥
पलायते मोद दधति परिनृत्यंति विवशा
भवे मोहोन्माद कमपि तनुभाजः परिगताः ॥२०॥

अर्थ—क्षणमां हसे, क्षणमा क्रीडा करे (रमे), क्षणमां खेद करे, क्षणमा बहु प्रकारे रडे, क्षणमा विलाप करे, क्षणमा अनेक प्रकारनो विवाद करे, क्षणमा नासी जाय, क्षणमा हर्षित थइ नाचवा माडे इत्यादि उन्माद ससारने विषे देहधारी प्राणीयो कर छे, ते सर्व मोहराजाने आधीनथका करे छे ॥ २० ॥

अपूर्णा विद्येव प्रकटखलमैत्रीव कुनय–
प्रणालीवास्थाने विधववनितायौवनमिव ॥
अनिष्णाते पत्यौ मृगदृश इव स्नेहलहरी
भवक्रीडा व्रीडा दहति हृदय तात्त्विकदृशाम् ॥२१॥

अर्थ—अमपूर्ण विद्या जेम पंडितने, तेमज खल माणसनी मित्राई, वली राजसभामा अन्यायनी प्रणालिका एटले अन्यायनो मार्ग, तथा विधवा स्त्रीनु यौवन, वली मूर्ख भरतारनी आगल स्त्रीना स्नेहनी लहरी ते जेम खेदने पात्र थाय छे तेमज संसारनी क्रीडा जे लजामणी छे तेथी तत्त्वदर्शी प्राणी दुःख पामे छे ॥ २१ ॥

प्रभाते सजाते भवति वितथा स्वापकलना,
द्विचन्द्रज्ञान वा तिमिरविरहे निर्मलदृशा ॥
तथा मिथ्यारूप स्फुरति विदिते तत्त्वविषये,
भवोऽय साधूनामुपरतविकल्पस्थिरधिया ॥ २२ ॥

अर्थ—जेम प्रभात समय स्वप्ननी रचना निष्फल थइ जाय छे, जेम कोइनी आखमा जाकल आवी होय तेहने आकाशमा बे चद्रमा भासे, पण निर्मलदृष्टि थता बे चद्रमानुं भ्रातिनाम मटी जाय छे तेम ससारथी न्यारा रह्या एहवा जे स्थिर बुद्धि

वाला तत्त्वज्ञान समजेला साधु तेने आ संसार ते मिथ्यारूप भासे छे ॥ २२ ॥

प्रियावाणीवीणाशयनतनुसंवाधनसुखै-
भवोय पीयूषैर्घटित इति पूर्वं मतिरभूत् ॥
अकस्मादस्माकं परिकलिततत्त्वोपनिषदा-
मिदानीमेतस्मिन्न रतिरपि तु स्वात्मनि रतिः ॥२३॥

अर्थः—स्त्रीनी वाणीयें करीने तथा वीणानादे करीने, शय्याये करीने, वली शरीरने चोलवु-चापवु तेणे करीने जे सुख उपजे छे, ते अमृते करीने घुटेलु होय तेवु छे एवु पूर्वे बाल-काले वर्तायु हतु, पण हवे सहसात्कारे अमने तत्त्वदिशाना रह-स्यनी परिकलना थइ-जाणपणु थयु, तथी संसारने विषे तत्त्वरुचि वर्त्तती नथी, पण आत्मतत्त्वमा रुचि थइ छे ॥ २३ ॥

दधानाः काठिन्यं निरवधिकमाविद्यकभव-
प्रपंचाः पांचालीकुचकलशवत्नातिरतिदाः ॥
गलत्यज्ञानाभ्रे प्रसृमररुचावात्मनि विधौ
चिदानंदस्यंदः सहज इति तेभ्योऽस्तु विरतिः॥२४॥

अर्थः—संसारना समस्त प्रपंच ते अतिशय कठि-णताने धरवाथका छे, माटे मुजने काष्ठ अने पाषाणनी पुतलीना स्तननी पेरे रतिकारी नथी लागता, केमके अज्ञाननु वादल गली गयु छे अने आत्मिक ज्ञानरूप चंद्रोदय थयो तेथी सहज चिदानंद रसनी शीतलता प्रगटी तेणे करी विषय तापनी अरति मटी गइ ॥ २४ ॥

भवे या राज्यश्रीर्गजतुरगगोसग्रहकृता
न सा ज्ञानध्यानप्रशमजनिता किं स्वमनसि ॥

बहिर्याः प्रेयस्य, किमु मनसि ता नात्मरतय
स्तत, स्वाधीन कस्त्यजति सुखमिच्छत्यथ पर ॥२५॥

अर्थ·—संसारने विषे हाथी, घोडा, बलद प्रमुख जे राजलक्ष्मी छे, ते शु अतरग आत्माने नथी ? अर्थात् छे ज्ञान हाथी, ध्यान घोडा, समता ते बलद, ए लक्ष्मी आत्मानी छे, अने तु जो मनवडे बाह्य साथे प्रेम करे छे तो पोताना आत्मा साथे रति केम करतो नथी ? आत्मिक सुख तजीने पौद्गलिक सुखने कोण इच्छे ? एवो मूर्ख कोण होय ? ॥ २५ ॥

पराधीन शर्म्म क्षयि विषयकाक्षौघमलिन
भवे भीति स्थान तदपिकुमतिस्तत्र रमते ॥
बुधास्तु स्वाधीने ऽक्षयिणि करणौत्सुक्यरहिते
निलीनास्तिष्ठति प्रगलितभयाध्यात्मिकसुखे ॥२६॥

अर्थ.—पौद्गलिक सुख केवु छे ? एक तो पराधीन छे, स्वभाव क्षय थवा लायक छे, विषयनी वाछनावडे मलिन छे, एम संसारने विषे भयना स्थान घणा छे, ते छता कुमतिना धणी ससारमां रमे छे अने पंडित लोक जे छे ते स्वाधीन सुखमा रमे छे ते सुख केवुं छे ? के जे कोइ काले क्षय पामे नहीं, इंद्रियोनी उत्सुकताये रहित छे जे प्राणी आत्मज्ञानमा लय पाम्या थका छे ते प्राणी सकल भयदिशा रहित थका परमानंदने विषे मग्नपणे रह छे ॥ २६ ॥

तदेतद्भाषन्ते जगदभयदानं खलु भव-
स्वरूपानुध्यानं शमसुखनिदानं कृतधियः ॥
स्थिरीभूते ह्यस्मिन्विधुकिरणकर्पूरविमला
यशःश्रीः प्रौढा स्याज्जिनसमयतत्त्वस्थितिविदाम् ॥२७॥

अर्थ—आ जगत् प्रत्ये पंडित लोक एम कहे छे, जे पोताना आत्मभावना स्वरूपनुं चिंतन ते ज समताना सुखनुं कारण छे, अने जगतने अभयदाननुं देवावालुं छे. जेणे कारकता भावे बुद्धि करी तेने आत्मस्वरूपज्ञान स्थिर थये थके चंद्र किरण कर्पूर सरीखी उज्ज्वल यशलक्ष्मी ते प्रौढपणे विस्तार पामे, एवा तत्त्वज्ञानी ते जिनेश्वरप्रणीत सिद्धांतना तत्त्वनी मर्यादाये वर्त्ते ॥ २७ ॥ इति भवस्वरूप चिंताधिकारः चतुर्थः समाप्त ॥

इतिश्री नयविजयगणिशिष्य श्रीयशोविजयेन विरचिते अध्यात्मसार प्रकरणे प्रथमः प्रबंध ॥ १ ॥



वैराग्य संभवाधिकार

भवस्वरूपविज्ञानाद् द्वेषान्नैर्गुण्यदृष्टिजात् ॥
तदिच्छोच्छेदरूप द्राग् वैराग्यमुपजायते ॥ १ ॥
सिद्ध्या विषयसौख्यस्य वैराग्य वर्णयन्ति ये ॥
मत न युज्यते तेषा यावदर्थाप्रसिद्धित. ॥ २ ॥

अर्थ —भवनु स्वरूप जाण्या थकी, ससार उपर द्वेष थया थकी, ससारने निर्गुणपणे देखवा थकी शीघ्रपणे ससारना विच्छेदनो वैराग्य आत्माने विषे प्रगट थाय ॥ १ ॥ विषयसुखनी सिद्धि–निष्पत्ति–प्राप्ति तवडे जे वैराग्यनु वर्णन करे छे, तेनु मत घटमान नथी, जिहा सुधी अर्थ के० द्रव्य छे, तिहा सुधी विषय छे, एवी प्रसिद्धि छे ' अर्थसत्त्वे विषयसत्त्व "। इति ॥२॥

अप्राप्तत्वभ्रमादुच्चैरवाप्तेष्वप्यनन्तश ॥
कामभोगेषु मूढाना समीहा नोपशाम्यति ॥ ३ ॥
विषयै क्षीयते कामो नेन्धनैरिव पावक ॥
प्रत्युत प्रोल्लसच्छक्तिर्भूय एवोपवर्धते ॥ ४ ॥

अर्थ —जे एम जाणे छे, जे हु कोइ काले ससारने विष आव्योज नथी, जो अनती वार विषय सेव्या छे, त छता आ विषय नवा पाम्यो, एवा भ्रम जेने उपजे छे, एवा जे कामभोगने विष मुझाइ रह्या छे, तेनी अभिलाषाना नाश थतोज नथी ॥३॥ जेम इंधनथी अग्नि घटे नहीं, पण उलटी वृद्धिज पामे, तेम विषय सेवता कामभोग पण कदापि क्षय पाम नहीं, उलटी शक्ति उल्लास पामती जाय; वारवार वधतीज जाए ॥ ४ ॥

सौम्यत्वमिव सिंहाना पन्नगानामिव क्षमा ॥
विषयेषु प्रवृत्ताना वैराग्य खलु दुर्वच ॥ ५ ॥

अकृत्वा विषयत्याग यो वैराग्य दिधीर्षति ।
अपथ्यमपरित्यज्य स रोगोच्छेदमिच्छति ॥ ६ ॥

अर्थ.—जेम सिंहने सोमपणु नथी, सर्पने जेम समता नथी तेम विषयमा जे प्रवर्त्या तेमने वराग्य दोहिलो छे, पण सुगम नथी ॥ ५ ॥ जे विषयनो त्याग कर्या विना चित्तमा वैराग्यनी धारणा करे छे, ते कुपथ्य तज्या विना रोग टालवानी इच्छा करे एवु छे ॥ ६ ॥

न चित्ते विषयासक्ते वैराग्य स्यातुमप्यल ॥
अयोघन इवोत्तप्ते निपतन्निन्दुरभस· — ॥ ७ ॥
यदीदुः स्यात् कुहूरात्रौ फल यद्यवकेशिनि ॥
तदा विषयससर्गिचित्ते वैराग्यसक्रमः ॥ ८ ॥

अर्थ—जेम लोढानो घण तप्यो होय ते पाणीना बिंदुने शोपी जाय छे तेम जेनु चित्त विषयासक्त छे तेना हृदयमा वैराग्य रही शकतो नथी ॥ ७ ॥ जो अमास्नी रात्रीए चद्र उगे अने जो वाझीआ वृक्षने फल आवे तो विषयी जीवना हृदयमा वैराग्य सक्रमे ॥ ८ ॥

भवहेतुषु तद्वेषाद्विषयेष्वप्रवृत्तित. ॥
वैराग्य स्यान्निराबाध भवनैर्गुण्यदर्शनात् ॥ ९ ॥
चतुर्थेऽपि गुणस्थाने नन्वेव तत् प्रसज्यते ॥
युक्त खलु प्रमातॄणा भवनैर्गुण्यदर्शनम् ॥ १० ॥

अर्थ.—भवनी वृद्धिना हेतु उपर जेने द्वेष होय, विषयने विषे जेनी प्रवृत्ति न होय वे प्राणीने ससारनी निर्गुणताना चितनथकी निराबाधपणे वेराग्य उपजे ॥ ९ ॥ चोथा गुणठाणाने

निषे पण सम्यक्त्वर्वत ज्ञातापुरुष निश्चयपणे संसारनी निर्गुणताज जुए छे, तो तेने वैराग्यनी प्राप्ति थाय छे ते युक्त ज छे ॥ १० ॥

सत्य चारित्रमोहस्य महिमा कोप्ययं खलु ॥
यदन्यहेतुयोगेऽपि फलायोगोऽत्र दृश्यते ॥ ११ ॥
दशाविशेषे तत्रापि न चेद् नास्ति सर्वथा ॥
स्वव्यापारहतासंग तया च स्तवभाषितम् ॥१२॥

अर्थ —चारित्रमोहनीनो महिमा साचो छे, केमके निश्चयथकी अन्यजोग हतुये पणफलनुं अयोग्यपणु ते थकी जोतामा आवे छे ॥ ११ ॥ सम्यक्त्वनी दशामा विशेषे करीने ते चोथे गुणठाण पण सर्वथा वैराग्य न ज होय, एम न जाणवु, तिहा पण पोताना आत्मिक स्वभावनी रमणतार्थे कुसंगपणु हणाय छे, ए अर्थ वीतरागस्तोत्रने विषे श्रीहेमाचार्यजीए करलो छे, माटे चोथे गुणठाणे वैराग्यपणुं होय ॥ १२ ॥

यदा मरुन्नरेन्द्रश्रीस्त्वया नाथोपभुज्यते ॥
यत्र तत्र रतिर्नाम विरक्तत्वं तदापि ते ॥ १३ ॥
भवेच्छा यस्य विच्छिन्ना प्रवृत्ति कर्म्मभावजा ॥
रतिस्तस्य विरक्तस्य सर्वत्र शुभवेद्यतः ॥ १४ ॥

अर्थ—जे काले देवताना राजानी लक्ष्मी हे नाथ ! तमे भोगवी तिहा पण जिहा जिहा रतिमोहनी उपजे ते तमे करी नथी, त्यां पण तमे विरक्तपणुं ज धर्युं छे, पण रमाया नथी ॥ १३ ॥ माटे भवनी इच्छा जेहने विछेद थाय छे, तेने ते

अवश्य वेदवा योग्य भावकर्मनी प्रवृत्ति प्रमुख जे विरक्त आत्माने रतिपणुं छे ते सर्वत्र शुभ वेदनी ज वर्ते छे ॥ १४ ॥

अतश्चाक्षेपकज्ञानात् कांताया भोगसन्निधौ ॥
न शुद्धिप्रक्षयो यस्माद्धारिभद्रमिदं वचः ॥ १५ ॥
मायाम्भस्तत्त्वतः पश्यन्ननुद्विग्नस्ततोद्रुतः ॥
तन्मध्ये न प्रयात्येव यथा व्याघातवर्जित ॥ १६ ॥

अर्थ—एही ज कारण माटे स्वरूप ज्ञानना अभ्यासे करी अथवा अन्य वस्तुये करी अन्य वस्तुनु पूरवु ते क्षेपक कहेवाय, ते क्षेपकपणु जेने नथी तेनु नाम अक्षेपक कहिये, एहनो अक्षेपक ज्ञानवत निश्चय भावनु ग्रहण करनारो ते पुरुष जो कांता जे स्त्री तेना भोगने सन्मुख प्रवर्त्ततो होय, तो पण तेहनी शुद्धिनो प्रकर्ष रीते क्षय न थाय, एटले ज्ञानशुद्धि ते कर्मक्षयनु कारण छे एवु हरिभद्रसूरिनु वचन छे ॥ १५ ॥ परमार्थ दिशाथकी मर्न समारने इंद्रजाल समान देखतो थको अनुद्वेग दशामा वर्त्ते, जेहने कामभोगमा उद्वेग नथी ने राग पण नथी ते तेणे करी तेमा तन्मयपणुं न करे, ते निर्विघ्नपणे यथायोग्ये मोक्षे ज जाय छे ॥ १६ ॥

भोगान् स्वरूपतः पश्यस्तथा मायादिकोपमान् ॥
भुंजानो पि ह्यसंगः सन्प्रयात्येव परं पदं ॥ १७ ॥
भोगतत्त्वस्य तु पुनर्न भवोदधिलंघनम् ॥
मायोदकदृढावेशस्तेन यातीह कः पथा ॥ १८ ॥

अर्थ—जे प्राणी शब्दादिक भोगने परमार्थ दिशायें जोतो थको इद्रजाल समान जाणे ते विषयादिकने भोगवतो पण

तेमा लेपातो नथी, ते निश्चय परमपद जे मोक्ष तन पामे छे ॥ १७ ॥ अने जे भवाभिनदी प्राणी ते ससारना भोगने ज तत्त्व करी माने छे, ते प्राणी समार समुद्रने उलघी न शके, केमके मायारूप उदकना आवेशे ते प्राणी कुपथने विषे जाय छे ॥ १८ ॥

स तत्रैव भवोद्विग्ने यथा तिष्ठत्यसशय ॥
मोक्षमार्गेऽपि हि तथा भोगजवालमोहित' ॥१९॥
धर्म्मशक्ति न हत्यत्र भोगयोग बलीयसी ॥
हति दीपापहो वायुर्ज्वलन्त न दावानल ॥ २० ॥

अर्थ—ते प्राणी भोगनो जबाल के० कलिमल तेणे मोहित थयो थको मोक्षमार्गना साधनने विषे पण भवोद्विग्नतापणे निश्चय थकी रहे छे ॥ १९ ॥ धर्मनी सामर्थताने कामभोगनो सयोग हणी शकतो नथी, केमके धर्मनी सामर्थता घणी बलवत्तर छे दीपक समान अल्प धर्मने तो कदापि वायु समान विषय ओलवी नाखे, पण जाज्वल्यमान दावानल समान जे महा धर्मनी वासना तेने वायु नडी शकतो नथी ॥ २० ॥

बध्यते बाढमासक्तो यथा श्लेष्मणि मक्षिका ॥
शुष्कगोलवदश्लिष्टो विषयेभ्यो न बध्यते ॥ २१ ॥
बहुदोषनिरोधार्थमनिवृत्तिरपि क्वचित् ॥
निवृत्तिरिव नो दुष्टा योगानुभवशालिना ॥ २२ ॥

अर्थ—जेम श्लेष्मने विषे माखी लेपाइ फसाइ जाइ छे, तेम विषयने विषे गाढपणे आसक्त थता प्राणी बधाइ जाय छे सुकी मृत्तिकाना गोलामा जेम माखी फसाती नथी तेम आसक्ति

रहित उदासीन एवा जे जीव ते विषयने विषे बंधाता नथी ॥ २१ ॥ जेम रोगने काढवाने ओषधोनी जरूर छे तेम घणा दूषणनो रोध करवाने अर्थे क्वचित अनिवृत्तिपणु पण दुष्ट नथी. जेम कामभोगनी त्यागबुद्धि दुष्ट नथी, तेम अनुभवजोगे करीने सहित जे वर्त्ते तेने क्वचित मात्र अनिवृत्ति छे ते पण निवृत्तिनी पेंज दुष्ट नथी ॥ २२ ॥

यस्मिन्निषेव्यमाणेऽपि यस्याशुद्धिः कदाचिन ।
तेनैव तस्य शुद्धिः स्यात् कदाचिदिति हि श्रुतिः॥२३॥
विषयाणा ततो बधजनने नियमोऽस्ति न ॥
अज्ञानिना ततो बधो ज्ञानिना तु न कर्हिचित् ॥२४॥

अर्थ—जेम शत्रुनी सेवना करनारो पुरुष दुःखीयो थईने कालांतरे सुखी थाय तेम कदापि विषयने सेवनारो कर्म करीने तेहि ज विषयादिकथी शुद्ध थाय, एवी पण कोइकनी श्रुती छे ॥ २३ ॥ जे विषय ते एकांते कर्मबंधनु ज कारण छे, एवो एकांत नियम नथी, पण जे अज्ञानी छे तेने ज कर्मबंधनु कारण छे, पण जे तत्त्वज्ञानी समतारसमां मग्न छे, तेने नथी ॥ २४ ॥

सेवतेऽसेवमानोऽपि सेवमानो न सेवते ॥
कोऽपि पारजनो न स्याच्छ्रयन परजनानपि ॥२५॥
अत एव महापुण्यविपाकोपहितश्रियाम् ॥
गर्भादारभ्य वैराग्य नोत्तमाना विहन्यते ॥ २६ ॥

अर्थ—केटलाक प्राणी विषयने द्रव्यथी अणसेवता थका पण भावथी विषयने सेवे छे, केटलाक प्राणी द्रव्यथी सेवे छे पण भावथी नथी सेवता, पारकी सेवना करतो थको पण तेहनो

परमार्थ पर प्रते न देतो थको एहनो जे ज्ञानी ते कर्ममयी ज नथी थतो ॥ २५ ॥ ए माटे उत्तम पुरुष महापुण्य विपाकना योगे प्राप्त करी एहवी जे तीर्थकरादिकनी लक्ष्मी तेने गर्भथकी माडीने पण वैराग्यधारा त्रटती नथी ॥ २६ ॥

विषयेभ्य प्रशातानामश्रात विमुखैः कृते. ॥
करणैश्चारुवैराग्यमेव राजपथ. किल ॥ २७ ॥

स्वय निवर्त्तमानैस्तैरनुदीर्णैरयन्त्रितै ॥
तृप्तैर्ज्ञानवता तस्मादसावेकपदी मता ॥ २८ ॥

अर्थ—जेहने विषयथकी प्रशात चित्त थयु छे अने विश्राम रहित इद्रियोना विषयने विमुख करयु तेणे करीने मनोहर वैराग्य मार्ग सेवनानु बने, अने विषयनो पण त्याग थाय, ते तो निश्चयथकी वैराग्य दिशानो राजमार्ग छे ॥ २७ ॥ अने जे इच्छा विना महजे कोइ कारणयोगे पोते ईंद्रियविकारथकी निवर्त्ते छे, पण प्रशातने अण उदीरने करीने अनियत्रणायें करी एटले इद्रियनो निरोध हजी कर्या नथी, पण सहेज चारित्र प्रमुखना योगे इद्रियनिरोध थयो छे एहवा तृप्तिवंत ज्ञानी पुरुष तेनो वैराग्य ते पूर्वोक्त राजमार्गना वैराग्यनी एकपदी छे, एटले एकदडी छे जेम गाडा चालवाना मार्गने तो महोटो मार्ग कहियें, पण माणसोने पगे चालवानो रस्तो न्हानो थाय छे, तेम ते वैराग्य पण न्हानो कहिये ॥ २८ ॥

बलेन प्रेर्यमाणानि करणानि वने भवत् ॥
न जातु वशता यान्ति प्रत्युतानर्थवृद्धये ॥ २९ ।

पश्यति लज्जया नीचैर्दुर्ध्यान च प्रयुजते ॥
आत्मान धार्मिकाभासा क्षिपति नरकार्णवे ॥३०॥

अर्थ—बलात्कारे प्रेर्या थकां पण वनना हाथीनी पेठे इंद्रियो कदापि वश थती नथी, ऊलटी अनर्थनी वृद्धि करनारी थाय छे ॥ २९ ॥ लाजे करी नीचु जुए छे अने मनमा दुष्ट ध्यान धरे छे, एवा धर्मधुतारा प्राणी ते पोताना आत्माने नरकना कुपमा नाखे छे ॥ ३० ॥

वचन करणानां तद्विरक्तः फर्तुमर्हति ॥
सद्भावविनियोगेन सदा स्वान्यविभागवित् ॥३१॥
प्रवृत्तेर्वा निवृत्तेर्वा न सकल्पो न च श्रमः ॥
विकारोहीयतेऽक्षाणामिति वैराग्यमद्भुत ॥ ३२ ॥

अर्थ—शुभ भावने अर्पण करीने सदा स्वपर विवेचन ज्ञानयुक्त भावनावाला ज्ञाता विरक्त प्राणी इंद्रियोने ठगवाने समर्थ थाय छे, पण बीजा नथी थता ॥ ३१ ॥ प्रवृत्तिने विषे अथवा निवृत्तिने विषे जेने संकल्प नथी अने थाक पण नथी, एवा समभावे वर्तनारना सर्व विकार दूर थाय छे, अने एनु नाम अद्भुत वैराग्य पण छे ॥ ३२ ॥

दारुयन्त्रस्थपाचालीनृत्यतुल्याः प्रवृत्तयः ॥
योगिनो नैव वाधायै ज्ञानिनो लोकवर्तिनः ॥३३॥
इय च योगमायेति प्रकट गीयते परैः ॥
लोकानुग्रहहेतुत्वान्नास्यामपि च दूषण ॥ ३४ ॥

अर्थः—जेम काष्टनी पुतलीने दोरीना सचारे करी नाचनारीना माफक नाचती जोइए छीये, पण तेने कर्मबंध नथी, तेम लौकिक व्यवहारने विषे वर्त्तता ज्ञानी जे योगीश्वर पुरुष तेहने संसारनी प्रवृत्ति पीडा करती नथी ॥ ३३ ॥ ए वैराग्य

वैराग्यभेदाधिकार

तद्वैराग्य स्मृत दुःखमोहज्ञानान्वयात्रिधा ॥
तत्राद्य विषयाप्राप्तेः समारोद्वेगलक्षण ॥ १ ॥
अत्रागमनमोः खेदो ज्ञानमव्यापक न यत् ॥
निजाभीप्सितलाभे च विनिपातोऽपि जायते ॥ २ ॥

अर्थः—ते वैराग्य त्रण प्रकारनो छे. दुःखगर्भित, मोहगर्भित अने ज्ञानगर्भित. तेमा प्रथम कह्यो ते विषयादिकने न पामवाथकी समारथी उद्वेग पामवानु लक्षण छे, माटे तेहने दुःखगर्भित वैराग्य कहिये ॥ १ ॥ देह मनथी, मन मनथी जे खेद तेथी उपज्यु जे ज्ञान ते अव्यापक के० वृद्धिकारी न थाय, आत्मानी पुष्टिकर्ता न थाय, केमके ते प्राणी पोताने अभिलाप करवा योग्य धनादिक वस्तुने पामीने तापमादिपणु छोडीने पाछु गृहस्थपणु अगीकार कर ॥ २ ॥

दुःखाद्विरक्ताः प्रागेवच्छति प्रत्यागतेः पद ॥
अधीरा इव सग्रामे प्रविशतो वनादिक ॥ ३ ॥
शुष्कतर्कादिक किचिद्वैयकादिकमप्यहो ॥
पठति ते शमनदीं न तु सिद्धातपद्धति ॥ ४ ॥

अर्थः—दुःखथकी जे वैराग्य पामे छे ते तो प्रथमथी ज पाछा गृहस्थाश्रमनी इच्छा करे छे, जे दुःख टले तो घर जइये, जेम अधीर पुरुष जे कायर ते सग्राममे निप जतोथको वननी गलीमा भराइ बेसवानी इच्छा करे छे, तेहनी परे ॥ ३ ॥

प्राणीयो वादविवाद करवाने शुष्क तर्क ग्रंथ भणे छे, आजीविकाने अर्थ वैद्यक प्रमुखना ग्रंथ भणे छे, पण ममता रसनी नदी एवी सिद्धांतनी जे पद्धति ते भणता नथी ॥ ४ ॥

ग्रथपल्लव बोधेन गर्वोष्माण च बिभ्रति ॥
तत्त्व ते नैव गच्छति प्रशमामृतनिर्झर ॥ ५ ॥
वषमात्रभृतोऽप्येते गृहस्थान्नातिशेरते ॥
न पूर्वोत्थायिनोयस्मान्नापि पश्चान्निपातिनः ॥ ६ ॥

अर्थः—जे समता–अमृतना झरणने पाम्या नथी, ते ग्रथना पल्लवमात्रक० खडखडमात्रे करीने गर्वनी गरमीने धरीनेज वर्ते छे, पण तत्वना रहस्यने पामताज नथी ॥ ५ ॥ जे साधुना वेष मात्रे करीने पोतानु जीवितव्यपणु राखे छे, ते पण गृहस्थ-तुल्यज छे, पण गृहस्थथी न्यारा नथी, जेणे आगल उच्छाह धर्यो नथी, जे गुण पामीने पडवाइ पण थया नथी, केमके गुण पामीने तजे ते तो पडवाइ कहवाय, पण एतो कोडवारे पडवाइ पण थया नथी, एहवा जे छे ते तो गुणने पाम्याज नथी ॥ ६ ॥

गृहेऽन्नमात्रदौर्लभ्य लभ्यते मोदका व्रते ॥
वैराग्यस्यायमर्थो हि दुःखगर्भस्य लक्षण ॥ ७ ॥
कुशास्त्राभ्यासमभूतभवनैर्गुण्यदर्शनात् ॥
मोहगर्भ तु वैराग्य मत बालतपस्विना ॥ ८ ॥

अर्थ —अहा घरमा तो पूरु अन्न पण नथी मलतु, ने दीक्षा लीधा थकी तो लाडवा मले छे, त माट दीक्षा लेवामा शुं दुःख छे ? एवु जाणीने जे दीक्षा लिये छे तेनु नाम दुःखगर्भित वैराग्य जाणवु ॥ ७ ॥ ए रीते प्रथम दुःखगर्भित वैराग्यपणु

देखाड्युं. हवे मोहगर्भित वैराग्य कहे छे कुशास्त्रना अभ्यासथी प्रगट्यु जे ससारनु निर्गुणीपणु तेथी मोहगर्भित वैराग्य थाय छे ते बाल तपस्वी प्रमुख जाणवा ॥ ८ ॥

सिद्धातमुपजीव्यापि ये विरुद्धार्थभाषिण. ॥
तेषामप्येतदेवेष्टकुर्वतामपि दुष्कर ॥ ९ ॥
ससारमोचकादीना मिवैतेषा न तात्त्विक: ॥
शुभोऽपि परिणामो यज्ञातानाज्ञानरुचिस्थिति ॥१०॥

अर्थ:—जे सिद्धातनुं उपजीवन करीने पणसूत्र विरोधि अर्थ कहे छे, ते प्राणी जो दुष्कर करणी करे छे तोपण तेने एजो ज जाणवो ॥ ९ ॥ ससारना दु:खथी मूकाववाना हेतुथी जे मुसलमान ते घोडा प्रमुखने दु.खी देखी दयाभावे करी मारी नाखे छे, ते पण शुभ परिणामनी बुद्धि राखे छे ते छता परमार्थे पाप ज छे, तेम मोहगर्भितने परमार्थ जडे नहीं जो एनो परिणाम शुभ होय तोपण परमार्थे ज्ञाननी रुचि थाय नहीं ॥ १० ॥

अमीषा प्रशमोप्युच्चै दोषपोषाय केवल ॥
अतर्निलीनविषम ज्वरानुभवसन्निभ· ॥ ११ ॥
कुशास्त्रार्थेषु दक्षत्वं शास्त्रार्थेषु विपर्यय: ॥
स्वच्छदता कुतर्कश्च गुणवत्सस्तवोज्झन ॥ १२ ॥

अर्थ—जेम अंतरगमा लीन थइ रह्यो एहवो हाडवेदी ज्वर दु:खदायी थाय छे, तेम एने पण जे प्रशमादिक गुण थाय, ते पण घणु करीने केवल दूषणभणीज थाय, पण गुणभणी नहींज थाय, केमके अतरग मिथ्यात्व गया विना वैराग्य ते दु:खदायी छे ॥ ११ ॥ कुशास्त्रना अर्थने विषे डाह्या थाय, ने शास्त्रना

निपरीत अर्थ करे, स्वछंदपणे वर्त, कोइ माथे क्षमा राखे नहीं अने गुणीनी प्रशमा न करे ॥ १२ ॥

आत्मोत्कर्षः परद्रोहः कलहो दम्भजीवन ॥
आश्रवाच्छादन शक्त्युल्लघनेन क्रियादर ॥ १३ ॥
गुणानुरागवैधुर्यमुपकारस्य विस्मृतिः ॥
अनुबन्धाग्रचिंता च प्रणिधानस्य विच्युति ॥१४॥

अर्थ —जे पोतानी मोटाइ करे, पारको द्रोह करे, क्लेश कजीआ करे, कपट राखे, पोताना पाप ढांके, पोतानु सामर्थ्य उलंघीने क्रियानो उद्यम करे, ते आर्तध्यानी कहेवाय ॥ १३ ॥ वली जे गुणी पुरुषोनो रागी न होय, बीजाना करेला उपकारने विसरी जाय, तीव्र कर्मबंधनी चिंता सहित वर्त्ते, अने शुभ अध्यात्मना अध्यवसाय रहितपणे वर्त्ते ॥ १४ ॥

श्रद्धामृदुत्वमौद्धत्य माधुर्य्यमविवेकिता ॥
वैराग्यस्य द्वितीयस्य स्मृतेय लक्षणावली ॥ १५ ॥
ज्ञानगर्भं तु वैराग्य सम्यक्तत्त्वपरिच्छिदः ॥
स्याद्वादिनः शिवोपायस्पर्शिनस्तत्त्वदर्शिन ॥१६॥

अर्थ —श्रद्धा, मृदुता, उद्धतता, मधुरता, अविवेकपणु ए मोहगर्भित वैराग्यनी परपरा जाणवी ॥१५॥ ए रीते मोहगर्भित वैराग्यनु स्वरूप कह्यु हवे ज्ञानगर्भित वैराग्यनु स्वरूप कहे छे जे सम्यक्त्वे करी तत्त्वनी ओलखाण करे, स्याद्वाद दृष्टिए वर्ते, मोक्षनु चिंतन करे, मोक्षना उपायने फरसे, अने तत्त्वदिशा देखवानो अर्थी थाय, ते ज्ञानगर्भित वैराग्य जाणवो ॥ १६ ॥

मीमांसा मांसला यस्य स्वपरागमगोचरा ॥
बुद्धिः स्यात्तस्य वैराग्यं ज्ञानगर्भमुदंचति ॥ १७॥
न स्वान्यशास्त्रव्यापारे प्राधान्यं यस्य कर्मणि ॥
नासौ निश्चयसंशुद्धं सारं प्राप्नोति कर्म्मणः ॥१८॥

अर्थः—जेहनो विचार पुष्टकारी होय अने स्वसिद्धांत तथा परसिद्धांत संबंधी बुद्धि जेने होय तेने वैराग्यनी वात कहिये, अने एवानेज ज्ञानगर्भित वैराग्य प्रगट थाय ॥ १७ ॥ जेने स्वशास्त्र परशास्त्रना व्यापारनुं प्राधान्यपणुं नथी, तेमज क्रियाने विषे पण प्राधान्यता नथी, ते निश्चे थकी क्रियानुं निर्मल सारभूत जे फल तेने क्यारे पण पामे नहीं ॥ १८ ॥

सम्यक्त्वमौनयोः सूत्रे गतप्रत्यागते यतः ॥
नियमो दर्शितस्तस्मात् सारं सम्यक्त्वमेव हि ॥१९॥
अनाश्रवफलं ज्ञानमव्युत्थानमनाश्रवः ॥
सम्यक्त्वं तदभिव्यक्तिरित्येकत्वविनिश्चयः ॥२०॥

अर्थः—जे सम्यक्त्व ते मोन चारित्र कहिये, अने चारित्र ते मोन समकित कहिये, एवुं श्री आचारांग मध्ये गतप्रत्यागत करीने कह्युं छे ॥ जं सम्मं तिपासहा तं मोणं तिपासहा जम्मो ॥ ते माटे नियामकतापणुं जाणवुं ॥ सिझंति चरणरहिया दंसणरहिया न सिझंति ॥ इति वचनात्. ते माटे सम्यक्त्व ते सारभूत जाणवुं ॥ १९ ॥ आश्रवनो त्याग ते ज्ञाननुं फल छे अने अनाश्रवनुं फल ते अव्युत्थान एटले विषयमां उजमाल न थाय, विषयनो त्यागी होय, एवुं नाम निश्चय सम्यक्त्व कहिये कारक सम्यक्त्वीनी एवी दृष्टि होय, एटला माटे निश्चय नयनीरति के० प्रीति ते शुद्धचारित्ररतनेज होय ॥ २० ॥

बहिर्निवृत्तिमात्र स्याचारित्र्याद्व्यवहारिकात् ॥
अत.प्रवृत्तिसार तु सम्यक्प्रज्ञानमेव हि ॥ २१ ॥
एकांतेन हि षट्कायश्रद्धानेऽपि न शुद्धता ॥
सपूर्णपर्ययालाभाद् यन्न याथात्म्यनिश्चयः ॥ २२ ॥

अर्थ'—धन, कण, कंचन, कामिनी प्रमुख बाह्य वस्तुनो जे त्यागी थाय, ए व्यवहार चारित्रना पालनाथी ते प्राणी व्यवहार दृष्टियेज चाले छे अने जेने सम्यक्त्व सहित ज्ञाननी प्रवृत्ति होय, तेहनेज अतरग प्रवृत्तिनो सार कहिये ॥ २१ ॥ समस्त नयनी वासना रहित थका एकाते छकायनी रक्षानी श्रद्धा करता थका सम्यक्त्वनी शुद्धता न कहेनाय, पण सपूर्ण नयनो अपेक्षाये द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नयना लाभ विना यथार्थपणानो लाभ नही ज थाय, माटे शुद्ध नयनी अपेक्षाये वर्तवु ॥ २२ ॥

यावत पर्यया वाचा यावतश्चार्थपर्यया ॥
साप्रतानागतातीतास्तावद्द्रव्य किलैकक ॥ २३ ॥
स्यात्सर्वमयमित्येव युक्त स्वपरपर्ययै ॥
अनुवृत्तिकृत स्वत्व परत्व व्यतिरेकज ॥ २४ ॥

अर्थ—जेम जगतमा वर्त्तमान, अनागत तथा अतीतकालना जेटला शब्द पर्याय वचनना छे, तथा पदार्थना जेटला अर्थपर्याय छे, ते सर्व पर्याय निश्चेथी एकज द्रव्य छे ॥ २३ ॥ जे सत्व के० पदार्थ ते सर्वस्व परपर्यायमयी होय ते आवी रीते जे अनुवृत्ति सहचारी गुणपणे स्वत्व के० स्वपणु जाणवु अने परपणु ते व्यतिरेकपणे करी जाणवु ॥ २४ ॥

ये नाम परपर्यायाः स्वास्तित्वायोगतो मताः ॥
स्वकीया अप्यमी त्याग स्वपर्यायविशेषणात् ॥२५॥
अतादात्म्येऽपि सबधव्यवहारोपयोगतः ॥
तेषा स्वत्व धनस्येव व्यज्यते सूक्ष्मया धिया ॥ २६ ॥

अर्थ—जेटला परपर्याय छे ते सर्वे पोतानी आस्तिक्यताना अजोगथी जाणवा. ते यद्यपि पोताना छे, तो पण गतभावे छे अने पोताना पर्याय तो सामान्यतापणे छे ॥ २५ ॥ परपर्याय जो पण तादात्म्यभावे नथी तोपण व्यवहारनयना जोगथी तेहनो सबध छे. जेम धननो धणी अने धन ते जुदा जुदा छे, तोपण सूक्ष्म बुद्धिये विचारता तेमनो सबध जणाय छे ॥ २६ ॥

पर्यायाः स्युर्मुनेर्ज्ञानदृष्टिचारित्रगोचराः ।
यथा भिन्ना अपि तयोपयोगाद्वस्तुनो ह्यमी ॥ २७ ॥
नो चेदभावसबधान्वेपणं का गतिर्भवेत् ॥
आधारप्रतियोगित्वे द्विष्ठे न हि पृथग् द्वयोः ॥ २८ ॥

अर्थ—तेम अभिन्नपणे ज्ञानना तथा चारित्र सबंधी पर्याय मुनिने पण होय, जो पण ते अभिन्न छे, तो पण उपयोगपणे विचारता निश्चयनये पोतपोताना ज छे, पण व्यवहारे एक आत्माना छे, एम कहेवाय ॥ २७ ॥ एम जो न कहीये अने अभावना सबधथी गवेषणा करिये तो केवी गति थाय ? आधारातर निरूपकत्वाने भावे विचारता, " द्विष्ट विनिष्टे द्वयात् " एटले पृथक्भावताना द्वेप करवाथी विणसे अने ते बेहुथी आत्मा भिन्न नथी ॥ २८ ॥

स्वान्यपर्यायसश्लेषात् सूत्रेऽप्येव निदर्शित ॥
सर्वमेक विदन्वेद सर्व ज्ञान तथैकक ॥ २९ ॥
आसत्तिपाटवाभ्यास स्वकार्यादिभिराश्रयन् ॥
पर्यायमेकमप्यर्थ वेत्ति भावाद् बुधोऽखिल ॥३०॥

अर्थ—स्वपर्याय अने परपर्यायना सबधथी सूत्रने विषे पण एम देखाड्यु छे के सघलु एकताभावे जाणता, " एगेआया, " इत्यादिक सघलु ज्ञान ते सग्रहनये करी एकज छे ॥ २९ ॥ माटे चित्तनी आसक्तिय अने बुद्धिनी पाटवताये अभ्यास करवाथी पोताना कार्यपणादिकने आश्रयता थका पर्यायना एक अर्थने जाणीने पण बुद्ध जे पडित ते सर्व भावने जाणे " जे एग जाणइ से सव्व जाणइ " इति वचनात ॥ ३० ॥

अतरा केवलज्ञान प्रतिव्यक्तिर्न यद्यपि ॥
क्वापि ग्रहणमेकाशद्वार चातिप्रसक्तिमत ॥ ३१ ॥
अनेकातागमश्रद्धा तथाप्यस्खलिता सदा ॥
सम्यग्दृशस्तथैव स्यात् सपूर्णार्थविवेचन ॥ ३२ ॥

अर्थ—यद्यपि केवलज्ञानने विष तो काइ पण प्रतिव्यक्ति नथी, तोपण कोई ठेकाणे एक अशनुज ग्रहण कर्यु छे, ने कोइ स्थानक सर्वांश ग्रहण कीधो छे ॥ ३१ ॥ तो पण अनेकात आगमनी श्रद्धा ते अस्खलितपणे सदा प्रवर्त्ते छे, माटे अनेकात पणु अंगीकार करता ज सम्यक्त्व छे, तथा उत्सर्ग, अपवाद, निश्चयव्यवहार वना सपूर्ण अर्थनो निश्चय थाय छे ॥ ३२ ॥

आगमार्थोपनयनाद् ज्ञान प्राज्ञस्य सर्वग ॥
कार्य्यादेर्व्यवहारस्तु नियतोल्लेखशेखर. ॥ ३३ ॥

तदेकांतेन यः कश्चिद्विरक्तस्यापि कुग्रहः ॥
शास्त्रार्थबाधनात्सोऽयं जैनाभासस्य पापकृत् ॥ ३४ ॥

अर्थ—आगमना अर्थनु उपनयन जे थापवु ते थकी प्राज्ञ जे बुद्धिवंत तेनु ज्ञान सर्वव्यापकपणे प्रवर्त्ते कार्यादिक जे व्यवहार छे, ते तो निश्चयपणे चित्रामणनी रेखा सरिखो छे श्रेष्ठरूप करवाने जेम आलेखन करे ते सरिखो व्यवहार छे, अने समग्ररूप करवा समान ते निश्चयनय छे ॥ ३३ ॥ ते माटे एकांत नय अंगीकार करीने प्रवर्त्तनारा वैराग्यवंतने पण कुग्रही कहिये, तो बीजा मात्र नाम धरावनार होय तेनी तो शी वार्ता ? एक नयवालो शास्त्रना अर्थनो बाधक जाणवो ते जो जैनाभास छे तो पण पापकारी जाणवो ॥ ३४ ॥

उत्सर्गे चापवादेऽपि व्यवहारेऽथ निश्चये ॥
ज्ञाने कर्म्मणि वाय चेन्न तदा ज्ञानगर्भता ॥ ३५ ॥
स्वागमेऽन्यागमार्थाना शतस्येव परार्धके ॥
तावताप्यबुधत्वं चेन्न तदा ज्ञानगर्भता ॥ ३६ ॥

अर्थ—उत्सर्गमार्गमा, अपवादमार्गमा, व्यवहारमार्गमा, निश्चयमार्गमा, ज्ञाननयने विषे अने क्रियानयने विषे जो कदाग्रह नथी, तो तेने ज्ञानगर्भितपणु छे अने ते ज्ञानी पण छे ॥३५॥ स्वसिद्धांतना जाणवाथी अन्य शास्त्रनुं जाणवुं ते तेमा ज समाइ जाय छे जेम परार्ध नाम उत्कृष्ट गणित (अंक) छे, तेमा सोनुं गणित (अंक)पण समाइ जाय छे, अने तेटलु ज्ञान पामीने पण जो अज्ञानपणु रहे तो, तेने ज्ञानगर्भिता बिलकुल नथी एम जाणवु ॥ ३६ ॥

नयेषु स्वार्थसत्येषु मोघेषु परचालने ॥
माध्यस्थ्यं यदि नायातं न तदा ज्ञानगर्भता ॥३७॥

आज्ञयागमिकार्थानां यौक्तिकानां च युक्तितः ॥
न स्थाने योजकत्वं चेन्न तदा ज्ञानगर्भता ॥३८॥

अर्थ—पोतपोताना स्वार्थने विषे सघला नय सत्य छे, ने परमार्थनी चालन विषे निष्फल छे, अने ते नयना विवादमां जो मध्यस्थता न आवी तो तेने ज्ञानगर्भता छे ज नहीं ॥३७॥ जे आज्ञाग्राह्य अर्थने आज्ञाये ग्रहे नही, आगम प्रमाणे ग्रहवा योग्यने आगम ग्रहे नहीं, अने युक्तिग्राह्यने युक्तिवडे ग्रहे नही, एम सहुने पोतपोताने ठेकाणे जोडी जाणे नही, तो तेने ज्ञानगर्भिता मूलथी ज नथी एम जाणवु ॥ ३८ ॥

गीतार्थस्यैव वैराग्यं ज्ञानगर्भं ततः स्थितं ॥
उपचारादगीतस्याप्यभीष्टं तस्य निश्रया ॥ ३९ ॥

सूक्ष्मेक्षिका च माध्यस्थ्यं सर्वत्र हितचिंतनं ॥
क्रियायामादरो भूयान् धर्मे लोकस्य योजनं ॥४०॥

अर्थ—उपर कह्या मुजब ता गीतार्थने ज ज्ञानगर्भित वैराग्य छे, पण अनानीन नथी एम ठर्युं, तो पण तेना उपचारथकी अगीतार्थने पण गीतार्थनी निश्राये ज्ञानगर्भित वैराग्य छे ॥३९॥ ते माटे सूक्ष्म दृष्टिये मध्यस्थपणु अंगीकार करीने अने परदूषण वर्जीने वर्त्तवु, सर्व जगतना जीवनु हित चिंतवबु, मैत्रीभाव धरवो, क्रियाने विषे घणो आदर करजो, उपयोग धरवो अने धर्ममार्गमा लोकने जोडवा एहि ज श्रेष्ठ छे ॥ ४० ॥

चेष्टा परस्य वृत्तांते मूकांधवधिरोपमा ॥
उत्साहः स्वगुणाभ्यासे दुःस्थस्येव धनार्जने ॥४१॥
मदनोन्मादवमन मदसमर्दमर्दन ॥
असूयाततुविच्छेदः समतामृतमज्जन ॥ ४२ ॥

अर्थ—मुगा तथा आंधला अने बेहरानी पेरे बोलवामा, देखवामा अने सांभलवामा इत्यादिक पारका वृत्तांतने विषे जेणे चेष्टा तजी छे, अने पोताना गुणना अभ्यास करवामा जे उत्साहवंत छे, जेम दरिद्री धन कमावानो उद्यमी होय तेनी परें उजमाल थको वर्त्ते ॥ ४१ ॥ कामना उन्मादनुं वमन करनारा, मदना समूहने टालनारा, ईर्षारूप ततुना तोडनारा अने समतारूप अमृत कुंडमां मज्जन करनारा ॥ ४२ ॥

स्वभावान्नैव चलन चिदानंदमयात्सदा ॥
वैराग्यस्य तृतीयस्य स्मृतेयं लक्षणावली ॥ ४३ ॥
ज्ञानगर्भमिहादेय द्वयोस्तुस्वोपमर्दतः ॥
उपयोगः कदाचित् स्यान्निजाध्यात्मप्रसादतः ॥ ४४ ॥

अर्थ—तथा चिदानंदमयपणाना स्वभावथी सर्वदा चलायमान नही एहवा वर्त्तणुकवंत जे होय, ए त्रीजा ज्ञानगर्भित वैराग्यना गुणनी लक्षणावली कही ॥ ४३ ॥ इहा ज्ञानगर्भित वैराग्य ते ग्रहवा योग्य छे, अने मोहगर्भित वैराग्य तथा दुःखगर्भित वैराग्यनु उपमर्दन करीने केडक पोताना अध्यात्मभावना प्रमादथकी कदाचित् ज्ञानगर्भित वैराग्यनो उपयोगी थाय ॥४४॥

इति श्रीवैराग्यभेदाधिकारः षष्ठः समाप्त ॥

वैराग्य विषयाधिकार—

विषयेषु गुणेषु च द्विधा भुवि वैराग्यमिदं प्रवर्त्तते ॥
अपरं प्रथमं प्रकीर्तितं परमध्यात्मबुधैर्द्विलायकं ॥ १ ॥

अर्थ—पृथ्वीने विषे विषयमा अने गुणमा ए बेहु प्रकारे वैराग्य प्रवर्त्ते छे तेमा विषय वैराग्य तो अमुख्यपणे कह्यो छे बीजो अध्यात्मभावयुक्त गुण वैराग्य ते मुख्यपणे जाणवो ॥१॥

विषयाउपलम्भगोचरा अपि चानुश्रविकाविकारिणः ॥
न भवति विरक्तचेतसा विषधारेव सुधासु मज्जता ॥२॥

अर्थ—जे विषय वैराग्य छे ते प्राप्तिगोचरपणे वर्त्ते छे, पण निश्चेथी ज्ञाता पुरुष ते रूपरसादिकने विषे आसक्ति करे नही जे विरक्त चित्तवाला ते अविकारी थकान होय, केमके जे अध्यात्मरूप अमृतधाराने विषे मज्जन करता होय तेहने विषनी धारा शु करनार छे ? अर्थात तेहने कांइ विषनी धारा पीडा करी शकती नथी ॥ २ ॥

सुविशालरसालमंजरीविचरत्कोकिलकाकलीभरैः ॥
किमु मायति योगिनां मनो निभृतानाहतनादसादरं॥३

अर्थ—जे योगीश्वर अनहद नादे सहित छे, ते योगमार्गे करीने सर्व देहरूपपुरीने " अर्हंपद " अथवा " सोहं " पद अथवा ॐकार ध्वनि मनमा धरे छे, तेनो ब्रह्मद्वारे जे नाद ऊठे छे तेनु नाम अनहद नाद कहिये, तेणे करी जे युक्त छे तो तेवा योगीश्वरनुं मन भली विस्तारवती आंबानी मंजरीने विषे विचरती जे कोकिला तेना मनोहर शब्द सांभलीने शु मग्न थशे ? अर्थात् नहीं ज थशे ॥ ३ ॥

रमणीमृदुपाणिककणक्वणनाकर्णनपूर्णघूर्णना: ॥
अनुभूतनटीस्फुटीकृतप्रियसगीतरता न योगिन: ॥४॥

अर्थ—स्त्रीना सुकोमल हाथमा रह्या जे कंकण तेनो शब्द सामलीने पूर्णपणे घुम्या छे लोचन तेनी अनुभवन दिशारूप नाटक करनारी स्त्रीये प्रियकारी सगीतरुप नाटक कीधा तो पण तेमा योगीश्वरनु मन रगाय नही, एटले लोभाय नही ॥ ४ ॥

स्खलनाय न शुद्धचेतसा ललनापचमचारुघोलना ॥
यदिय समतापदावलीमधुरालापरतैर्न रोचते ॥ ५ ॥

अर्थ—स्त्रीनी पचमरागनी घोलना ते समतापदनी श्रेणिना मधुर आलापनी रतिवाला शुद्ध चेतनावत योगीने रुचे नहीं, एटले शुद्ध चेतनावतने स्खलनाकारी न थाय ॥ ५ ॥

सतत क्षयि शुक्रशोणितप्रभव रूपमपि प्रिय न हि ॥
अविनाशिनिसर्गनिर्म्मलप्रथमानस्वकरूपदर्शिन: ॥६॥

अर्थ:—अविनाशी सहज निर्मल अने विस्तार पामतु एहवु जे पोतानु स्वरूप तेहना जोनार योगीश्वर तेने तो जेनु निरतर शील क्षय थाय छे अने वीर्यरुधिरथी उपनु एवु जे स्त्री आदिकनु रूप ते प्रियकारी लागतु नथी ॥ ६ ॥

परद्रव्यमपायसकुल विषयो यत्खलु चर्मचक्षुष: ॥
न हि रूपमिद मुदे यथा निरपायानुभवैकगोचर: ॥७॥

अर्थ:—जेशे निरपाय के० जेहनो नाश नथी एहवो अनुभवदिशाने जोवानो रस छे तेनो रूप ते परपदार्थ के० बीजाने जोवा योग्य छे, तथा नाशवंत छे, अने चर्मचक्षुनो विषय

छे एहवो जे रुप ते जोनाथकी तेनो जे रस ते निश्चयनयथकी हर्षकारी न थाय ॥ ७ ॥

रतिविभ्रमहास्यचेष्टितै र्ललनानामिह मोदते ऽबुध ॥
सुकृताद्रिपविप्रमापु नो विरताना प्रमरति दृष्टयः॥ ८

अर्थ—रतिसुखने देखीने तथा स्त्रीना नेत्रविभ्रमनी चेष्टाये करीने अबुद्ध जे अज्ञानी प्राणी ते घणो हर्ष पामे छे, पण ए विभ्रम विलासादिक तो सुकृतरूप पर्वतने वज्र थइ भेदे एवा छे माटे योगीश्वरनी दृष्टि तेमा रमती नथी ॥ ८ ॥

न मुदे मृगनाभिमल्लिकालवलीचदनचद्रसौरभ ॥
विदुषा निरुपाधिबाधितस्मरशीलेन सुगधिवर्ष्मणा ९

अर्थ —कस्तूरी, मालतीना पुष्प, लवली के० एलची चदन तथा चद्र के० कर्पूरनी सुगधी ते पडित लोकोने मग्न करती नथी, तेमन तो निरुपाधिक अनुभवगोचर स्वरूप चिदानदने विषेज मग्नपण वर्ते छे, पण रूपादिकने विषे मग्नतापणु नथी ॥ ९ ॥

उपयोगमुपेति यचिर हरते यन्न विभावमारुत ॥
न तत खलु शीलसौरभादपरस्मिन्निह युज्यते रति.॥१०

अर्थ —जे घणा काल सुधी उपयोगमा आवे, जेनी सुगधीने विभावदिशारूप वायु हरी शकतो नथी, एवी जे शील सुगधी तेन मूकी योगीश्वरनु चित्त अन्य सुगधीमा लोभातु नथी ॥ १० ॥

मधुरैर्न रसैरधीरता कचनाध्यात्मसुधालिहा सता ॥
अरसे. कुसुमैरिवालीना प्रसरत्पद्मपरागमोदिना ॥११॥

अर्थः—जेम विकस्वर थता जे कमल तेना स्वाद सुगंधयुक्त रसे मग्न थया एवा जे भ्रमर ते निरस कुसुम उपर रति पामे नहीं, तेम अध्यात्मरूप अमृतरसना भोगी जे प्राणी तेने बीजा शर्करादिक मधुररसनी अधीरजता उपजती नथी, गृधतापणु करे नहीं ॥ ११ ॥

विपमायतिभिर्नु कि रसैः स्फुटमापातसुखैर्विकारिभिः
नवमेऽनवमे रसे मनो यदि मग्न मततावि कारिणि ।१२।

अर्थः—जे आगल कडवा विपाक आपे एवा मधुररसे शु सारुं ? वली प्रगटपणे राज्यवृद्धि, स्त्री विषयादिक सुख पाम्या अने ते पाछा जता रहे तेथी विक्रिया प्रगटे तो तेवा सुखथी शु सारु ? जो सदाय अविकारी एवो पूर्ण नवमो जे शांतरस तने विषे मनमग्न छे, तो पूर्वे कह्या एवा रसे शु फायदो थाय ? अर्थात् काइज नहीं ॥ १२ ॥

मधुर रसमाप्य निःपतेद्रसनातो रसलोभिना जल ॥
परिभाव्य विपाकसाध्वस विरताना तु ततो दृशोर्जल१३

अर्थः—एक अचरज जुवो, के रसना लालची जे प्राणी ते मधुर रसने जोइने अथवा खावानी वात साभलीने कहे छे के माग मुखमा पाणी भराय छे एटले जीभथी पाणी पडे छे, अने सर्वविरति जे मुनिराज ते मासादिक मधुररस खावे आगल माठा विपाक आवशे, तेना भयने विचारी बेउ आखे पाणी आणे छे, एटले आखमाथी आसु पाडे छे ॥ १३ ॥

इह ये गुणपुष्पपूरिते धृतिपत्नीमुपगुह्य शेरते ॥
विमले सु विकल्पतल्पके क्व बहिः स्पर्शरता भवतु ते १४

अर्थः—इहा चरणकरणादिक जे गुण ते रूप फुलें पुरी एनी निर्मळ जे मुनिकल्प क० मनकुशलतारूप शय्या, तेहने विषे संतोषरूप स्त्रीने आलिंगन देइने सूए छे, वेवा मुनिराज वे बाह्य स्त्रीना स्पर्श विषे रत केम थाय ? ॥ १४॥

हृदि निर्वृतिमेव बिभ्रता न मुदे चंदनलेपनाविधिः ॥
विमलत्वमुपेयुषा सदा सलिलस्नानकलापि निष्फला १५

अर्थ —हृदयने विषे निवृत्ति सुखने धरनारा जे प्राणी तेने बावनाचंदनना लेपनी विधि त हर्ष आपती नथी, तथा सदैव निर्मलभावने धरता जे प्राणी तेन जलनी स्नानविधि ते निष्फल जाणवी ॥ १४ ॥

गणयति जनु स्मरयंत्सुरताल्लासखुखेन भोगिन ॥
मदनाहिविषोग्रमूर्छनामयतुल्य तु तदेव योगिनः॥१६॥

अर्थ—भोगी प्राणी स्त्री साथे विलास संभोगना सुखे करी जन्मारो सफल माने छे, अने योगीश्वर पुरुष तो मदन जे काम तेनी चेष्टान सर्पना विषनी आकरी मूर्च्छातुल्य माने छे॥१६

तदिमे विपयाः किलैहिका न मुदे केऽपि विरक्तचेतसा॥
परलोकसुखेऽपि नि स्पृहा परमानंदरसालसा अमी॥१७

अर्थ—वैरागी जीवने आ भवमा क्षणिक सुख आपे एवा जे विषय ते निश्चयथकी काइ पण हर्षकारी नथी, केमके त्यागी प्राणी ता परलोक जे स्वर्गादिकना सुख तेने विषे पण नि स्पृही छे, ते तो मात्र मोक्षसुखनाज अभिलाषी छे ॥ १७ ॥

मदमोहविषादमत्सरज्वरबाधाविधुराः सुरा अपि ॥
विषमिश्रितपायसान्नवत् सुखमेतेष्वपि नैति रम्यता ॥ १८

अर्थ—गर्व, अज्ञान, विषाद अने मत्सर ते रूपभावनी पीडाये रहित एवा जे देवता तेनां जे विषयादिक सुख ते पण विषमिश्रित दूधपाकना भोजननी परे मनोहरकारी नथी ॥ १८ ॥

रमणीविरहेण वह्निना बहुबाष्पानिलदीपितेन यत् ॥
त्रिदशैर्दिवि दुःखमाप्यते घटते तत्र कथ सुखास्थितिः १९

अर्थ—केमके स्त्रीना वियोगरूप अग्नि ते आसुरूप वायरे करी देदीप्यमान थयो एवो जे शोकरूप अग्नि प्रगट्यो, तेथी स्वर्गना देवताने पण पीडा थाय छे, तेवा ते स्वर्गमा देवताने पण सुखनी स्थिति छे, एहवु केम कहेवाय ? ॥ १९ ॥

प्रथमानविमानसपदा च्यवनस्यापि दिवो विचिन्तनात् ॥
हृदय न हि यद्विदीर्यते घुसदा तत्कुलिशाणुनिर्मित ॥ २०

अर्थः—जेने विमान सपदा मोटी छे एवा देवताने पण च्यवन वेलाये जे दुःख प्रगटे छे, ते दुःखथी देवतानु हृदय मात्र फाटतु नथी, तेनु कारण जे तेमनु हृदय ते वज्रना परमाणुये करी उत्पन्न थयेलु छे, तथी घणु कठण छे, माटेज फाटतु नथी ॥ २० ॥

विषयेषु रतिः शिवार्थिनो न गतिष्वस्ति किलाखिलास्वपि ॥
घननदनचदनार्थिनो गिरिभूमिष्वपरद्रुमेष्विव ॥२१॥

अर्थः—जेम निबिड मदनजनना चदनना विलेपनवालाने पर्वतनी भूमिये अथवा बीजा कोइपण वृक्षे रति थती नथी, तेम मोक्षार्थीने विषय उपर प्रीति थती नथी, तेमज मनुष्य तथा स्वर्गप्रमुख समग्र गतिने विषे पण प्रीति थती नथी ॥ २१ ॥

इति शुद्धमति स्थिरीकृताऽपरवैराग्यरसस्य योगिनः॥
स्वगुणेषु वितृष्णतावह परवैराग्यमपि प्रवर्त्तते ॥२२॥

अर्थः—एम विचारी शुद्धबुद्धि स्थिर करीने जेने बीजा वैराग्यनो गुण प्रगट्यो छे तेवा योगीने आत्मगुणने वधारे एवी तृष्णाना आगमरूप परम वैराग्य प्रगट थाय ॥ २२ ॥

विपुलर्द्धिपुलाकचारणप्रबलाशीविषमुख्यलब्धय ॥
न मदाय विरक्तचेतसामनुषगोपनता. पलालवत् ॥ २३

अर्थ.—विपुललब्धि, पुलाकलब्धि, चारणलब्धि, महाटीआशीविषलब्धि, प्रमुख अनेक लब्धिओ जो पण उपजे, तोपण ते वैरागी मुनिने अहकार भणी थाय नहीं, मात्र एक मुक्तिसुख विना बीजा सुखने पलाल पुजरूप ते माने छे ॥२३॥

कलितातिशयोऽपि कोऽपि नो
विबुधाना मदकृद्गुणव्रज ॥
अधिक न विदन्त्यमी यतो
निजभावे समुदचाति स्वत. ॥ २४ ॥

अर्थ'—पडित ते कोइ मोटा अतिशयादि गुणना समूहे सहित होय, तोपण मद करे नहीं, तेथी काइ अधिकता पण न गणे, मात्र पोताना शुद्ध स्वभावमाज आनद पामे ॥ २४ ॥

हृदये न शिवेऽपि लुब्धता सदनुष्ठानमसंगमगति ।
पुरुषस्य दशेयमिष्यते सहजानंदतरंगसंगता ॥ २५ ॥

अर्थः—पोताना हृदयने विषे मुक्तिसुख उपर पण लुब्धता नथी, एक सद्अनुष्ठानरूप सहजानंदना कल्लोलने मलती असंगानुष्ठानरूप पुरुषनी जे दशा तेने वांछे छे, पामे छे ॥२५॥

इति यस्य महामतेर्भवेदिह वैराग्यविलासभृन्मनः ॥
उपयाति वरीतुमुच्चकैस्तमुदारप्रकृतिं यशःश्रियः ॥२६॥

अर्थः—वैराग्यविलासी पुरुषने एवी बुद्धि उपजे छे ने तेवा उदार प्रकृतिवालाने यशरूप जे लक्ष्मी ते हर्ष धरीने वरवाने इच्छे छे ॥ २६ ॥ इतिश्री वैराग्य विषयाधिकारः समाप्त.

इति द्वितीय ग्रन्थ समाप्तः ॥



ममतात्यागाधिकार

निर्ममस्यैव वैराग्य स्थिरत्वमवगाहते ॥
परित्यजेत्ततः प्राज्ञो ममतामत्यनर्थदा ॥ १ ॥

विषयं. कि परित्यक्तंजागर्ति ममता यदि ॥
त्यागात्कंचुकमात्रस्य भुजगो नहि निर्विषः ॥ २ ॥

अर्थः—ममता रहित प्राणीनेन वैराग्य स्थिरपणे रहे छे ते माटे बुद्धिवत प्राणिये अनर्थदायक जे ममता तेने तजवी ॥ १ ॥ जेम सर्प काचली काढवाथी विप रहित थतो नथी, तेम जेने ममता जागे छे ते विषयनो त्याग करे तो पण त्यागी थतो नथी ॥ २ ॥

कष्टेन हि गुणग्राम प्रगुणीकुरुते मुनि ॥
ममताराक्षसी सर्व भक्षयत्येकहेलया ॥ ३ ॥

जतुकात पशूकृत्य द्रागविवेकौषधीवलात् ॥
उपायैर्बहुभि पत्नी ममता क्रीडयत्यहो ॥ ४ ॥

अर्थ—जे गुणसमूहने मुनिराज घणा कष्ट करी प्रगट करे छे, तने ममतारूप राक्षसी एक कोलीये खाइ जाय छे ॥ ३ ॥ केवु आश्चर्य छे क स्त्रियाराज्यनी पेरे ममतारूप स्त्री ते जीवरूप भर्त्तारने पशु जे मर्कट ते रूप करीने शीघ्रपणे अज्ञानरूप जडी-बुटीना बलथकी घणे प्रकारे नचावीने रमाडे छे ॥ ४ ॥

एक परभवे याति जायते चैक एव हि ॥
ममतोद्रेकत. भव सत्रय कलयत्यथ ॥ ५ ॥

व्याप्नोति महतीं भूमिं वटबीजाद्यथा वटः ॥
तथैकममताबीजात्प्रपंचस्यापि कल्पना ॥६॥

अर्थ—एकलो चेतन परभवे जाय छे अने एकलोज आ भवे आवे छे, पण ममताने वश थइने रत्नादेवीनी पेरे मिथ्या सगपण न्यात जात वगेरेनी कल्पना करे छे ॥ ५ ॥ जेम एक वडना बीजथकी घणी धरतीये वड व्यापीने विस्तार पामे छे, तेम एक ममताना बीज थकी घणा प्रपंचनी कल्पना उठे छे ॥ ६ ॥

माता पिता मे भ्राता मे भगिनी वल्लभा च मे ॥
पुत्राः सुता मे मित्राणि ज्ञातयः संस्तुताश्च मे ॥७॥
इत्येव ममताव्याधिं वर्द्धमानं प्रतिक्षणं ॥
जनः शक्नोति नोच्छेत्तुं विना ज्ञानमहौषधं ॥ ८ ॥

अर्थ—माता, पिता, भाई, बेन, स्त्री ए सर्वे माहरा छे, पुत्र, पुत्री, मित्र ए पण माहरा छे, न्याति परिचित ए माहरा छे ॥ ७ ॥ ए प्रकारे ममतारूप रोग दिवसे दिवसे वधतो जाय छे, तेने मटाडवाने कोइ पण ज्ञानरूप औषध विना समर्थ थातो नथी ॥ ८ ॥

ममत्वेनैव निःशंकमारंभादौ प्रवर्त्तते ॥
कालाकालसमुत्थायी धनलोभेन धावति ॥ ९ ॥
स्वयं येषां च पोषाय खिद्यते ममतावशः ॥
इहामुत्र च ते न स्युस्त्राणाय शरणाय वा ॥१०॥

अर्थ—जेम वेला कवेला उठीने विप्र ने मामा मोनु लेवाने गयो, तेनी पेरे एक ममताये करीने निःशंकपणे आरंभमा

प्रवर्ते छे, ममणशेठ परे धनने लोभे करी दाडे छे ॥ ९ ॥ परभवमा इहांतु कुटुंब शरण आधार नथी, तो पण कुटुंबने पोषवानी ममतामा खेद पामे छे ॥ १० ॥

ममत्वेन बहून लोकान पुष्णात्येकोऽर्जितैर्धनैः ॥
मोढा नरकदुःखाना तीक्ष्णाणामेक एव तु ॥ ११ ॥
ममतान्धो हि यन्नास्ति तत्पश्यति न पश्यति ॥
जात्यंधस्तु यदस्त्येतद्भेद इत्यनयोर्महान ॥ १२ ॥

अर्थ—पोते एकलो धन मेलवीने ममत्वे करीने घणा लोकने पुष्टि करे छे, पण परभवमा आकरा नारकीना दुःख आवशे तेवारे एकलोज भोगवशे ॥ ११ ॥ जीव आंधलो नथी, पण ममताये करी नास्तिक पदार्थने ग्रहण करी माने छे, तेहने मिथ्यादृष्टि अंध कहीये, जेमके तेनी चर्मचक्षु छे, तो पण ते चक्षुए करी आत्मिक अर्थने नथी देखतो, माटे एने देखतो पण आंधलोज जाणवो, अने जे जातिअंध छे पण ज्ञानीने सयोगे आत्मार्थने जुए छे, माटे ए बे प्रकारना अंधमा घणो अंतर छे ॥ १२ ॥

प्राणाननित्यताध्यानात् प्रेमभूम्ना ततोऽधिका ॥
प्राणापहा प्रिया मत्वा मोदते ममतावशः ॥ १३ ॥
कुंदान्यस्थीनि दशनान मुखं श्लेष्मगृहं विधुम् ॥
मांसग्रंथी कुचौ कुंभो हेम्नो वेत्ति ममत्ववान ॥१४॥

अर्थ—राग दिशाये करीने प्राणने अनित्य माने पण प्राणनी लेनारी जे स्त्री तेने ममताने वश थइ वल्लभ जाणीने हर्ष पामे छे ॥ १३ ॥ ते स्त्रीना दांत यद्यपि हाडकाना छे, तो पण

तेने कुदफुलनी कलिना जेवा जाणे, अने श्लेष्म जे लाळ तेणे करी भरेलु मुख होय तेने चद्रतुल्य वखाणे छे, अने स्तन मासना गठा छे तेने सोनाना कलश समान लेखे छे, ए वातो सर्व ममत्वने लीधे थाय छे ॥ १४ ॥

मनस्यन्यद्वचस्यन्यत् क्रियायामन्यदेव च ॥
यस्यास्तामपि लोलाक्षीं साध्वीं वेत्ति ममत्ववान् ॥१५॥
या रोपयत्यकार्येऽपि रागिण प्राणसशये ॥
दुर्वृत्ता स्त्री ममत्वाधस्ता मुग्धामेव मन्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—वली ते स्त्री केवी छे ? जेना मनमा कोइक होय अने वचनमा वली बीजो कोइक होय, अने भोग तो वली कोइ त्रीजानी साथेज करे एवी छे, तेने वैरागी पुरुष कहे छे जे ए स्त्रीथकी सर्वे सर्यु. एटले स्त्रीने सर्वथा जुदी गणे छे, पण जे प्राणी ममतावत छे, ते तो एवी चचल नेत्रवाली स्त्रीने सती माने छे ॥ ५ ॥ स्त्री पोताना रागी धणीने मरण थाय एवा काम मलावे, अने ते पण ममत्वे आधलो पुरुष ते कार्य कुटाट-पीटाइने करे. वली स्त्री व्यभिचारिणी होय तो पण तेने भोली करी माने, ते उपर एक दृष्टात छे " लाली कहती बापडी अवला खेलमखेल, ज्याथी लाव्यो लाकडी त्यानी त्या जइ मेल " ॥ १६ ॥

चर्माच्छादितमासास्थिविण्मूत्रपिठरीष्वपि ॥
वनितासु प्रियत्व यत्तन्ममत्व विजृंभित ॥ १७ ॥
लालयन् बालक तातेत्येव ब्रूते ममत्ववान् ॥
वेत्ति च श्लेष्मणा पूर्णामगुलीममृताचिता ॥

अर्थ—ममत्वनी चेष्टा ते धूललीला सरखी छे, तेने वश थइ रहो गयो जे पुरुष ते हाड, मांस, विष्टा, मूत्र तथा चर्मथी मढली हाडली जेवी स्त्री उपर प्रेम कर े, ममत्व धरे छे ॥ १७ ॥ वली ममते करीने पोताना पुत्रने रमाडे ते वखते तने बाप बाप करी कहे, अने ते बालकना हाथनी आंगलीयो श्लेष्मथी भरी होय तने अमृत समान जाणे ॥ १८ ॥

पकार्द्रमपि नि शङ्का सुतमङ्कात्र मुञ्चति ॥
तदमेध्येऽपि मेध्यत्व जानात्यवा ममत्वत ॥ १९ ॥
मातापित्रादिसम्बधोऽनियतोऽपि ममत्वत' ॥
दृढभूमिभ्रमवता नैयत्येनावभासते ॥ २० ॥

अर्थ—मोहथकी बालकनी माता पोताना बालकन कादवे भर्यो होय, तो पण नि शङ्कपण खोलामाथी मूकती नथी वली विष्टाये अशुचि होय, तो पण त बालकने तनी माता मोहना वशथकी पवित्र गण छे ॥ १९ ॥ जेम धरती शाश्वत दृढ छे, पण धतुराना फल भक्षण करनार प्राणीने फर आवे छे, त्यार तने धरती फरती जणाय छे तेम मातापितादिकनो सबध ममारमा अनादिना शाश्वत छे, पण मोहवडे मुझाणो प्राणी एम कह छ जे, माता मरी गइ, हवे कम थशे ? शी रीत चालशे ? ॥ २० ॥

भिन्ना. प्रत्येकमात्मानो विभिन्ना पुद्गला अपि ॥
शून्यससर्ग इत्येव य पश्यति स पश्यति ।. २१ ॥
अहतामसते स्वत्वस्वीयत्वभ्रमहेतुके ॥
भेदज्ञानात्पलायेते रज्जुज्ञानादिवाहिभि. ॥ २२ ॥

अर्थ—तेम प्रत्येक जीव पण जुदा जुदा छे, अने ते कइ गतिथी आव्या अने कइ गतिये जशे ? तेम पुद्गल पण जुदा छे, तथा शरीरनो मग पण शून्य छे, ए रीते जे देखे छे, तेने देखतो जाणवो ॥ २१ ॥ जेम दोरडानु ज्ञान थये सर्पनी भीति नाश पामे छे, तेम हु अने स्त्री आदिक माहरी छे एवो ममत्व थाय छे, ते भ्रमहेतु छे. ते भ्रम ज्ञाननजरे जोवाथी नाश पामे ॥ २२ ॥

किमेतदिति जिज्ञासा तत्त्वाभिज्ञानसमुखी ॥
व्यासगमेव नोत्थातु दत्ते क ममतास्थितिः ॥२३॥
प्रियार्थिनः प्रियाप्राप्तिं विना क्वापि यथा रतिः ॥
न तथा तत्त्वजिज्ञासोस्तत्त्वप्राप्तिं विना क्वचित् ॥२४॥

अर्थ—ए ममारनो मवध शु छे ? एम आत्मतत्त्वने सन्मुख ओलखवानी इच्छा थइ एटले ममता तरत नाश पामे. आत्मज्ञानी आगल ममता किहा रहे ? ॥ २३ ॥ जेम कामी पुरुष स्त्रीनो अर्थी थयो, ते स्त्री पाम्या विना कोइ पण ठेकाणे रति न पामे, तेम तत्त्वनो जाण पुरुष पण तत्त्व पाम्या विना क्याये रति न पामे ॥ २४ ॥

अत एव हि जिज्ञासा विष्कम्भति ममत्वधीः ॥
विचित्राभिनयाक्रातः सभ्रांत इव लक्ष्यते ॥२५॥
धृतो योगो न ममता हता न समताऽऽदृता ॥
न च जिज्ञासित तत्त्व गत जन्म निरर्थकम् ॥२६॥
जिज्ञासा च विवेकश्च ममतानाशकावुभौ ॥
अतस्ताभ्या निगृह्णीयादेनामध्यात्मवैरिणीं ॥२७॥

अर्थ—ए कारण माटे तत्त्व जाणवानी इच्छाए करी ममतानी बुद्धि जेणे दबावी छे ते प्राणी विचित्र प्रकारनी नयगम, भग, रचनाये व्याप्यो थको ससारना सर्व पदार्थने सभ्रात जाणे, एटले इद्रजालवत् जाणे ॥ २५ ॥ जेणे जोग पण धर्यो नहीं, अने ममता पण हणी नही, तथा ममता पण आदरी नही, वली शास्त्र जाणवानी इच्छा पण न करी, तेनो नरजन्म निष्फल गयो, एम जाणवु ॥२६॥ एक जाणवानी इच्छा अने बीजो विवेक ए बे ममताने नाश करनारा छे ते माटे ए बेहुथकी ममतानो निग्रह करवो कारण के ममता ते अध्यात्मनी दुश्मन छे ॥ २७ ॥

इति ममता त्यागाधिकार अष्टम समाप्त ॥



समताधिकारः

त्यक्तायां ममतायां च समता प्रथते स्वतः ॥
स्फटिके गलितोपाधौ यथा निर्मलतागुणः ॥ १ ॥

प्रियाप्रियत्वयोर्यार्थैर्व्यवहारस्य कल्पना ॥
निश्चयात्तद् व्युदासेन स्तैमित्य समतोच्यते ॥२॥

अर्थ—हवे समता - आत्मानो अधिकार कहे छे जेम स्फटिकने विषे उपाधिपणु टले, तेवारे निर्मलतापणु वधे छे, तेम जेवारे ममतानो त्याग थाय तेवारे पोतानी मेलेज समता विस्तरे ॥ १ ॥ ससारने विषे पोताने अर्थे कोइ काम पडे तेवारे एम जाणे जे आ माहरो वहालो छे अने आ दुश्मन छे, पण ए सर्व व्यवहार कल्पना छे, निश्चयथकी तो ते व्यवहारनाशे करी मध्यस्थपणुं पामे, तेवारेज समतावत कहेवाय ॥ २ ॥

तेष्वेव द्विषतः पुसस्तेष्वेवार्थेषु रज्यतः ॥
निश्चयात्किंचिदिष्टं वाऽनिष्टं वा नैव विद्यते ॥३॥

एकस्य विषयो यः स्यात्स्वाभिप्रायेण पुष्टित ॥
अन्यस्य द्वेष्यतामेति स एव मतिभेदतः ॥ ४ ॥

अर्थ—व्यवहार कल्पनावालो तो जेने विषे द्वेष लावे तेनेज विषे पोताना अर्थ साधने करी राजी थाय, पण जो निश्चयथकी विचारे तो एमा काइ इष्ट नथी, तेम अनिष्ट पण नथी ॥३॥ एक विषय जे एक कार्य छे ते एक जणने पोतानी रुचिये पुष्टकारी छे अने बीजाने तथीज द्वेष उपजे छे ए मति—कल्पनाना भेद छे एम जाणवु ॥ ४ ॥

अर्थ—ए कारण माटे तत्त्व जाणवानी इच्छाए करी ममतानी बुद्धि जेणे दबावी छे ते प्राणी विविध प्रकारनी नय-गम, भंग, रचनाथ व्याप्यो थको संसारना सर्व पदार्थने सभ्रांत जाणे, एटले इंद्रजालवत् जाणे ॥ २५ ॥ जेणे जोग पण धर्यो नहीं, अने ममता पण हणी नही, तथा समता पण आदरी नही, वली शास्त्र जाणवानी इच्छा पण न करी, तेनो नरजन्म निष्फल गयो, एम जाणवु ॥२६॥ एक जाणवानी इच्छा अने बीजो विवेक ए बे ममताने नाश करनारा छे ते माटे ए बेहुथकी ममतानो निग्रह करवो कारण के ममता ए अध्यात्मनी दुश्मन छे ॥ २७ ॥

इति ममता त्यागाधिकार अष्टम समाप्त ॥



समताधिकारः

त्यक्तायां ममतायां च समता प्रथते स्वतः ॥
स्फटिके गलितोपाधौ यथा निर्मलतागुणः ॥ १ ॥

प्रियाप्रियत्वयोर्यार्थैर्व्यवहारस्य कल्पना ॥
निश्चयात्तद् व्युदासेन स्तैमित्य समतोच्यते ॥२॥

अर्थ—हवे समता आत्मानो अधिकार कहे छे जेम स्फटिकने विषे उपाधिपणु टले, तेवारे निर्मलतापणु वधे छे, तेम जेवारे ममतानो त्याग थाय तेवारे पोतानी मेलेज समता विस्तरे ॥ १ ॥ ससारने विषे पोताने अर्थे कोइ काम पडे तेवारे एम जाणे जे आ माहरो वहालो छे अने आ दुश्मन छे, पण ए सर्वे व्यवहार कल्पना छे, निश्चयथकी तो ते व्यवहारनाशे करी मध्यस्थपणु पामे, तेवारेज समतावत कहेवाय ॥ २ ॥

तेष्वेव द्विषतः पुसस्तेष्वेवार्थेषु रज्यतः ॥
निश्चयात्किचिदिष्ट वाऽनिष्ट वा नैव विद्यते ॥३॥

एकस्य विषयो यः स्यात्स्वाभिप्रायेण पुष्टितः ॥
अन्यस्य द्वेष्यतामेति स एव मतिभेदतः ॥ ४ ॥

अर्थ—व्यवहार कल्पनावालो तो जेने विषे द्वेष लावे तेनेज विषे पोताना अर्थ साधने करी राजी थाय, पण जो निश्चयथकी विचारे तो एमा काइ इष्ट नथी, तेम अनिष्ट पण नथी ॥३॥ एक विषय जे एक कार्य छे ते एक जणने पोतानी रुचिये पुष्टकारी छे अने बीजाने तथीज द्वेष उपजे छे ए मति-कल्पनाना भेद छे एम जाणवु ॥ ४ ॥

विकल्पकल्पित तस्माद्द्वयमेतन्न तात्विक ॥
विकल्पोपरमे तस्य द्वित्वादिवदुपक्षयः ॥ ५ ॥
स्वप्रयोजनससिद्धि स्वायत्ता भासते यदा ॥
बहिरर्थेषु संकल्पसमुत्थानं तदा हत ॥ ६ ॥

अर्थ—इष्ट अनिष्ट ए विकल्पनी कल्पनाथकी छे, ए वेनेन रागद्वेष जाणवा पण एमा काइ तत्त्व नथी जो मनथी विकल्प जाय तो रागद्वेष ए बेउ दूर थाय ॥ ५ ॥ पोताना प्रयोजननी सिद्धि ज्यारे पोताने स्वाधीन थाय, त्यारे बाहरना अर्थसकल्पनो उठाव नाश पामे ॥ ६ ॥

लब्धे स्वभावे कठस्यस्वर्णन्यायादभ्रमक्षये ॥
रागद्वेषानुपस्थाने समता स्यादनाहता ॥ ७ ॥
जगज्जीवेषु नो भाति द्वैविध्य कर्मनिर्मित ॥
यदा शुद्धनयस्थित्या तदा साम्यमनाहत ॥ ८ ॥

अर्थ—जेम कठ उपर रहेलु सुवर्ण साक्षात् देखाय छे तेम स्वाभाविक गुण पाम थके विभाविक भ्रमणा दूर जाय, त्यारे रागद्वेष ऊठी दूर थाय अने समता विशेष वधे ॥ ७ ॥ जगतना जीवने विषे कर्मनु विचित्रपणु छे, माटे ते विभावपणु मारु तारु कहवानी रीते ज्यारे न भासे त्यारे शुद्धनयनमा रह्यो थको प्रबल समताने पामे ॥ ८ ॥

स्वगुणेभ्योऽपि कौटस्थ्या देकत्वाध्यवसायत ॥
आत्माराम मनो यस्य तस्य साम्यमनुत्तर ॥ ९ ॥
ममतापरिपाकेस्याद्विषय ग्रहशून्यता ॥
यया विशदयोगाना वासीचदनतुल्यता ॥ १० ॥

अर्थ—पोताना गुणथकी पोतानो आत्मा साक्षी करीने एक शुद्ध अध्यवसायथकी आत्माने विषे जेनु मन रमे छे, तेनी समता अनुत्तर कहिये ॥ ९ ॥ एम जेने पाकी समता थइ तेनु विषयरूप घर सूनु थयु, एम जे मुनिने निर्मल समता योग प्रगट्यो, ते मुनिने कुठारे करी कोइ छेदे अथवा चदने करी कोइ पूजे ते बेहु तुल्य छे ॥ १० ॥

किं स्तुमः समता साधौ या स्वार्थप्रगुणीकृता ॥
वैराणि नित्यवैराणामपि हन्त्युपतस्थुपाम् ॥ ११ ॥
किं दानेन तपोभिर्वा यमैश्च नियमैश्च किं ॥
एकैव समता सेव्या तरीः ससारवारिधौ ॥ १२ ॥

अर्थ—एवा साधुनी समताना शु वखाण करिये ? जेणे पोताना आत्मानी सिद्धि करवाने समता आदरी, एहवा मुनि ते समतारूप घरमा रहेता थका आ भवना तथा आगला केडक भव ते सर्व भवना वैरभावने टाली नाखे छे, जेम नित्य पासे वसता थका कुतरा अने माजारी के० बिलाडी तेमना वैर पण शमी जाय तेहनी परे जाणवु ॥११॥ कपटी वेश धारण करवाथी शुं थाय ? तथा घणी तपस्याय पण शु थाय ? वली मौन धारी अतीतनी परे इद्रियदमन कीधे शु थाय ? अने व्रत धारणकरे पण शु थाय ? मात्र एक समता जे ससाररूप समुद्र तरवामा नौका जेवी छे, तेनुं-ज सेवन करवु तेहि ज श्रेष्ठ छे ॥ १२ ॥

दूरे स्वर्गसुखं मुक्तिपदवी सा दवीयसी ॥
मनःसनिहित दृष्ट स्पष्ट तु समतासुखं ॥ १३ ॥
दृशोः स्मरविष शुष्येत् क्रोधतापः क्षयं व्रजेत् ॥
औद्धत्यमलनाशः स्यात्समतामृतमज्जनात् ॥ १४ ॥

अर्थ—देवलोकना सुख तो दूर छे वली मोक्ष पण्वी ते तो मोटी छे, अने मनस्थितिने हाथ छे, तेमारे मननी पासे प्रगटपणे देखीये एवी समतानु सुख ते शु थोडु छे ? ॥ १३ ॥ समतारूप अमृतकुंडमा स्नान करवाना प्रभावथी आपथकी कद-र्परूप दर्पनु विष मोपाइ जाय छे, क्रोधरूप ताप नाश पामे छे, उद्धताइ रूपी मेल ते पण दूर थाय छे ॥ १४ ॥

जरामरणदावाग्निज्वलिते भवकानने ॥
सुखाय समतैकैव पीयुषघनवृष्टिवत् ॥ १५ ॥
आश्रित्य समतामेका निर्वृता भरतादय. ॥
न हि कष्ट मनुष्ठानमभूत्तेषा तु किंचन ॥ १६ ॥

अर्थ—जन्म, जरा, मरणरूप दावानले करी बलतु एवु संसाररूप वन तेमा समतानु जे सुख छे ते अमृतना वरसाद सरखु जाणवु ॥ १५ ॥ चित्रशाली मध्ये एकज समताने अवलंबता भरतराजा आदि आठ पाट केवल पामीने सिद्ध थया पण तेमने कष्टक्रिया काइ पण करवी पडी नही, एहवी ए समता छे ॥ १६ ॥

अर्गला नरकद्वारे मोक्षमार्गस्य दीपिका ॥
समता गुणरत्नाना संग्रहे रोहणावनि ॥ १७ ।
मोहाच्छादितनेत्राणामात्मरूपमपश्यता॥
दिव्याजनशलाकेव समता दोषनाशकृत् ॥ १८ ॥

अर्थ—वली समता ते नरकने वारणे भोगल जेवी छे, अने मोक्षमार्गनी दीवि छे वली गुणरूप रत्ननो संग्रह करवाने रोहणाचल पर्वतनी भूमिका सरिखी छे ॥ १७ ॥ जेना नेत्र

मोहवडे ढकाया छे अने जे पोताना स्वरूपने जोइ शकता नथी, तेने दिव्य अंजन आंजवाने समता ते शलाकारूप छे, अने अज्ञानना पडलने छेदनारी छे ॥ १८ ॥

क्षण चेतः समाकृष्य समता यदि सेव्यते ॥
स्यात्तदा सुखमप्यस्य यद्वक्तु नैव पार्यते ॥ १९ ॥

कुमारी न यथा वेत्ति सुखं दयितभोगजं ॥
न जानाति तथा लोको योगिना समतासुख ॥ २० ॥

अर्थ—जे प्राणी एक क्षणमात्र मनने खेंचीने समताने सेवे, ते प्राणीने एहवुं सुख प्रगटे, जेहनो मुखे कहेता थका पार आवे नही ॥ १९ ॥ जेम कुमारिका भरतारना सुखने जाणती नथी. तेम लोको पण मुनिराजनी समताना सुखने जाणता नथी ॥ २० ॥

नतिस्तुत्यादिकाशंसाशरस्तीव्रः स्वमर्मभित् ॥
समतावर्मगुप्ताना नार्तिकृत्सोऽपि जायते ॥ २१ ॥

प्रचितान्यपि कर्म्माणि जन्मना कोटिकोटिभिः ॥
तमासीव प्रभा भानोः क्षिणोति समता क्षणात् ॥२२॥

अर्थ—जेणे समतानुं बख्तर पहर्युं छे तेने नमस्कार, स्तुति, पूजा, लाभ, परद्रव्यनी इच्छादिरूप जे पोतानाज मर्मने लागनारा एहवा जे तीक्ष्ण बाणो ते पीडा करी शकता नथी ॥ २१ ॥ जेम सूर्य किरणना प्रकाशथी अंधकार नाश पामे छे तेम कोटि कोटि भवना प्राणीना निबिडमचित जे पापकर्म छे ते समतावडे एक क्षणमा नाश पामे छे. ॥ २२ ॥

अन्यलिंगादिसिद्धानामाधारः समतैव हि ॥
रत्नत्रयफलप्राप्तेर्यया स्याद्भावजैनता ॥ २३ ॥
ज्ञानसाफल्यमेषैव नयस्थानावतारिणः ॥
चंदनं वह्निनेव स्यात् कुग्रहेण तु भस्म तत् ॥ २४ ॥

अर्थ—जे अन्यलिंगी सिद्ध थया ते पण द्रव्यथी मोक्ष फल साधता थका रत्नत्रयना फलनी प्राप्तिवडे भावथी जैनपणु पाम्या माटे ते अन्यलिंगीओने पण समता ते एक आधारभूत हती ॥ २३ ॥ जो नयस्थानके उतारी जोईयें तो, ए समतान ज्ञाननु फल छे, ने जेम ज्ञानवडे भवताप शमे छे तेम समतारूप चंदने करी भवताप शमी जाय छे, पण कुग्रह क० कदाग्रह अज्ञानरूप अग्निवडे तो समतारूप चंदन बली भस्म थाय छे ॥२४॥

चारित्रपुरुषप्राणाः समताख्या गता यदि ॥
जनानुधावनावेशस्तदा तन्मरणोत्सवः ॥ २५ ॥
संत्यज्य समतामेकां स्यात्यत्कष्टमनुष्ठितं ॥
तदीप्सितकरं नैव बीजमुप्तमिवोषरे ॥ २६ ॥

अर्थ—आ संसाररूप गामने विषे सर्व लोक क्रयविक्रय करता दोडादोड करे छे, ते शु छे ? ते कहे छे, के जेनार चारित्ररूपी पुरुष मरण पाम्यो, तेनारें समतारूपी प्राण पण जता रह्या पछी तेना मृत कार्यनो उत्सव, पाथरणा, स्नानसूतक वगेरे करवाने जाणे ए लोको दोडादोड करे छे एम समजवु ॥ २५ ॥ जेम उखर क्षेत्रमा बीज वाव्यु ते कष्टे करीने पण फले नही, तेम एक समताने छोडी जे प्राणी कष्ट क्रिया करे छे तेने रूडु फल आगल मलतु नथी ॥ २६ ॥

उपायः समतैवैका मुक्तेरन्यः क्रियाभरः ॥
तत्तत्पुरुषभेदेन तस्या एव प्रसिद्धये ॥ २७ ॥

दिङ्मात्रदर्शने शास्त्रव्यापारः स्यान्न दूरगः ॥
अस्याः स्वानुभवः पारं सामर्थ्याख्योऽवगाहते ॥२८॥

अर्थ—मुक्तिनो उपाय तो एक समता छे. बाकी क्रिया कष्ट सर्व आडंबर छे, ते पुरुषने भेदेकरी एटले तप, जप सर्व समतानी प्रसिद्धि छे पुरुष भेद ते गृहस्थ अने मुनिने शीले छे, एटले क्रिया करवामां गृहस्थ तथा मुनिनो व्यवहार जुदो छे, पण ते बेउनी क्रिया समतायें वखाणनी एवी शास्त्रनी आज्ञा छे ॥ २७ ॥ शास्त्रना उपदेश तो जेम कोइ आगलीनडे मार्ग बतावे, पण पोते काइ साथे आवे नही, तेम दिशिमात्रने बतावे एवा छे, पण जे शास्त्र सांभलीने पोताना अनुभवमां लावी पोताने सामर्थ्ये करी पथ अवगाहे, तेज भवाटवीनो पार पामे ॥ २८ ॥

परस्मात् परमेषा यन्निगूढं तत्त्वमात्मनः ॥
तदध्यात्मप्रसादेन कार्योऽस्यामेव निर्भरः ॥ २९ ॥

अर्थ—परपुद्गलादिक वस्तु ते आत्मानी नथी, अने देहनाथी आत्मा परम पवित्र छे, आत्माने विषे आत्मतत्त्व गुप्त छे, माटे अध्यात्मने प्रसादे करी समताने विषे हर्ष उल्लास करवो ॥ २९ ॥

॥ इति समताधिकारः नवमः समाप्तः ॥



सदनुष्ठानाधिकारः

परिशुद्धमनुष्ठान जायते समतान्वयात् ॥
कतकक्षोदसक्रान्ते, कलुष सलिल यथा ॥ १ ॥
विष गरलाऽन्यनुष्ठान तद्धेतुरमृत पर ॥
गुरुसेवाद्यनुष्ठानमिति पचविध जगु. ॥ २ ॥

अर्थ·—जेम कतकफलना चूर्णने योगे डोहळु पाणी निर्मल थाय तेम समताना योगथी शुद्ध अनुष्ठान प्रगट थाय छे ॥ १ ॥ विषानुष्ठान, गरलानुष्ठान, अन्योन्यानुष्ठान, तद्धेतुअनुष्ठान ने अमृतानुष्ठान ए पाच अनुष्ठान गुरुसेवादिक करणीमा कह्या छे ॥२॥

आहारोपधिपूजर्द्धिप्राभृत्याशसया कृत ॥
शीघ्र सचित्तहन्तृत्वाद्विषानुष्ठानमुच्यते ॥ ३ ॥
स्थावर जगम चापि तत्क्षण भक्षित विष ॥
यथा हन्ति तथेद सचित्तमैहिकभोगत· ॥ ४ ॥

अर्थ·—मिष्टान्न भोजननी लालचे, वस्त्रनी लालचे, पूजानी लालचे, दोलतनी इच्छाये, जे तप जप कष्टक्रिया करे ते क्रिया पोताना शुभ चित्तनी हणनारी छे एनु नाम विषअनुष्ठान जाणवु ॥ ३ ॥ स्थावर विष ते सोमल जाणवुं अने जंगम विष सर्पादिकनु जाणवु, ए बेउमाथी एक विष खाधाथी तरत मरे छे तेम भोगाभिलाषे क्रिया करवी ते शुभ चित्तने हणे छे ॥ ४ ॥

दिव्यभोगाभिलाषेण कालातरपरिक्षयात् ॥
स्वादृष्टफलसपूर्त्तेर्गरानुष्ठानमुच्यते ॥ ५ ॥

यथा कुद्रव्यसंयोगजनित गरमज्ञितम् ॥
विप कालांतरे हति तयेदमपि तत्त्वतः ॥ ६ ॥

अर्थः—जे देवेंद्रादिकना सुख परभवे पामवानी इच्छा करीने तपस्या करे ते प्राणी कालांतरे नरकगति पामे, कष्ट करीने अणदीठा फलनी वाछ्छा करे तेने गरलानुष्ठान कहेवु ॥ ५ ॥ जेम नगडी चूर्ण प्रमुख निर्मल द्रव्यने सयोगे प्रगट थतु विप ते गरल-नामा विप कहियें, ते घणा दिवस कष्ट पमाडी मारे छे, तेम ए पण तत्त्वथी नर्क फलनी प्राप्ति करे छे ॥ ६ ॥

निपेधायानयोरेव विचित्रानर्थदायिनोः ॥
सर्वत्रैवानिदानत्व जिनेंद्रैः प्रतिपादित ॥ ७ ॥
प्रणिधानाद्यभावेन कर्म्मानध्यवसायिनः ॥
सम्मूर्च्छिमप्रवृत्ताभमननुष्ठानमुच्यते ॥ ८ ॥

अर्थः—अनेक प्रकारे महा अनर्थ उपजावे एवा ए पूर्वोक्त ने अनुष्ठाननो निपेध करवाने समस्त तीर्थंकरे नियाणु वर्जवानु कह्यु छे ॥ ७ ॥ प्रणिधानादिकने अभावे कर्म जे क्रिया तेमा अध्यवसाय रहित के० शून्यपणे सम्मूर्च्छिमनी परे शून्य मननी प्रवृत्तिये अथवा देखादेखीये जे क्रिया करे ते अन्योन्यानुष्ठान कहिये ॥ ८ ॥

ओघसज्ञात्र सामान्यज्ञानरूपा निवधन ॥
लोकसज्ञा च निर्दोपसूत्रमार्गानपेक्षिणी ॥ ९ ॥
न लोक नापि सूत्र नो गुरुवाचमपेक्षते ॥
अनध्यवसित किंचित्कुरुते चौघसज्ञया ॥ १० ॥

अर्थः—इहा सामान्य प्रकारे ज्ञानरूपनु कारण न गवेपे, ते ओघसज्ञा प्रवाहरूप कहिये, तेथी निर्दोप सूत्रना मार्गनी अपेक्षा

विना लोक देखादेखीये क्रिया करे अथवा उपयोगशून्य थका जे क्रिया करे ते अन्योन्यानुष्ठान छे ॥ ९ ॥ एटले लोकनी रीत विना अने सूत्रनी तथा गुरुना वचननी अपेक्षा विना उपयोग-शून्यपणे जे काई करवु तेनु नाम ओघसना छे ॥ १० ॥

शुद्धस्यान्वेषणे तीर्थोच्छेदः स्यादितिवादिना ॥
लोकाचारादरश्रद्धा लोकसंज्ञेति गीयते ॥ ११ ॥
शिक्षितादिपदोपेतमप्यावश्यकमुच्यते ॥
द्रव्यतो भावनिर्मुक्तमशुद्धस्य तु का कथा ? ॥१२॥

अर्थः—जो अत्यंत शुद्ध मार्ग खोलवा जइए, तो तीर्थनो उच्छेद थाय, माटे लोकना आचार उपर आदर–श्रद्धा करवी, जेम चाले तेम चालवा दीजे, एहवा वचन बोलता जे लौकिक आचारे प्रवर्त्ते तेनुं नाम लोकसंज्ञा छे ॥ ११ ॥ अने शिक्षा-ग्रहण, आसेवन तथा पदसपदादि सहित भावशून्यपणे जे आव श्यक करे ते पण द्रव्य आवश्यक कह्यु छे, तो जे अशुद्धज करे तेनी तो शी वात कहिये ? ॥ १२ ॥

तीर्थोच्छेदभिया हन्ताविशुद्धस्यैव चादरे ॥
सूत्रक्रियाविलोपः स्याद्गतानुगतिकत्वतः ॥ १३ ॥
धर्मोद्यतेन कर्त्तव्यं कृतं बहुभिरेव चेत् ॥
तदा मिथ्यादृशां धर्मो न त्याज्यः स्यात्कदाचन ॥१४॥

अर्थ —तीर्थनो उच्छेद थाय, तेना भयथी अशुद्ध क्रियाने विषे गाडरीया प्रवाहनी पेरे गतानुगतिकपणे आदर करता काइ परमार्थ जाणे नहीं अने ज्ञानक्रियानो नाश करे ॥ १३ ॥ वली धर्मनो अर्थी वदने एम कहेशो के जे घणा जन

कर ते आपणे पण करवु, तो मिथ्यात्वधर्मना घणा सेवनार छे, माटे ते पण कोइ काले छंडाशे नहीं एम ठर्युं ॥ १४ ॥

तस्माद्गतानुगत्या यत् क्रियते सूत्रवर्जितम् ॥
ओघतो लोकतो वा तदननुष्ठानमेव हि ॥ १५ ॥
अकामनिर्जरागत्व कायक्लेशादिहोदितम् ॥
सकामनिर्जरा तु स्यात् सोपयोगप्रवृत्तितः ॥ १६ ॥

अर्थः—माटे सूत्रनी शैली रहितपणे गतानुगतिकपणे ओघसत्तावे अथवा लोकसंज्ञाये जे करवु तेने अन्योन्यानुष्ठान कहेवु ॥ १५ ॥ जे अज्ञानपणे कायक्लेश करे तेने अकामनिर्जरा कहेवी, अने उपयोग सहित ज्ञानक्रिया करवी तेनु नाम सकामनिर्जरा छे ॥ १६ ॥

सदनुष्ठानरागेण तद्धेतुर्मार्गगामिना ॥
एतच्च चरमावर्त्ते ऽनोपयोगादेर्विना भवेत् ॥ १७ ॥
धर्मयौवनकालोऽय भवबालदशापरा ॥
अत्र स्यात्सत्क्रियारागोऽन्यत्र चासत्क्रियादरः ॥ १८ ॥

अर्थः—मार्गानुसारीपुरुष शुद्ध क्रियानुष्ठानने रागे करी जे करे ते तद्धेतुअनुष्ठान कहेवाय, ते ज्यारे छेलु पुद्गल परावर्त्त रहे, त्यारे जे क्रिया करे ते अनउपयोगे न करे. माटे ए अनुष्ठान पण तेवारेंज होय ॥ १७ ॥ छेल्ले पुद्गल परावर्त्ते ज्यारे तद्धेतु अनुष्ठान प्रगटे त्यारे ए धर्मनो योवनकाल प्रगट्यो; अने संसारमा बालदशा हती ते मटी गइ एम जाणवुं ए अनुष्ठाने शुद्ध क्रियानो राग उपजे छे, अने पूर्वना त्रण अनुष्ठाने अशुद्ध क्रियानो आदर उपजे छे ॥ १८ ॥

भोगरागाद् यथा यूनो बालक्रीडाऽखिला ह्रिये ॥
धर्म्मयूनस्तथा धर्म्मरागेणासत्क्रियाह्रिये ॥ १९ ॥
चतुर्थं चरमावर्त्ते तस्माद्धर्म्मानुरागतः ॥
अनुष्ठानं विनिर्दिष्टं बीजादिकमसंगतं ॥ २० ॥

अर्थ—जेम युवान् पुरुष भोगनो विलासी थाय छे ने बालक्रीडाथी लजवाय छे, तेम धर्म यौवनकालवंत पुरुष धर्मना रागे करी अशुद्ध क्रियाथी लजवाय छे ॥ १९ ॥ ते माटे ते धर्मना अनुरागथी चरम पुद्गल परावर्त्तेज तद्धेतु नामे चोथुं अनुष्ठान कह्युं छे, पण बीजादिक जे समकित ते तो असंग के० अप्राप्त छे ॥ २० ॥

बीजं चेह जनान् दृष्ट्वा शुद्धानुष्ठानकारिणः ॥
बहुमानप्रशंसाभ्यां चिकीर्षा शुद्धगोचरा ॥ २१ ॥
तस्या एवानुबंधश्चाकलंकः कीर्त्यतेऽङ्कुरः ॥
तद्धेत्वन्वेषणा चित्रा स्कंधकल्पा च वर्णिता ॥२२॥

अर्थ—इहां समकितरूप बीज तो तेवारे थाय के जेवारे शुद्ध क्रिया करता जीवोने देखीने बहुमान प्रशंसा करे, अने आगमविधिरागे पोते पण शाने शुद्ध विधिगोचर होय तेवारे समकित उपजे छे ॥ २१ ॥ ए तद्धेतुअनुष्ठाननो अनुबंध जे शुद्ध परिणमन ते कलंक रहित अंकुर कहिये, अने तद्धेतुअनुष्ठाननी खोल करवी ते नाना प्रकारनो स्कंध कहिये ॥ २२ ॥

प्रवृत्तिस्तेषु चित्रा च पत्रादिसदृशी मता ॥
पुष्पं च गुरुयोगादिहेतुसंपत्तिलक्षणं ॥ २३ ॥
भावधर्म्मस्य संपत्तिर्या च सद्देशनादिना ॥
फलं तदत्र विज्ञेयं नियमान्मोक्षसाधकं ॥ २४ ॥

अर्थ—ते मध्ये प्रवर्त्तवु ते रूप विचित्र प्रकारना पान जाणवा, अने सद्गुरुना योगवडे स्वर्गमा सुखसपदा पामवी ते रूप फल जाणवा ॥ २३ ॥ जेवारे गुरु पासे देशना साभळीने भावधर्मरूप सपदा पामे ते फल कहियें, ते फल मोक्ष—साधनरूप छे एम जाणवु ॥ २४ ॥

सहजो भावधर्मो हि शुद्धश्चदनगधवत् ॥
एतद्गर्भमनुष्ठानममृत सप्रचक्ष्यते ॥ २५ ॥
जैनीमाज्ञा पुरस्कृत्य प्रवृत्त चित्तशुद्धितः ॥
संवेगगर्भमत्यतममृत तद्विदो विदुः ॥ २६ ॥

अर्थ—सहज स्वाभाविक जे भावधर्म छे ते तो चदननी सुगध समान छे. ते सहित जे अनुष्ठान क्रिया करवी तेनु नाम अमृतानुष्ठान छे ॥ २५ ॥ प्रभुनी आज्ञावडे मनशुद्धिये प्रवर्त्ते अने अत्यंतपणे संवेगगुणे सहित होय तेने गणधरादिक अमृतानुष्ठान कहे छे ॥ २६ ॥

शास्त्रार्थालोचन सम्यक् प्रणिधान च कर्म्मणि ॥
कालाद्यगाविपर्यासोऽमृतानुष्ठानलक्षण ॥ २७ ॥
द्वय हि सदनुष्ठान त्रयमत्रासदेव च ॥
तत्रापि चरम श्रेष्ठ मोहोग्रविपनाशनात् ॥ २८ ॥

अर्थ—भली रीते शास्त्रना अर्थ विचारे, क्रिया मध्ये वीर्य उल्लास धरे, पचमकालना दोष न गणे, अथवा जे काले जे उचित क्रिया होय ते क्रिया करे, ए लक्षण अमृतानुष्ठानना जाणवा ॥ २७ ॥ ए पाच अनुष्ठानमा छेल्ला बे अनुष्ठान ए रुडा छे अने प्रथमना त्रण अनुष्ठान ते रुडा नथी, तेमा पण सर्वथा

श्रेष्ठ तो अमृतानुष्ठान जाणवु, केमके मोह के० अज्ञान तेनु आकरु जे विष ते ए अनुष्ठानवडे नाश पामे छे ॥ २८ ॥

आदर करणे प्रीतिरविघ्नसंपदागमः ॥
जिज्ञासातज्ज्ञसेवा च सदनुष्ठानलक्षणं ॥ २९ ॥
भेदैर्भिन्नं भवेदिच्छाप्रवृत्तिस्थिरसिद्धिभिः ॥
चतुर्विधमिदं मोक्षयोजनाद्योगसंज्ञितं ॥ ३० ॥

अर्थ—क्रियाये आदर करता राग धरे, तथा आगमने अति मोटी संपदानु माने, वली जाणवानी इच्छा करे, जाणनो संग करे, ए शुद्ध क्रियाना लक्षण छे ॥ २९ ॥ तेना पण जुदा जुदा भेद छे. १ इच्छा, २ प्रवृत्ति, ३ स्थिरता, ४ सिद्धियोग ए चार योग मोक्षने जोडे (मोक्ष आपे) माटे योग कहिये ॥३०॥

इच्छा तद्वत्कथा प्रीतिर्युक्ता विपरिणामिनी ॥
प्रवृत्तिः पालनं सम्यक् सर्वत्रोपशमान्वितं ॥ ३१ ॥
सत्क्षयोपशमोत्कर्षादतिचारादिचिंतया ॥
रहितं तु स्थिरं सिद्धिः परेषामर्थसाधकं ॥ ३२ ॥

अर्थ—जे गुरुनो उपदेश सांभली गुरु उपर अने कथा उपर परम प्रीति धरे—गुण परिणमे तेने पहेलो इच्छायोग कहिये पछी गुरुना कह्या प्रमाणे समताय सहित व्रत पाले, क्रियाये सहित प्रवर्त्ते, ते बीजो प्रवृत्तियोग कहिये ॥ ३१ ॥ जे रुडा क्षयोपशमना उत्कर्षथी अतिचार न लगाडे अने मनस्थिरपणे प्रवर्त्ते ए त्रीजो स्थिरयोग कह्यो, अने निरतिचार शुद्ध क्रियामा बीजा जीवोने मेलवीने तेनो पण अर्थ सधावे ते चोथो सिद्धि-योग जाणवो ॥ ३२ ॥

भेदा इमे विचित्राः स्युः क्षयोपशमभेदतः ॥
श्रद्धाप्रीत्यादियोगेन भव्याना मार्गगामिनाम् ॥३३

अनुकंपा च निर्वेदः सवेगः प्रशमस्तथा ॥
एतेषामनुभावाः स्युरिच्छादीना यथाक्रमम् ॥३४॥

अर्थः—ए इच्छादिक योगना वली विचित्र भेद छे, ते क्षयोपशम भावना भेदथी छे ते श्रद्धा प्रीति प्रमुख योगे करीने मुक्तिमार्ग पामनार भव्यजीवने होय ॥ ३३ ॥ १ करुणा, २ वैराग्य, ३ सवेग, ४ उपशम ए अनुक्रमे इच्छादिकना चार प्रकार छे ॥ ३४ ॥

कायोत्सर्गादिसूत्राणा श्रद्धामेधादिभावतः ॥
इच्छादियोगसाफल्य देशसर्वव्रतस्पृशाम् ॥ ३५ ॥

गुडखडादिमाधुर्यभेदवत् पुरुषातरे ॥
भेदेऽपीच्छादिभावाना दोषो नार्थान्वयादिह॥३६॥

अर्थ—कायोत्सर्गादिक आवश्यक सूत्रनु श्रद्धापणु जो भावथी थाय तो श्रावक तथा साधुने इच्छादिक योग सफल थाय ॥३५॥ कोइने गोल मीठो लागे छे अने कोइने खाड मीठी लागे छे. ए रीते मीठाशना स्वादमा जेम भिन्नता छे तेम ज पुरुषोनी प्रकृति भिन्न भिन्न, माटे इच्छादिक योगना जे भाव तेना पण भेद छे; तो पण तेमा काइ दूषण नथी केमके जेम शर्करादिकनी मीठाश जुदी जुदी छे तो पण मीठाशनो अर्थ एकज छे, मिठाश गमे तेनी होय, पण तेथी मीठाशनो अर्थ सरे छे, तेमज इच्छादिक योगना भेद छे, तो पण ते थकी अर्थ जे फल ते एकज मले छे, माटे दूषण नथी एम जाणवुं ॥ ३६ ॥

येषा नेच्छादिलेशोऽपि तेषा त्वेतत्समर्पणे ॥
स्फुटो महामृषावाद इत्याचार्याः प्रचक्षते ॥ ३७ ॥
उन्मार्गोत्थापन बाढमसमजसकारणे ॥
भावनीयमिद तत्त्व जानानैर्योगविंशिकाम् ॥३८॥
त्रिधा तत्सदनुष्ठानमादेय शुद्धचेतसा ॥
ज्ञात्वा समयसद्भाव लोकसज्ञा विहाय च ॥ ३९ ॥

अर्थ--पण जेने शुद्ध अनुष्ठानने विषे इच्छादि योगनो लेश पण नथी, तेवा अयोग्य नरने जे इच्छादि योग आपे तेने प्रगट मृषावादनु पाप लागे छे, एवु पूर्वाचार्य कहे छे ॥ ३७ ॥ जे अति असमजस कारण छे, तेने विषे उन्मार्ग स्थापन थाय छे, माटे योगविंशिका ग्रथना जाण पुरुष ए तत्त्व चितवीने सद् अनुष्ठान करवु, एटले जेम तेम करीये तो उन्मार्गनु स्थापन थइ जाय ॥ ३८ ॥ माटे शुद्ध चेतनाये, मन-वचन-कायाये करीने सदनुष्ठान सेववा, सिद्धातना सद्भाव जाणी लोकसज्ञा तजीने शुद्ध क्रिया करवी ॥ ३९ ॥

इति सदनुष्ठानाधिकार दशम ॥



मनशुद्धिअधिकारः

उचितमाचरण शुभमिच्छता
प्रथमतो मनसः खलु शोधन ॥
गदवतामद्यकृते मलशोधने
कमुपयोगमुपैतु रसायन ॥ १ ॥

अर्थ—अध्यात्मनी शुद्धि करवा माटे प्रथमथी उचितपणे शुभ आचरणनी इच्छा करवी ने मननी शुद्धता करवी जेम रोगवत प्राणी मल–शोधन करवाने रेच लीधा विना रसायन खाय तो, तेथी तेने काइ गुण थाय नही, केमके मल जाय तेवार पछी रसायण खाय तो गुण करे, तेम प्रथम मनशुद्धि थइ होय तोन अध्यात्मनी शुद्धि थाय ॥ १ ॥

परजनं प्रसभ किमु रज्यते
द्विपति वा स्वमनो यदि निर्मल ॥
विरहिणामरतेर्जगतो रते-
रपि च का विकृतिर्विमले विधौ ॥ २ ॥

अर्थ—हे चेतन ! जो तारु मन निर्मल छे तो लोक ताहरा उपर राग धरशे अथवा द्वेप करशे ते थकी ताहरे शुं बगाड थवानो छे ? जेम चद्रमा निर्मल छे, पण तेना उदयथी विरही जीवो अथवा चोर लोकोने अरति उपजे छे, अने जगत्‌ना बीजा जीवोने तेथी आनद थाय छे, पण तेथी चंद्रमाने गुण अथवा अवगुण काइज थता नथी ॥ २ ॥

रुचितमाकलयन्ननुपस्थित
स्वमनसैव हि शोचति मानवः ॥

उपनते स्मयमानमुप पुन-
भंवति तत्र परस्य किमुच्यता ॥ ३ ॥

अर्थ—रूडी वस्तु मनमा चितवी मनोरथ कीधो, अने ते मनोरथ निपनो नही, तेवारे ते प्राणी पोताना मनमा शोक धरे छे, अने जेवारे त धारली वस्तु मले छे तेवारे खुशी थाय छे, ए हर्ष-शोकनो कर्ता आत्मा ने एक मनन छे, तो बीनाये महारु मारु-नरसु कर्यु एम शु कहवु ? ॥ ३ ॥

चरणयोगघटान्प्रविलोठयन्
शमरस सकल विकिरन्यध· ॥
चपल एप मन. कपिरुच्चकै
रसवणिग् विदधातु मुनिस्तु कि ॥ ४ ॥

अर्थ—मन माकडा जेवु छे केमके त चारित्रना योग रूप घृतना घडान ऊधा वाले छे, तथा समतारूपी अमृतरसना घडाने ढोली नाखे छे, एवु ए चपल मन ते खरेखरु वादरु छे तेनी आगल मुनिरूप रस वाणिज्यनो करनार प्राणीयो विचारो शु करे ? ४ ॥

सततकुट्टितसयमभूतलो-
त्थितरजोनिकरै प्रथयस्तम ॥
अतिदृढैश्च मनस्तुरगोगुणै-
रपि नियन्त्रित एप न तिष्टति ॥ ५ ॥

अर्थ—कोई मुनिये चारित्रे करी कर्मरूपी धूलने दावी नाखी हती, पण मनरूपी घोडाये नित्य कुदी कुदीने सयमरूप भूमिनु तलियु उखेड्यु, तेथी कलुषतारूप रज ऊडी, तेहना समूह

करी अज्ञानरूप अधकार थयो, एवो अति आकरो ए मनरूप घोडो छे, ते श्रुतरूपी दोरडे नधायो छतो तोफान करे छे, पण समो रहेतो नथी ॥ ५ ॥

जिनवचोघनसारमलिम्लुचः
कुसुमसायकपावकदीपकः ॥
अहह कोपि मनःपवनो बली
शुभमतिद्रुमसततिभगकृत् ॥ ६ ॥

अर्थ—एक कौतुक जुवो के मनरूपी वायु महाबलवान् छे, केमके रुडी बुद्धिरूप वृक्षने भागी नाखे छे तथा जिन वचनरूप नरामनो चोर छे; वली कंदर्परूप अग्निनो दीपावनार छे ॥६॥

चरणगोपुरभगपरः स्फुर-
त्समयबोधतरूनपि पातयन् ॥
भ्रमति यद्रतिमत्तमनोगजः
क कुशल शिवराजपथे तदा ॥ ७ ॥

अर्थ—वली मनरूप हाथी छे, ते चारित्ररूप नगरना दरवाजा भागतो थको प्रसरे छे, सिद्धांतना बोधरूपी वृक्षने पण पाडतो थको भमे छे, एवो मदोन्मत्त मनरुपी हाथी दोडादोड करे छे, तेवारे साधुने मोक्षमार्गे जता कुशलता ते क्याथी होय ? ॥ ७ ॥

व्रततरून् प्रगुणीकुरुते जनो
दहति दुष्टमनोदहनः पुनः ॥
ननु परिश्रम एपविशेपवान् ।
क भविता सुगुणेपवनोदये ॥ ७ ॥

अर्थ—जे साधु छे ते व्रतरूपी वृक्षे फली वाडीने चेतन ज्ञान अमृतरसवडे सींचीने नवपल्लव करे छे, पण दुष्ट मनरूप जे अग्नि ते बली वाडीने बाली नाखे छे, तो रुडा गुणरूप वाडीमा गुणरूप रायराने उदये मुनिनी महेनत ते केम करीने सफल थाय ? ॥ ८ ॥

अनिगृहीतमना विदधत्परा
न वपुषा वचसा च शुभक्रिया ॥
गुणमुपैति विराधनयाऽनया
बत दुरन्तभवभ्रममञ्चति ॥ ९ ॥

अर्थ—एक मननो निग्रह कर्या विना वचने तथा कायाये जेटली शुभ क्रिया करे ते उपयोगशून्यताये-अविधिये करे, अने ते अविधिना करनारो तो आवश्यकसूत्रने विषे छकायनो विराधक कह्यो छे, माटे ते गुण न करे जे शून्य मन क्रिया करनारो ते विराधक छे, माटे शून्य क्रिया करतो विराधकपणे ससारने विषे घणा भव भमशे ॥ ९ ॥

अनिगृहीतमनाः कुविकल्पतो
नरकमृच्छति तन्दुलमत्स्यवत् ॥
इयमभक्षणजा नहि जीर्णता-
ऽनुपनतार्थविकल्पकदर्थना ॥ १० ॥

अर्थ—मन वश कीधा विना जे तप-जप करे, वळी मनमा कुविकल्प घणा थाय तेथी ते तदुलमच्छनी परे नरके पडे, ए कुविकल्प करतो थको जो उपवास करे, तप करे, तेथी तेने मात्र अजीर्ण थाय, केमके अणपाम्या अर्थनो विकल्प करे तेनी कदर्थना अजीर्णनु कारण छे ॥ १० ॥

मनसि लोलतरे विपरीतता
वचननेत्रकरेंगितगोपना ॥
व्रजति धूर्त्ततया ह्यनयाखिल
निविडदंभपरैर्मुषित जगत् ॥ ११ ॥

अर्थ—जो मन चपळ छे तो वचनगुप्ति करे तथा नेत्रने गोपवे, इंगितआकार चेष्टा विना काउस्सग्ग करे, ते सर्व विपरीत जाणवु ते सर्व धूर्त्ततापणाने पामे, अने एवी रीते धूर्त्तपणे कपट क्रियाना करनारा ते मोटा चोर छे जगत्ने लुटनारा छे ॥११॥

मनस एव ततः परिशोधन
नियमतो विदधीत महामतिः ॥
इदमभेषजसंवनन मुनेः
परपुमर्थरतस्य शिवश्रियः ॥ १२ ॥

अर्थ—ते माटे मनने भली रीते निश्चयथकी शोधन करवु तेने पंडितने मनोशुद्धिरूप चूर्ण छे, अने परम पुरुषार्थने विषे राता जे मुनि तेने मुक्ति स्त्रीने वश करवानु ओषध छे ॥१२॥

प्रवचनाब्जविलासरविप्रभा
प्रशमनीरतरगतरगिणी ॥
हृदयशुद्धिरुदीर्णमदज्वर-
प्रसरनाशविधौ परमौषध ॥ १३ ॥

अर्थः—सिद्धांतरूप कमलने विकसित करवाने मनशुद्धि ते सूर्यना प्रकाशरूप छे, उपशमरूप जलकल्लोल वधारवाने मनशुद्धि ते नदीरूप छे, वली प्रसरतो थको एहवो मदरूप जे

ताप तेन टालनान मनशुद्धि वे परम सुन्दर (जडीबुट्टी) औषध छे ॥ १३ ॥

अनुभवामृतकुंडमनुत्तर
व्रतमरालविलासपयोजिनी ॥
मकलकर्मकलंकविनाशिनी
मनस एव हि शुद्धिरुदाहृता ॥ १४ ॥

अर्थ—वली मनशुद्धि अनुभवनो मोटो अमृतकुंड छे; तथा चारित्ररूप हसने रमवाने कमलिनी छे, अने सर्व कर्मकलंक हरवाने अग्नि समान मन शुद्धिने कही छे ॥ १४ ॥

प्रथमतो व्यवहारनयस्थितोऽ-
शुभविकल्पनिवृत्तिपरो भवेत् ॥
शुभविकल्पमयव्रतसेवया
हरति कंटक एव हि कंटक ॥ १५ ॥

अर्थ—प्रथमथी व्यवहारनये रह्यो एहवो जे पुरुष ते अशुभ विकल्पनी निवृत्ति जे नाश करवु तेने विषे तत्पर थईने शुभ विकल्पमय जे व्रत तेनी सेवा करे, तेथी अशुभपणु टली जाय जेम कांटा वडे कांटो नीकळी जाय छे तेनी पेरे ॥ १५ ॥

विषमधीत्य पदानि शनैः शनै-
र्हरति मंत्रपदावधि मान्त्रिक ॥
भवति देशनिवृत्तिरपि स्फुटा
गुणकरी प्रथमं मनसस्तथा ॥ १६ ॥

अर्थ—जेम मंत्रवादी पुरुष मंत्रपद समाप्ति सुधी मंत्रना शब्द धीमे धीमे मनमा भणे, पण विषने टाले; तेम जे

देशथी निवृत्ति करे ते पण प्रगटपणे प्रथम मनने गुणकारी थाय ॥ १६ ॥

स्फुटमसद्विपयव्यवसायतो
लगति यत्र मनोऽधिकसौष्ठवात् ॥
प्रतिकृतिः पदमात्मवदेव वा
तदवलंबनमत्र शुभं मत ॥ १७ ॥

अर्थ—जे देखताज नरळो अने भुंडो एहवो जे विषय तेना व्यापारथी जे वस्तु चित्त घणी चतुराईथी जे वस्तुने विषे लागे ते वस्तु आत्माने साथे जोडीये तेवार तेनु प्रतिबिंब भासे, पण ते आत्मधर्म नही, तोपण अध्यात्म रीते तेनुज अवलंबन रुडु कह्यु छे ॥ १७ ॥

तदनु काचन निश्चयकल्पना
विगलितव्यवहारपदावधिः ॥
न किमपीति विवेचनसमुखी
भवति सर्वनिवृत्तिसमाधये ॥ १८ ॥

अर्थ—पछी काईक निश्चय कल्पना थइ, अने व्यवहार पदनी मर्यादा गलित थई "एगोहं नत्थि मे कोई" एवी वहेंचण चेतना सन्मुख थई तेवार सर्वनिवृत्तिरूप समाधि थाय ॥ १८ ॥

इह हि सर्वबहिर्विपयच्युत
हृदयमात्मनि केवलमागत ॥
चरणदर्शनबोधपरपरा-
परिचितं प्रसरत्यविकल्पकम् ॥ १९ ॥

अर्थ—जेवारे सर्व बाह्य विषयथी हृदय खस्युं तेवारे पोताना आत्माने विषे केवल एकज ज्ञान, दर्शन, चारित्रना बोधनी परंपरा जे आत्मवृत्त छे, तेनो मिलाप ते निर्विकल्पपणे प्रसरे, ओलखाण थाय एम जाणवु ॥ १९ ॥

तदिदमन्यदुपैत्यधुनापि नो
नियतवस्तुविलास्यपि निश्चयात् ॥
क्षणमसंगमुदीतनिसर्गधी—
हतबहिर्ग्रहमंतरुदाहृतम् ॥ २० ॥

अर्थ—निश्चयनयथकी ए आत्मा ते खरी शुद्ध वस्तुनो विलासी छे, ते माटे हमणा अन्य जे रागद्वेषादि भाव तेने न पामे, वली क्षणमात्र पण जे परपुद्गलादिकनो संग न करे, एवी स्वाभाविक बुद्धि थई तेथी बाह्य भाव हण्यो, अने अंतरंग उत्कृष्टभावने पाम्यो ॥ २० ॥

कृतकषायजयः सगभीरिम,
प्रकृतिशांतमुदात्तमुदारधी ॥
स्वमनुगृह्य मनोऽनुभवत्यहो
गलितमोहतमः परमं महः ॥ २१ ॥

अर्थ—एहनो जे गंभीर स्वभाववालो, जेणे कषायनो जय मेलव्यो छे अने जेनी बुद्धि मोटी छे, अने स्वभावे शांत छे, ते जो सम्यक्प्रकारे मननो निग्रह करे तो तेथी मोहांधकारने गालीने परम महातेजस्विपणानो ते प्राणी जरूर अनुभव पामे ॥ २१ ॥

गलितदुष्टविकल्पपरंपरं
धृतविशुद्धि मनो भवतीदृश ॥

धृतिमुपेत्य ततश्च महामतिः
समधिगच्छति शुभ्रयशः श्रिय ॥ २२ ॥

अर्थ—जेणे माठा विकल्पनी श्रेणि टाली छे अने विशुद्धतानु ग्रहण कीधु छे ते मनोशुद्धिने पामे, अने वली संतोषीपणाने पामीने ते पडित पुरुष उज्ज्वल यशरूप लक्ष्मी अथवा यशशोभाने पामे ॥ २२ ॥ इति मनशुद्धिनामाएकादशोधिकारः समाप्त ॥

इतिश्री पडित यशोविजयेन विरचितेऽध्यात्मसारप्रकरणे
तृतीयः प्रबधः ॥



सम्यक्त्वाधिकारः

मनशुद्धिश्च सम्यक्त्वे सत्येव परमार्थतः ॥
तद्विना मोहगर्भा सा प्रत्ययपायानुवधिनी ॥१॥

सम्यक्त्वसहिता एव शुद्धा दानादिकाः क्रिया ॥
तासां मोक्षफले प्रोक्ता यदस्य सहकारिता ॥२॥

अर्थ—ए पूर्वे मनशुद्धि कही ते जो सम्यक्त्व गुण होय तो निश्चे मनशुद्धि कहवाय, पण सम्यक्त्व विना जे मनशुद्धि माने ते मोहगर्भित होय एटले अज्ञान सहित होय, ते तो ऊलटी कष्टबधन करनारी छे माटे हवे सम्यक्त्वनो अधिकार कहे छे ॥ १ ॥ दानादिक क्रिया पण सम्यक्त्व सहित होय तोज शुद्ध छे, ते क्रिया मोक्षफल लेवाने सहायकारक छे ॥ २ ॥

कुर्वाणोऽपि क्रिया ज्ञातिधनभोगास्त्यजन्नपि ॥
दु खस्योरो ददानोऽपि नाधो जयति वैरिण ॥ ३ ॥

कुर्वन्निर्वृतिमप्येव कामभोगास्त्यजन्नपि ॥
दु खस्योरो ददानोऽपि मिथ्यादृष्टिर्न सिध्यति ॥४॥

अर्थ—जेम आधलो वैरीने जीती शक्तो नथी तेम क्रिया करे छे, न्याति धननो भोग तजे छे, दु ख सह छे, का-याने कष्ट आप छे, पण ए सर्वे सम्यक्त्व विना व्यर्थ जाय छे ॥ ३ ॥ जो सतोष धरे, कामभोग छोडे, कायाने कष्ट आपे, तो पण मिथ्यात्वी थको मुक्तिने पामे नही ॥ ४ ॥

कनीनिकेव नेत्रस्य कुसुमस्येव सौरभ ॥
सम्यक्त्वमुच्यते सार सर्वेषा धर्म्मकर्म्मणा ॥५॥

तत्त्वश्रद्धानमेतच्च गदितं जिनशासने ॥
सर्वे जीवा न हन्तव्याः सूत्रे तत्त्वमितीष्यते ॥६॥

अर्थ—जेम आखमा कीकी सारभूत छे, फूलमा सुगंध सारभूत छे तेम सर्व धर्मक्रियामा सम्यक्त्व ते सारभूत कह्यु छे ॥ ५ ॥ जिनशासनने विषे जे तत्त्वनी श्रद्धा करवी तेहने सम्यक्त्व कह्यु छे, अने कोई पण जीवने हणवो नही तेने सूत्रमा तत्त्व कह्यु छे ॥ ६ ॥

शुद्धो धर्मोऽयमित्येतद्धर्मरुच्यात्मकं स्थितं ॥
शुद्धानामिदमन्यासां रुचीनामुपलक्षणं ॥ ७ ॥
अथवेदं यथा तत्त्वमाज्ञयैव तथाऽखिलं ॥
नवानामपि तत्त्वानामिति श्रद्धोदितार्थतः ॥ ८ ॥

अर्थ—जे शुद्ध धर्म ते ए धर्मरुची नामा सम्यक्त्वनेज कहिये अने ए मध्ये उपलक्षणथी बीजी पण शुद्ध पदार्थनी रुचीओ प्रगटे छे ॥ ७ ॥ अथवा ए सम्यक्त्व ते प्रभु आज्ञारूप तत्त्वे प्रगटे छे. ते तत्त्व तो जीवादिक नव प्रकारे छे, तेनी जे श्रद्धा ते सम्यक्त्व जाणवु ॥ ८ ॥

इहैव प्रोच्यते शुद्धाऽहिंसा वा तत्त्वमित्यतः ॥
सम्यक्त्वं दर्शितं सूत्रप्रामाण्योपगमात्मकं ॥ ९ ॥
शुद्धाऽहिंसोक्तितः सूत्रप्रामाण्यं तत एव च ॥
अहिंसाशुद्धधीरेवमन्योऽन्याश्रयभीर्न तु ॥ १० ॥

अर्थः—वली इहा तत्त्व ते अहिंसारूप शुद्ध तत्त्व छे. ते तत्त्व शुद्धाचार प्रमाणे विचारीए, तेवारे आत्माने अभिन्नस्वरूपे सम्यक्त्व देखाडयु छे ॥ ९ ॥ अने शुद्ध अहिंसा कही ते

सूत्रे प्रमाण छे, ए वेहुनी मात्र वचनेन जुदाई छे ते माटे एक अहिंसा तथा बीजी तत्त्वशुद्धि ए बेहुने माहोमाह मेलवता दूषण नथी, एक स्वरूपे छे ॥ १० ॥

नैव यस्माद्दहिंसाया सर्वपामेकवाक्यता ॥
तच्छुद्धतावबोधश्च सभवादिविचारणात् ॥ ११ ॥
यथाऽहिंसादय॰ पच व्रतधर्मयमादिभि. ॥
पदै. कुशलधर्माद्यैः कथ्यते स्वस्वदर्शने ॥ १२ ॥

अर्थ.—केमके अहिंसाने विषे सर्वनी एकवाक्यता नथी, तो पण विचारी जोता शुद्ध अवबोध जणाय छे ॥ ११ ॥ जेम अहिंसादिक पाच व्रत ते धर्म छे तेम सर्व पोतपोताना दर्शनने विषे कुशलधर्म धर्म आदे देइ यमादिक पदे करीने व्रत कहे छे ॥ १२ ॥

प्राहुर्भागवतास्तत्र व्रतोपव्रतपचकम् ॥
यमाश्च नियमान् पाशुपतान् धर्मान् दशाभ्यधु ॥१३॥
अहिंसा सत्यवचनमस्तेन्य चाप्यकल्पना ॥
ब्रह्मचर्य तथाऽक्रोधो ह्यार्जव शौचमेव च ॥ १४ ॥

अर्थ.—तेमा भागवत मतवाला एम बोले छे, के पाच व्रत अने पाच उपव्रत मलीने दश छे एम पाशुपतमतवाला दश प्रकारे धर्मदिशा माने छे ते यम-नियमादिक दश कही बतावे छे ॥ १३ ॥ दया, सत्य वचन, अचोरी, अकल्पना अने ब्रह्मचर्य ए पाच यम तथा अक्रोध, सरलता, शौच, सतोप अने गुरुसेवा, ए पाच नियम जाणवा ॥ १४ ॥

सतोपो गुरुशुश्रूषा इत्येते दश कीर्तिताः ॥
निगद्यते यमा सार्ख्यै रपिव्यासानुसारिभि ॥१५॥

अहिंसा सत्यमस्तैन्य ब्रह्मचर्य तुरीयक ॥
पचमो व्यवहारश्चेत्येते पच यमाः स्मृता ॥ १६ ॥

अर्थः—ए दश धर्मदशा कहेवाय. हवे वेदव्यासना मतानुसारी सारयमतवाला पण यम नियम एम कहे छे ॥ १५ ॥ दया, सत्य, अचोरी, ब्रह्मचर्य, व्यवहार ए पाच यम जाणवा ॥ १६ ॥

अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचमाहारलाघव ॥
अप्रमादश्च पचैते नियमाः परिकीर्तिताः ॥ १७ ॥

बौद्धैः कुशलधर्माश्च दशेष्यते यदुच्यते ॥
हिंसास्तेयान्यथाकाम पैशुन्य परुषानृत ॥ १८ ॥

अर्थः—अक्रोध, गुरुसेवा, शौच, अल्पाहार, अप्रमाद- ए पाच नियम कह्या छे ॥ १७ ॥ अने बौद्धदर्शनमा जे कुशल छे ते धर्मवाला पण दश प्रकारे कहे छे, तेम कहिये छीए, हिंसा, चोरी, कदर्प, चाडी, कठोर वचन अने जुठु बोलवु ॥ १८ ।

सभिन्नालापव्यापाद मभिध्यादृगविपर्यय ॥
पापकर्मेति दशधा कायवाङमनसैस्त्यजेत् ॥१९॥

ब्रह्मादिपदवाच्यानि तान्याहुर्वैदिकादयः ॥
अतः सर्वैकवाक्यत्वा द्धर्मशास्त्रमदोऽर्थक ॥ २० ॥

अर्थः—जेमतेम बकवु, मारवु, अब्रह्म सेववु,-दृष्टिविपर्यास, ए दश प्रकार पापकर्म ते मन, वचन अने काया ए त्रणे योगे करी त्यजवा ॥ १९ ॥ अने वैदिकादिक मतवाला पण ब्रह्मादिक पद बोले छे, जे सर्वेन ब्रह्मपद छे, एथी ए सर्व धर्मवालाना एकवचन छे, माटे सार्थकपणे सर्वेने धर्मशास्त्र कहिये ॥ २० ॥

क नैतत्सभवो युक्त इति चित्य महात्मना ॥
शास्त्र परीक्षमाणेना व्याकुलेनातरात्मना ॥ २१ ॥

प्रमाणलक्षणादेस्तु नोपयोगोत्रऽकश्चन ॥
तन्निश्चयेऽनवस्थानादन्यथार्थस्थितेर्यत ॥ २२ ॥

अर्थ,—त माटे ए सर्वदर्शननो सभव किहा ठेकाण छे, एम मोटा पुरुषे चितवतु, त शास्त्रनी परीक्षावालाए विचारतु, ते वली अव्याकुलपणे अतरात्माइडे विचारतु ॥ २१ ॥ इहा प्रमाणलक्षणादिकथकी कशोए उपयोग कार्यकारी नथी, जिहा अन्यथा अर्थ उपजे एटले ते धर्म जुदो थइ जाय अने धर्म तो एक स्वभावरूप छे ॥ २२ ॥

प्रसिद्धानि प्रमाणानि व्यवहारश्च तत्कृत ॥
प्रमाणलक्षणस्योक्तौ ज्ञायते न प्रयोजन ॥ २३ ॥

तत्रात्मा नित्य एवेति येषामेकातदर्शन ॥
हिंसादय कथ तेषा कथमप्यात्मनोऽव्ययात् ॥ २४ ॥

अर्थ —अन चार प्रमाण तो प्रसिद्ध छे, व्यवहार पण तेज कह्यो छे, माटे प्रमाण तथा लक्षणनी युक्ति विषे प्रयोजन जणातु नथी ॥ २३ ॥ त मध्ये वे नय करी आत्मा नित्यज छे, एवु एकात मतवालानु कहेवु छे तेन मते तो हिंसादिक नथी केमके आत्मा अविनाशी छे, त कोइनारे मर नहीं, अने मर नही तेवार हिंसा पण शानी ? ॥ २४ ॥

मनोयोगविशेषस्य ध्वसो मरणमात्मन ॥
हिंसा तच्चेन्न तत्त्वस्य सिद्धेरार्थसमाजत ॥ २५ ॥

नैति बुद्धिगता दु स्वोत्पादस्पेयमौचितिम् ॥
पुंसि भेदाग्रहात्तस्या परमार्थाऽव्यवस्थित ॥२६॥

अर्थः—सघळे मरणे मनोयोग नाश पामे छे तेवारे लोक कहे छे के जीव मुवो, पण आत्मा तो मरतो नथी, माटे तत्त्वथकी आत्मानी हिंसा नथी ए अर्थ घटमान छे एम कहे छे. ॥ २५ ॥ कोई जाणशे जे आगल दुःख उपजाववानी जे बुद्धि तेहने हिंसा कहिये, पण ए वात योग्य नथी, केमके तमे बुद्धिने तो पुरुषभेद आग्रहथकी आत्माथी भिन्न मानो छो, तेथी पण आत्मानी हिंसा न थई केमके परमार्थे बुद्धिने आत्मा साथे व्यवस्था नथी ॥ २६ ॥

न च हिंसापदं नाशपर्याय कथमप्यहो ॥
जीवस्यैकांतनित्यत्वेऽनुभवाबाधकं भवेत् ॥ २७ ॥
शरीरेणापि संबंधो न तद्योगाविवेचनात् ॥
विभुत्वेनैव संसारः कल्पितः स्यादसंशयं ॥ २८ ॥

अर्थः—एकांते नित्यपणे जीवनो नाश थवानो जे पर्याय ते हिंसा पद कहेवाय, तेहने अहो इति आश्चर्य ! अनुभव अबाधकपणे न होय शुं ? होयज इति काकोक्ति ॥ २७ ॥ नित्यपणे शरीर करीने पण संबंध नथी, केमके तेना योगनी वहेंचण नथी, माटे संशय रहितपणे ईश्वरवडे करीनेज ईश्वरकर्त्ता इत्यादिक संसार कल्प्यो छे ॥ २८ ॥

आत्मक्रिया विना च स्यान्मितानुग्रहणं कथं ? ॥
कथं संयोगभेदादिकल्पना चापि युज्यते ॥ २९ ॥
अदृष्टाद्देहसंयोगः स्यादन्यतरकर्म्मजः ॥
इत्थं जन्मोपपत्तिश्चेन्न तद्योगाविवेचनात् ॥ ३० ॥

अर्थः—एक आत्मक्रिया विना एटले आत्माना व्या-

पार विना परिमित परमाणुनुं ग्रहण केम थाय ? वळी संयोग-वियोगादिकनी कल्पना पण केम घटे ? ॥ २९ ॥ एम सांभळीने कोई बोल्यो के हरकोई कर्मथी पूर्व संस्कार दिठा विना शरीरनो संयोग थाय छे, तेनो उत्तर आपे छे एम जन्मनी उत्पत्ति ते जीवना व्यापार विना-वेदन विना थाय नही, इति भावार्थ ॥ ३० ॥

कथंचिन्मूर्त्ततापेतिर्विना वपुरसंक्रमात् ॥
व्यापारयोगतश्चैव यत्किंचित्तदिदं जगुः ॥ ३१ ॥
निःक्रियोऽसौ ततो हंति हन्यते वा न जातुचित् ॥
किंचित्केनचिदित्येवं न हिंसाऽस्योपपद्यते ॥ ३२ ॥

अर्थः—शरीरने संयोगे तो जीव काईक रूपीपणुं पामे छे जो शरीरनो संगम न होय तो जे थाई छे ते इहां कहे छे ॥ ३१ ॥ जेणे आत्मा त्यागी कीधो छे ते एम कहे छे के आत्मा क्रिया रहित छे, माटे कोइने हणतो नथी तेम कोइ काले कोइथी हणातो पण नथी, एवु जेना चित्तमां छे ते हिंसा नहीं माने ॥ ३२ ॥

अनित्यैकांतपक्षेऽपि हिंसादीनामसंभव ।
नाशहेतोरयोगेन क्षणिकत्वस्य साधनात् ॥ ३३ ॥
न च संतानभेदस्य जनको हिंसको भवेत् ॥
सांवतत्वादजन्यत्वाद् भावत्वनियतं हि तत् ॥३४॥

अर्थ —एम एकांते अनित्यवादीने पक्षे हिंसा नथी मनाती, केमके ते सर्व पदार्थ क्षणरूप माने छे, माटे आत्मा क्षणमां नाशरूप छे, ते पोतानी मेळेज मरे छे तेवार मारनार

हेतु कोई नथी माटे हिंसा नथीज ॥ ३३ ॥ पुत्र-पुत्री प्रमुखनो कोइ बाप नथी तेम कोइ मारनार पण नथी, ए जगत् सर्व क्षणिक माननो नियम छे, अनित्य छे, माटे कोइ प्रगट करनार नथी तेमारे पिता कोनो अने पुत्र कोनो ? ॥ ३४ ॥

नरादिः क्षणहेतुश्च शूकरादेर्न हिंसकः ॥
शूकरात्यक्षणेनैव व्यभिचारप्रसंगतः ॥ ३५ ॥
अनंतरक्षणोत्पादे बुद्धलुब्धकयोस्तुला ॥
नैव तद्विरतिः क्वापि ततः शास्त्रप्रसंगतिः ॥ ३६ ॥

अर्थः—मनुष्य क्षणमात्र छे अने पछी सुअरना मरणने अंतकालना क्षणमा ते मनुष्य नथी, माटे सुअरने मारनार कोण छे ? एहवा बोलनारने पण प्रसंगथी व्यभिचार आवे छे ॥ ३५ ॥ तथा सुअरने मार्युं अने मरणने बीजे समये ज्ञानी तथा आहेडी ए बे सरिखा छे सुअर मरण पाम्युं ते ए बे जणे जाण्युं, माटे हवे ए बेमांथी कोइने मारवानी मति नथी. ते माटे मारनार तथा मरनार सर्वना क्षणे क्षणे उत्पत्ति तथा मरण छे, पण कोइ क्षणे काइ विरति नथी, एम कहे छे ए मतवालाना शास्त्र पण जूठा छे ॥ ३६ ॥

घटन्ते न विनाऽहिंसा सत्यादन्यपि तत्त्वतः ॥
एतस्यावृत्तिभूतानि तानि यद्भगवान् जगौ ॥३७॥
मौनींद्रे च प्रवचने युज्यते सर्वमेव हि ॥
नित्यानित्ये स्फुट देहाद्भिन्नाभिन्ने तथात्मनि ॥३८॥

अर्थ —केमके अहिंसा विना सत्यादिक धर्म पण घटे नहीं अने सत्यादिक धर्म जे छे ते जीवदयारूप क्षेत्रनी वाड

छे, एनु केवली कहे छे ॥ ३७ ॥ जिनशासनने विषे तो ए सर्व घटमान छे, शरीरथी प्रगटपणे नित्य छे, वळी अनित्य पण छे; तेमज भिन्नाभिन्नपणु छे, तथा एकपणु छे अने अनेकपणु पण छे, वली आत्माने विषे पण तेमज कहेवुं ॥ ३८ ॥

आत्मा द्रव्यार्थतो नित्य पर्यायार्थाद्विनश्वरः ॥
हिनस्ति हन्यते तत्तत्फलान्यप्यधिगच्छति ॥ ३९ ॥
इह चानुभव· साक्षी व्यावृत्यान्वयगोचर· ॥
एकांतपक्षपातिन्यो युक्तयस्तु मिथो हताः ॥ ४० ॥

अर्थ—आत्मा द्रव्यार्थिकनये नित्य छे अने पर्यायार्थिकनये अनित्य छे, ए जीव कोइने हणे छे, अथवा कोइ ए जीवने हणे छे, तेना फल परभवमा आत्मा भोगवे छे ॥ ३९ ॥ ए जैननी शैलीथ अन्वय अने व्यतिरेक ए बे गुणे सहित एवो जे अनुभव ते साक्षी करता थका एकांत मतवालानी युक्तियो माहोमाह हणाइ जाय छे ॥ ४० ॥

पीडाकर्तृत्वतो देहव्यापत्त्या दुष्टभावत ॥
त्रिधा हिंसागमे प्रोक्ता न हीत्यमपहेतुका ॥४१॥
हतुर्जाग्रति को दोषो हिंसनीयस्य कर्म्मणि ॥
प्रसक्तिस्तदभावे चान्यत्रापीति मुधा वच. ॥४२॥

अर्थ—पीडा करवाथी, देहपीडाथी, दुष्टभावथी, एवा त्रण प्रकारनी हिंसा सिद्धांतमा कही छे, ते काइ जूठी नथी ॥ ४१ ॥ जे प्राणीनु स्वकृत कर्मनो उदय थये थके मृत्यु थयुं तो तेना हणनारने शो दोष छे ? एटले हिंसा न थइ, अने जे हणाणो तेना कर्म उदय आव्या, त तेणे भोगव्या तो तेमा शी

हिंसा छे ? केमके जे जीवने मरणनो उदय हाल नथी तेने मारिये तो पण ते काइ मरतो नथी; माटे हिंसा कोइनी थती नथी, एवु जे माने छे ते मिथ्या छे ॥ ४२ ॥

हिंस्यकर्म्मविपाकस्य दुष्टाशयनिमित्तता ॥
हिंसकत्व न तेनेद वैद्यस्य स्याद्रिपोरिव ॥ ४३ ॥

इत्य सदुपदेशादेस्तन्निवृत्तिरपि स्फुटा ॥
सोपक्रमस्य पापस्य नाशात्स्वाशयवृद्धितः ॥४४॥

अर्थ—केमके जे प्राणीना मनमा दुष्ट आशयनु निमित्त छे तेने ए हिंसा छे, अने हिंसाना कर्मविपाक पण तेनेज छे. जो वैद्यने औषध करता दुष्ट चित्त होय तो ते औषध शत्रु सरखु थाय, अने ते वैद्यने पण हिंसकपणु लागे. अने जो वैद्यनुं मन निर्मल छे तो वैद्यने हिंसकपणु न लागे ॥ ४३ ॥ एवा सद्गुरुना उपदेश साभलवाथी हिंसानी निवृत्ति प्रगटपणे थाय. निर्मल चित्तना आशयनी वृद्धिथकी सोपक्रमी जे अनिकाचित बाधेला पाप तेनो नाश थाय छे. ॥ ४४ ॥

अपवर्गतरोर्बीज मुख्याऽहिंसेयमुच्यते ॥
सत्यादीनि व्रतान्यत्र जायते पल्लवा नवा. ॥ ४५ ॥

अहिंसासभवश्चेत्य दृश्यतेऽत्रैव शासने ॥
अनुबधादिसशुद्धिरप्यत्रैवास्ति वास्तवी ॥ ४६ ॥

अर्थ.—जे अहिंसा ते मोक्षरूप वृक्षनु बीज कहिये, अने सत्यादिक जे व्रत छे ते मोक्षरूप वृक्षना नवपल्लव अकुरा छे ॥ ४५ ॥ ते तो आ जिनशासनमा जीवदयानो, अहिंसकपणानो सभव जोवामा आवे छे अने वली अनुबधहिंसा तथा हेतुहिंसा

अने स्वरूपहिंसा ए त्रण जातनी जे हिंसा तेनी शुद्धि ते पण आ जिनशासनमान वसी रही छे ॥ ४६ ॥

हिंसाया ज्ञानयोगेन सम्यग्दृष्टेर्महात्मन ॥
तप्तलोहपदन्यासतुल्याया नानुबधन ॥ ४७ ॥
मतामस्याश्च कस्याश्चिद् यतनाभक्तिशालिना ॥
अनुबंधो ह्यहिंसाया जिनपूजादिकर्म्मणि ॥ ४८ ॥

अर्थ —मोटा प्राणी जे सम्यग्दृष्टि ते ज्ञानयोगे करी वर्ते छे, तेने पण अविरतिथी हिंसा लागे छे, ते केवी छे ? जेम तपाव्यु एवु जे लोढु ते उपर पग मूकी कोई चाले, पण बलवाने भये नि शकपणे पग ठरावे नहीं, तेम समकिती पण नि शकपणे हिंसा न करे, अने ते माटेज नरकनो बध पण कर नहीं ॥४७॥ तेम रुडा जयणावत जीवने ज्ञानयोगे करी जिनपूजा करता अहिंसा जे दया तेनो अनुबध छे, केमके ए पूजा ते परंपराये मुक्तिफलनी आपनारी छे ॥ ४८ ॥

हिंसानुबधिनी हिंसा मिथ्यादृष्टेस्तु दुर्मतेः ॥
अज्ञानशक्तियोगेन तस्याहिंसापि तादृशी ॥४९॥
येन स्याच्निह्नवादीना दिविषद्दुर्गति क्रमात ॥
हिंसैव महती तिर्यङ्नरकादिभवातरे ॥ ५० ॥

अर्थ —पण नरकगतिनो बध पडे एवी जे हिंसा ते मिथ्यात्वी दुर्मतिने होय, अज्ञानने योगे करी ते मिथ्यात्वी जो जीवदया पाले तो ते पण हिंसा जेवीज जाणवी ॥ ४९ ॥ जे कारण माटे निन्हवादिक जमाली प्रमुखे पण जीवदया पाली छे, तोपण अज्ञानोदयना योगे स्वर्गमा पण दुर्गति पाम्या छे,

अने ढेडरूप छे, माटे निन्हवनी जे अहिंसा ते परमार्थे हिंसाना ज फल आपे, केमके भवांतरे तेमने तिर्यंच् नरकादिकनी गति प्रगटे छे ॥ ५० ॥

साधूनामप्रमत्ताना सा चाहिंसानुबंधिनी ॥
हिंसानुबंधविच्छेदाद्गुणोत्कर्षो यतस्ततः ॥५१ ।
मुग्धानामियमज्ञत्वात् सानुबंधा न कर्हिचित् ॥
ज्ञानोद्रेकाप्रमादाभ्यामस्या यदनुबंधनं ॥ ५२ ॥

अर्थः—अप्रमत्त साधु जे सातमा गुणठाणावाला तेने जे हिंसा छे ते अहिंसानुबंधी छे, केमके हिंसानो अनुबंध विच्छेद थया थकी जिहा तिहा थकी गुणनो उत्कर्ष थाय छे ॥ ५१ ॥ पण ए अहिंसा ते अज्ञानपणे भोला प्राणीने कदापि काले सुखदायक नथी, एटले ए अनुबंध सहित न थाय, पण अप्रमत्त साधुने ज्ञान सहित जे अहिंसा अथवा हिंसा ते अनुबंधे अहिंसाज कहिये, केमके ए परंपराए मोक्षसुखनु कारण छे माटे ॥ ५२ ॥

एकस्यामपि हिंसायामुक्तं सुमहदंतरं ॥
भाववीर्यादिवैचित्र्यादहिंसाया च तत्तथा ॥ ५३ ॥
सद्यः कालांतरे चैतद्विपाकेनापि भिन्नता ॥
प्रतिपक्षांतरालेन तद्वा शक्तिनियोगतः ॥ ५४ ॥

अर्थः—एकली हिंसाने विषे पण जेम मोटो अंतर देखाड्यो छे तेम भाव वीर्यना विचित्रपणाथकी अहिंसाने विषे पण तेमज जाणवु ॥ ५३ ॥ प्रतिपक्षपणे अतराले करी अथवा ते शक्तिने योगे करी तत्काल अथवा कालांतरे विपाके करीने पण भिन्नता छे ॥ ५४ ॥

हिंसाप्युत्तरकालीनविशिष्टगुणसंक्रमात् ॥
त्यक्ताविध्यनुबंधत्वादहिंसैवातिभक्तितः ॥ ५५ ॥
ईदृग्भंगशतोपेताऽहिंसा यत्रोपवर्ण्यते ॥
सर्वांशपरिशुद्धं तत्प्रमाणं जिनशासनं ॥ ५६ ॥

अर्थः—जे हिंसा छे ते पण जो उत्तरकाले विशिष्टगुण प्रगटे, तथा अविधिनो अनुबंध तज्याथी अने अत्यंत भक्तिथकी प्राणीने अहिंसारूपज फलदायक थाय छे ॥ ५५ ॥ ए रीते सेंकडो गम भांगाउ सहित जिहां अहिंसाने वर्णविये ते तो सर्वांशे शुद्ध एवुं जे जिनशासन तेमाज प्रमाण छे ॥ ५६ ॥

अर्थोऽयमपरोऽनर्थ इति निर्धारणं हृदि ॥
आस्तिक्यं परमं चिन्हं सम्यक्त्वस्य जगुर्जिना ॥५७॥
शमसंवेगनिर्वेदानुकंपाभिः परिष्कृतं ॥
दधतामेतदच्छिन्नं सम्यक्त्वं स्थिरतां व्रजेत् ॥५८॥

अर्थ—अहिंसा तेज अर्थ छे अने बीजा सर्व अनर्थ छे, ए प्रकार जेना मनमां धारणा छे एहवी परम आस्था प्रगटे ते आस्था श्रद्धारूप समकितनुं चिह्न छे, एवुं प्रभुए कह्युं छे ॥५७॥ समता, संवेग, निर्वेद, अनुकंपा ए लक्षणो रूडी रीते अविच्छिन्न पणे धरता थका समकित जे छे ते स्थिरतापणाने पामे ॥ ५८ ॥

इति सम्यक्त्वाधिकार द्वादश समाप्त ॥

— —

॥ मिथ्यात्व त्यागाधिकार ॥

मिथ्यात्वत्यागतः शुद्ध सम्यक्त्व जायतेऽङ्गिना ।
अतस्तत्परिहाराय यतितव्य महात्मना ॥ १ ॥

नास्ति नित्यो न कर्त्ता च न भोक्तात्मा न निर्वृतः ।
तदुपायश्च नेत्याहुर्मिथ्यात्वस्य पदानि षट् ॥ २ ॥

अर्थः—ते जे वारे मिथ्यात्वनो नाश थाय ते वारे जीवने सम्यक्त्व प्रगटे; माटे मिथ्यात्व टालवानो रुडा प्राणीय उद्यम करो ॥ १ ॥ आत्मा नथी, आत्मा नित्य नथी, कर्त्ता नथी, भोक्ता नथी, सिद्ध नथी, ते सिद्धता प्रगट करवानो उपाय नथी ए छ पद मिथ्यात्वना छे ॥ २ ॥

एतैर्यस्माद्भवेद्वृद्धव्यवहारविलघन ।
अयमेव च मिथ्यात्वध्वसी सद्गुपदेशतः ॥ ३ ॥

नास्तित्वादिग्रहैर्नैवोपदेशो नोपदेशकः ।
ततः कस्योपकारः स्यात्सदेहादिव्युदासतः ॥४॥

अर्थः—ए पदवडे करी पूर्वाचार्यना व्यवहार उलघाय छे, लोपाय छे, एज मिथ्यात्व छे, अने ते सद्गुरुना उपदेशथकी नाश पामे छे ॥ ३ ॥ ए छ पदरूपी कुग्रह नख्याथकी जे उपदेश आपे ते उपदेश न कहिये, तेथी कोइने उपकार न थाय, मिथ्यात्वीना उपदेशे संदेह टले नही ॥ ४ ॥

येषा निश्चय एवेष्टो व्यवहारस्तु सगतः ।
विप्राणा म्लेच्छभाषेव स्वार्थमात्रोपदेशनात् ॥५॥

यथा केवलमात्मानं जानानः श्रुतकेवली ।
श्रुतेन निश्चयात्सर्वं श्रुतं च व्यवहारतः ॥ ६ ॥

अर्थ —जेम ब्राह्मणने म्लेच्छ भाषा बोलवानी मनाई छे, माटे पोताना स्वार्थे जेटलीज बोले, तेमज जेहने एक निश्चय नयन इष्ट छे तेहने व्यवहार नय तो ब्राह्मणने म्लेच्छनी भाषाना उपदेशनी पर स्वार्थ माटे सगत मात्र छे ॥ ५ ॥ जेम श्रुतकेवली व्यवहारथी श्रुत जाणे; अने सर्व निश्चय नयवडे श्रुतज्ञाने करी श्रुतकेवली केवल आत्माने जाणे ॥ ६ ॥

निश्चयार्थोऽत्र नो साक्षाद्वक्तुं केनापि पार्यते ।
व्यवहारो गुणद्वारा तदर्थावगमक्षयः ॥ ७ ॥
प्राधान्यं व्यवहारे चेत्तत्तेषां निश्चये कथं ?
परार्थस्वार्थता तुल्ये शब्दज्ञानात्मनोर्द्वयोः ॥ ८ ॥

अर्थ —इहां निश्चय अर्थ प्रगटपणे कहवाने कोई समर्थ नथी तेथीतो गुण प्रगट ते रूप द्वार निश्चय अर्थनी प्राप्ति क्षय रूप व्यवहार कहवाय ॥ ७ ॥ जेने केवल व्यवहारने विषज प्रधानपणु छे तो तेने निश्चयनयमा कम होय ? वली शब्दनय अने ज्ञाननयरूप प्राणीने स्वअर्थ ने परअर्थ ए तुल्य छे जे शब्द ते व्यवहार छे अने ज्ञान ते निश्चय छे । ८ ॥

प्राधान्याद्व्यवहारस्य तत्त्वमुच्छेदकारिणा ।
मिथ्यात्वरूपतैतेषां पदानां परिकीर्तिता ॥ ९ ॥
नास्त्येवात्मेति चार्वाकः प्रत्यक्षानुपलंभतः ।
अहंताव्यपदेशस्य शरीरेणोपपत्तितः ॥ १० ॥

अर्थ·—जे व्यवहारना प्रधानपणाथकी सर्वनो उच्छेद थाय तेवा प्राणीने मिथ्यात्वरूप छ पदमा मिथ्यात्वभाव थयो एम जाणवु ॥ ९ ॥ चार्वाक दर्शनवाला कहे छे के आत्मा नथी, केमके जो आत्मा होय तो प्रत्यक्ष जणाय, ते तो काई जणातो नथी, अने अहकार एटले आ कार्य हु करु छु तेनो जे व्यपदेश छे ते तो शरीरे करीने जणाय छे ॥ १० ॥

मद्यागेभ्यो मदव्यक्ति प्रत्येकमसती यथा ।
मिलितेभ्यो हि भूतेभ्यो ज्ञानव्यक्तिस्तथा मता ॥११॥
राजरकादिवैचित्र्यमपि नात्मबला हितम् ।
स्वाभाविकस्य भेदस्य ग्रावादिष्वपि दर्शनात् ॥१२॥

अर्थ—जेम महुडा तथा पाणीप्रमुख मदिराना अग छे, पण ते प्रत्येकमा मदिरानी शक्ति नथी, जे वारे भेगा मले ते वारेज शक्ति प्रगटे, तेम पचभूत भेगा मले ते वार ज्ञानशक्ति प्रगट थाय छे ॥ ११ ॥ जेम एक शिला अथवा एक काकरी ए सर्व पथराना भेद छे तेम आ राजा छे, आ राक छे एवु विचित्रपणु ते आत्मा नथी, ए तो स्वभावे भेद पड्या छे ॥१२॥

वाक्यैर्न गम्यते चात्मा परस्परविरोधिभि· ।
दृष्टवान्न च कोऽप्येन प्रमाण यद्वचो भवेत् ॥१३॥
आत्मान परलोक च क्रिया च विविधा वदन् ।
भोगेभ्यो भ्रशयत्युच्चैर्लोकचित्त प्रतारकः ॥ १४ ॥

अर्थः—वली सर्व मतवालाना माहोमाहे विरोधी वचन होवाथी आत्मानी प्रतीति थती नथी, केमके कोइये आत्मा दीठो नथी के जे थकी एकेनु वचन प्रमाण थाय ॥ १३ ॥ आत्माने

परलोकने अर्थे एम विचित्र प्रकारनी क्रिया करावे छे, परंतु कहेनारा विचारा लोकने सुखभोगथी भ्रष्ट करे छे एम जे लोकोना चित्तने फरवे छे, ते धूर्त गुरु जाणवा ॥ १४ ॥

त्याज्यास्तत्त्वैहिका कामाः कार्या नानागतस्पृहा ।
भस्मीभूतेषु भूतेषु वृथा प्रत्यागतिस्पृहा ॥ १५ ॥

तदेतद्दर्शन मिथ्या जीवः प्रत्यक्ष एव यत् ।
गुणाना संशयादीना प्रत्यक्षणाम भेदत ॥ १६ ॥

अर्थ—माटे आ भवमा पाम्या जे सुखभोग ते तजवा नही, अने आवता भवमा सुख पामशु एवी वाछा न करवी, केमके पचभूतनु पुतळु बळीने राख थशे एटले परभवनी इच्छा सर्व फोगट जशे ॥ १५ ॥ ए रीते चार्वाक दर्शननुं मत कह्युं, पण ए दर्शन खोटुं छे, केमके प्रत्यक्षपणे संशयादिक जे गुण ते जीवने छे माटे जीव प्रत्यक्ष अभेदपणे छे । १६ ॥

न चाह प्रत्ययादीना शरीरस्यैव धर्मता ।
नेत्रादिग्राह्यतापत्तेर्नियत गौरवादिवत् ॥ १७ ॥

शरीरस्यैव चात्मत्वे नानुभूतस्मृतिर्भवेत् ।
बालत्वादिदशाभेदात्तस्यैकस्यानवस्थिते ॥ १८ ॥

अर्थ—जेम कोई आदर आपे ते पण आत्मा छे, तेम अहंकारादिक प्रत्यय जे छे ते आत्मा छे. ते काई शरीरनो धर्म नथी अहंकारादि नेत्रमा जणाय छे ते देखवारूप छे ॥ १७ ॥ शरीरने जो आत्मा कहिये तो आत्मा जड थयो ते पछी पूर्वेनी अनुभवेली वात आत्मा विना कोने सांभरे छे ? शरीरने तो सांभरतु नथी, अने बाल, यौवन तथा वृद्ध इत्यादिक जे शरीरनी

दशाना भेद छे तेथी आत्मा पण बालत्वादि दशावंत थाय छे, पण निश्चयनयथी आत्मानी एक दशा छे अने शरीरनी अवस्था एक नथी, केमके अनवस्थित दोषनो प्रसंग छे माटे ॥ १८ ॥

नात्माग विगमेऽप्यस्य तल्लब्धानुस्मृतिर्यतः ।
व्यये गृहगवाक्षस्य तल्लब्धार्थाधिगतृवत ॥ १९ ॥
न दोषः कारणात्कार्य वासनासंक्रमाच्च न ।
भ्रूणस्य स्मरणापत्तेरंबानुभवसंक्रमात् ॥ २० ॥

अर्थः—शरीरनो तो नाश थाय अने आत्मा परभवमा जाय, पण जातिस्मरणे फरी पूर्वजन्मादिकनु स्मरण छे. जेम घरना गोखमा बेसीने नगरना पदार्थ दीठा अने पछी ते गोख पडी गयो तो पण जोयानु स्मरण जतुं नथी ॥ १९ ॥ कारणथकी बाल्यावस्थानी वासनाना संक्रमणथकी जे कार्य आत्मा करे छे ते कार्यनी जो स्मृति न रही, तो पण तेने दूषण नथी जेम माताए पोताना अनुभवना संक्रमणथकी बालकने बोलवु-चालवु शीखव्यु होय, तेनी बालकने स्मृति न होय तेहनी परे जाणवु ॥ २० ॥

नोपादानादुपादेयवासनास्थैर्यदर्शने ॥
करादेरतथात्वेनयोग्यत्वात्तेरणुस्थितौ ॥ २१ ॥
मयांगेभ्यो मदव्यक्तिरपि नो भेलकं विना ॥
ज्ञानव्यक्तिस्तथा भाव्याऽन्यथा सा सर्वदा भवेत् ॥२२॥

अर्थः—उपादानना योगे करी स्थिरताना दर्शनने विषे उपादान वासना न होय, जेम हस्तादि जे छे ते उपादेय छे अने तेनु उपादान ते हस्तादिकना परमाणु छे, माटे परमाणुरूप

सूक्ष्म स्थितिमा स्थिरदर्शन न संभवे ॥ २१ ॥ जेम मदिराना अगथकी मदशक्ति प्रगटपणे नथी, पण भेगे मलवे थाय छे, अथवा पीधा पछी आत्माने संयोगे थाय छे तेम ज्ञाननी प्रगटता पण आत्माने योगे थाय छे, नहीं तो सदाय एकलुं ज्ञान रहेवु जोइए ॥ २२ ॥

राजरकादिवैचित्र्यमप्यात्मकृतकर्मज ॥
सुखदुःखादिसवित्तिविशेषो नान्यथा भवेत् ॥२३॥
आगमाद्गम्यते चात्मा दृष्टेष्टार्थाविरोधिन ॥
तदुक्ता सर्वविदेन दृष्टान्वीतकश्मल' ॥ २४ ॥

अर्थ.—आ राजा छे अने आ रांक छे, एवो जीवने विचित्र भाव उपजे छे एवी लोकवाणी छे, ते सर्व पोतानां कीधेला कर्मथकी जाणवी सुखदु ख सर्व कर्मथकी प्रगट थाय छे, अन्यथा बीजु विशेष कारण काई नथी ॥ २३ ॥ जे दृष्टिये दीठुं ते प्रत्यक्षप्रमाण अने इष्टार्थ ते अनुमान प्रमाण, तथा उपमाप्रमाण ते अनुमानमा भले छे, माटे ए त्रण प्रमाणने अविरोधी एहवुं जे आगमप्रमाण तेणे करी आत्माने जाण्यो जाय छे त आगम तो जैना सर्व पाप गया छे एहवा सर्वज्ञ देवे देखाडयुं छे ॥ २४ ॥

अभ्राताना च विफला नामुष्मिकाय, प्रवृत्तय: ॥
परवधनहेतो क स्वात्मानमवसादयेत् ॥ २५ ॥
सिद्धि स्याणवादिवद्व्यक्ता सशयादेव चात्मन ॥
असौ स्वरविषाणादौ व्यस्तार्थविषय पुन ॥२६॥

अर्थ —अभ्रात जे ज्ञानी पुरुष तेने हमणानी प्रवृत्ति ते

निष्फलता न होय, माटे परमधनना हेतुए करी पोताना आत्माने कोण खेदमा नाखे ? ॥ २५ ॥ आत्मानी प्रगटपणे संशयथी सिद्धि छे, एवी वात तो वगडामा झाडना ठुंठा जेवी देखाय, पण संशय करता थका जे खरु स्वरूप ते न जणाय. तेमज संशयवडे आत्माने न जाणिये अने जे विपरीत अर्थे आत्माने माने तेने गधेडाने शिंगडा माननार जेवो समजवो ॥ २६ ॥

अजीव इति शब्दस्य जीवसत्तानियन्त्रितः ॥
असतो न निषेधो यत्संयोगादिनिषेधनात् ॥२७॥

संयोग, समवायश्च सामान्य च विशिष्टता ॥
निषिध्यते पदार्थाना त एव न तु सर्वथा ॥ २८ ॥

अर्थः—अजीव शब्दमा जीव शब्दनी सत्ता वलगेली छे, पण निषेध अछतो छे. जेथी नास्तिक मतवाला संयोग, समवाय अने सामान्य तथा विशेषने निषेधे छे, ते पण सर्वथा-पणे वस्तुस्वरूपने निषेधी शकता नथी, केमके संयोग, समवाय अने सामान्य नही माननारथकी पण अजीव शब्द बोलवो ते यद्यपि अजीव पदार्थ सत छे, तथापि शब्द असत् मानीए तो ते असत् पदार्थनो निषेध देखातो नथी ॥ २७ ॥ माटे संयोग, समवाय, सामान्य इत्यादिक पदार्थनु विशेषपणु ते नास्तिक मत-वाला निषेध करे छे, पण ते सर्वथा निषेध थाय नहीं ॥ २८ ॥

शुद्ध व्युत्पत्तिमज्जीवपद सार्थ घटादिवत् ॥
तदर्थस्य शरीर नो पर्यायपदभेदतः ॥ २९ ॥

आत्मव्यवस्थितेस्त्याज्यं ततश्चार्वाकदर्शनम् ॥
पापाः किलैतदालापाः सद्व्यापारविरोधिनः ॥३०॥

अर्थः—शामाटे ? शुद्ध निर्मल एवी व्युत्पत्ति व जीव प्राण धारणे एवे अर्थे युक्त एवु जीव पद साचु छे, घटादिकनी पेरे छतु छे, पण नवा नवा पर्यायना भेदथकी जीवने मूल अर्थे शरीर नथी ॥ २९ ॥ ए रीते आत्मानु स्थापन करीने चार्वाक दर्शनने छाडवु, ए दर्शनी साथे आलाप करवो ते पण पापरूप छे, केमके ते सत्यवादी साथे निरोधकारक छे, तेथी तजवु ॥३०॥

ज्ञानक्षणावलीरूपो नित्यो नात्मेति सौगता. ॥
क्रमाक्रमाभ्या नित्यत्वे युज्यतेऽर्थक्रिया न हि ॥३१॥
स्वभावहानितोऽध्रौव्य क्रमेणार्थक्रियाकृतौ ॥
अक्रमेण च तद्भावे युगपत्सर्वसभव· ॥ ३२ ॥

अर्थः—हवे बौद्धमतवाला बोल्या के-आत्मा ज्ञानरूप छे, पण क्षण-आवलिका प्रमाणे स्थिति छे, माटे आत्मा नित्य नथी. एटले जीव ते क्षणमा क्रोध करे, क्षणमा मान करे, एम भिन्न अवस्था थाय छे, एक अवस्था नित्य रहती नथी पर-पराये क्रम अक्रमपणे जो नित्य आत्मा कोइ वेलाये होय, तो अर्थक्रियाकलाप घटे नही, माटे नित्य आत्मा नथी ॥ ३१ ॥ एनो स्वभाव हणाय त वारे ध्रुवपणु पामे, अनुक्रम अर्थक्रिया आकृतिने विषे अक्रम करीने ते भावने विषे समकाले विचारता सर्व सभव होय, माटे अमारा क्षणिक मत साचो ठर्यो ॥ ३२ ॥

क्षणिके तु न दोषोऽस्मिन् कुर्वद्रूपविशेषिते ॥
ध्रुवेक्षणोत्थतृष्णाया निवृत्तेश्च गुणो महान् ॥ ३३ ॥
मिथ्यात्ववृद्धिकृन्नून तदेतदपि दर्शन ॥
क्षणिके कृतहानिर्यत्तयात्मन्यकृतागम ॥ ३४ ॥

अर्थः—वळी आ क्षणिक मतमा दोप नथी, केमके नव-नवा रूप कर छे, पण जे समये जे रूप होय ते समये ते रूपना लक्षणे करी ध्रुव छे तमा तृष्णानो अने निवृत्तिनो मोटो गुण छे जेथी ध्रुवतारूप महागुण पामिये, एम बौद्ध कहे छे ॥ ३३ ॥ ए उपरथी खरेखरु ए दर्शन मिथ्यात्वनी वृद्धि करनारु छे, केमके आत्माने क्षणिक माननारना सुकृतनी हानि थाय छे जो कदी पाप न करे, तोपण जूठा बोलनानु पाप तो परभवे भोगवनु पडे, माटे अकृतागम कहिये ॥ ३४ ॥

एकद्रव्यान्वयाभावाद्वासनासंक्रमश्च न ॥
पौर्वापर्यं हि भावाना सर्वत्रातिप्रसक्तिमत ॥ ३५ ॥

कुर्वद्रूपविशेषे च न प्रवृत्तिर्न वाऽनुमा ॥
अनिश्चयान्न वाऽध्यक्ष तथाचोदयतो जगौ ॥ ३६ ॥

अर्थ—जेम एक द्रव्यनो सापेक्षपणे एक भाव नथी, माटे वासनानु संक्रमण न थाय अने भावनु पूर्वापरपणु सर्वत्र शक्तिरूपे परिणमे छे ॥ ३५ ॥ रूप विशेष करता छता प्रवृत्ति करवी अथवा वारवी ते तो नहीं, पण क्षणिक मतवालाए तो अनिश्चयथकी आत्माने उदयथी क्षणिकपणु कह्यु छे ॥ ३६ ॥

न वैजात्य विना तत् स्यान्न तस्मिन्ननुमा भवेत् ॥
विना तेन न तत्सिद्धिर्नाध्यक्ष निश्चय विना ॥३७॥

एकताप्रत्यभिज्ञान क्षणिकत्व च बाधते ॥
योऽहमन्वभव सोऽह स्मरामीत्यवधारणात् ॥३८॥

अर्थ.—विजाति विना ते न होय, एमा काई अनुमान घटतु नथी, केमके ते विना तेनी सिद्धि पण नथी. निश्चय विना

अर्थ —बुद्धिनी सिद्धिने अर्थे आत्मा चिद्रूप छे, वली चैतन्य छे, तो पण निश्चय सहित अविच्छेदपणे ते बुद्धिनी जे सिद्धि ते अविषयी छे ॥ ४७ ॥ हतुने करी आत्माने प्रकृति अर्थन विष इंद्रियोना निवृत्तिपणानो दीठा–अणदीठाना विभागथी प्रसंग घटतो नथी ॥ ४८ ॥

स्वप्ने व्याघ्रादिसंकल्पान्नरत्वानभिमानत॰ ॥
अहंकारश्च नियतव्यापार॰ परिकल्प्यते ॥ ४९ ॥
तन्मात्रादिक्रमस्तस्मात्प्रपंचोत्पत्तिहेतवे ॥
इत्थंबुद्धिर्जगत्कर्त्री पुरुषो न विकारभाक् ॥ ५० ॥

अर्थ॰—जेम स्वप्नं विषे व्याघ्रादिकना संकल्पथी अने पुरुषार्थना निरभिमानथी अहंकारने निश्चये व्यापाररूप कल्पिये छीये ॥ ४९ ॥ ते प्रपंचनी उत्पत्तिना हतुने अर्थे तन्मात्रादिकनो क्रम छे ए रीते जगतनी करनारी बुद्धि ठरे छे, माटे विकारनो भजनार आत्मा नथी ॥ ५० ॥

पुरुषार्थोपरागो द्वौ व्यापारांशेन एव च ॥
अत्रांशो वेदम्यहं वस्तु करोमीति च धीस्तत ॥५१॥
चेतनोऽहं करोमीति बुद्धेर्मदाग्रहात्स्मय ॥
एतन्नाशेऽनवच्छिन्नं चैतन्यं मोक्ष इष्यते ॥ ५२ ॥

अर्थ॰—मर्ने प्रवृत्ति व्यापारने विषे एक पुरुषार्थ अने बीजो उपराग ए बे व्यापार भले छे ते बारे हुं अंशे जाणु छुं, हुं वस्तु करु छु एवी कदाग्रही बुद्धि थाय छे ॥ ५१ ॥ हुं चेतन छुं, हुं करु छु एवो गर्व बुद्धिना हतुथी प्रगटे छे एवा गर्वनो नाश करी स्वभावे रह्यु चैतन्यपणु मुक्तिने पामे छे ॥५२॥

कर्तृबुद्धिगते दुःखसुखे पुस्युपचारतः ॥
नरनाथे यथा भृत्यगतौ जयपराजयौ ॥ ५३ ॥

कर्ता भोक्ता च नो तस्मादात्मा नित्यो निरंजनः ॥
अध्यात्मादन्यथाबुद्धिस्तदा चोक्त महात्मना ॥५४॥

अर्थ—आत्माने विषे दुःख-सुख पामवुं, एहनी कर्ता-पणानी बुद्धि जे थाय छे ते उपचारथी छे जेम सेवकनो जय अथवा पराजय ते राजा होवाथी जणाय छे ॥ ५३ ॥ इत्यादिक माटे आत्मा कर्ता भोक्ता नथी पण नित्य निरंजन छे, अने जे बुद्धि छे ते तो अध्यात्मथी जुदी छे एवुं महात्मा कपिल मुनिए कहेलुं छे ॥ ५४ ॥

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वथा ॥
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥ ५५ ॥

विचार्यमाण नो चारु तदेतदपि दर्शन ॥
प्रकृतिचैतन्ययोर्व्यक्त सामानाधिकरण्यतः ॥ ५६ ॥

अर्थः—प्रकृतिना गुणे करी क्रियमाण जे कर्म तेनो हुं कर्ता छु, एम सर्व प्रकारे अहंकारे मूढ आत्मा माने छे ॥ ५५ ॥ एवो विचार करेथी ए दर्शन पण रुडु नथी, केमके प्रगट बुद्धि प्रकृति अने चैतन्यनो सामानाधिकरणे विचार करता रुडु नथी जणातु ॥ ५६ ॥

बुद्धिः कर्त्री च भोक्त्री च नित्या चेन्नास्ति निर्वृत्तिः ॥
अनित्या चेन्न संसारः प्राग्धर्मादेरयोगतः ॥५७॥

प्रकृतावेव धर्मादिस्वीकारे बुद्धिरेव का ॥
सुवचश्च घटादौ स्यादीदृग्धर्म्मान्वयस्तथा ॥ ५८ ॥

अर्थ.—एठी तमे जो कर्त्ता, भोक्तापणे बुद्धि मानशो, पण जो ते बुद्धि नित्य छे तो मोक्ष नथी एटले मोक्ष ठरशे नहीं, अने जो बुद्धिने अनित्य मानशो तो पूर्व धर्मना अयोग्य थकी समार ठरशे नही ॥ ५७ ॥ प्रकृतिने विष धर्मादिकने अगीकार कीधाथी बुद्धिने शु कहवी जोइये ? अने घटादिकने विष एवा धर्मनो अन्वय ते सुखे कहवो इति तर्कवाद ॥५८॥

कृतिभोगौ च बुद्धेश्चेद्बन्धो मोक्षश्च नात्मन' ॥
ततश्चात्मानमुद्दिश्य कूटमेतयदुच्यते ॥ ५९ ॥

पञ्चविंशतितत्त्वज्ञो यत्रतत्राश्रमे रत ॥
जटी मुंडी शिखी चापि मुच्यते नात्र सशय'॥६०॥

अर्थ —जो करवु, भोगववु बुद्धिने छे तो बंधमोक्ष आत्माने नथी, ते पण बुद्धिनेज जोइए, माटे आत्माने उद्देशीने नहीं समजवामा आवे तेने कूटवचन कपिल कह छे॥ ५९ ॥ पच विशतत्त्वनो जाण जे पुरुष छे ते कोई पण आश्रममा रत होय एटले जटाधर होय, अथवा मुडावे, अथवा चोटी रखावे, तो पण ते सदेह विना समारथी मुकाय एवु कपिल मतवाला कह छे ॥ ६० ॥

एतस्य चोपचारत्वे मोक्षशास्त्र वृथाऽखिल ॥
अन्यस्य हि विमोक्षार्थे न कोऽप्यन्य' प्रवर्तते ॥६१॥

कपिलाना मते तस्मादस्मिन्नैवोचित' रति ॥
यत्रानुभवससिद्ध कर्त्ता भोक्ता च लुप्यते ॥६२॥

अर्थ —ए रीते ए आत्माने विषे मोक्षने उपचारिपणे अगीकार करे छे, तेनुं सकल मोक्षशास्त्र फोगट थाय छे, केमके

कांईने मोक्ष आपवा कोइ बीजो प्रवृत्त थाय नहीं ॥ ६१ ॥
जिहा अनुभवसिद्ध आत्मानु कर्तापणुं तथा भोक्तापणु लोपे छे
एटले मानता नथी, ते माटे एहवा कपिलना मतमा प्रीति करवी
ते ठीक नथी ॥ ६२ ॥

नास्तिनिर्वाणमित्याहुरात्मनः केऽप्यबंधतः ॥
प्राक् पश्चाद्युगपद्वापि कर्म्मबंधाव्यवस्थितेः ॥ ६३ ॥

अनादिर्यदि संबंध इष्यते जीवकर्मणो ॥
तदानंत्यान्न मोक्षः स्यात्तदात्माकाशयोगवत् ॥ ६४ ॥

अर्थः—केटलाक अबंध मतवाला छे ते एम कहे छे के-
आत्माने मोक्ष-निर्वाण नथी, केमके प्रथम के अथवा पछी सम-
काले आत्माने कर्मबंध नथी, तो मुक्ति शेनी होय ? ॥ ६३ ॥
जो जीवने तथा कर्मने अनादि संबंध मानिये तो आदि नही,
तिहा अंत पण केम थाय ? माटे अनंतपणाना प्रसंगथी कोई
काले मोक्ष न थाय, जेम आत्माथकी आकाश योग कदापि
भिन्न न थाय ॥ ६४ ॥

तदेतदत्यसंबद्ध यन्मिथो हेतुकार्ययो. ॥
संतानानादिता बीजांकुरवत् देहकर्मणो. ॥ ६५ ॥

कर्त्ता कर्मान्वितो देहे जीवः कर्मणि देहयुक् ॥
क्रियाफलोपभुक्तत्वे दंडान्वितकुलालवत् ॥ ६६ ॥

अर्थ·—एहवु बोले छे, ए वचन पण जूठु छे, केमके
कारण कार्यने माहोमाह संबंध छे-जेम पुत्र पौत्रादिकनो अनादि
संबंध थाय छे ते बीजना अंकुरानी पेरे छे, तेमज शरीर तथा
कर्मनो पण अनादि संबंध छे ॥ ६५ ॥ कर्म सहित जीव कर्त्ता-

पणे देहमा रह्यो छे, एतु जे कह छे ते पण जूठु छे, जेम दढ सहित कुमारनी पर क्रियानु फल भोगवे ते पण असनध छे तेनी परे ॥ ६६ ॥

अनादिसततेर्नाशः स्याद्वीजाकुरयोरिव ॥
कुक्कुटाडकयाः स्वर्णमलयोरिव वानयो. ॥ ६७ ॥

भव्येपु च व्यवस्येय सबधो जीवकर्मणो ॥
अनाद्यनतोऽभव्याना स्यादात्माकाशयोगवत्॥६८॥

अर्थ —तम कहो छो के अनादि सतति नाश न थाय तेनो तो नाश थतो देखीये छीय, जेम बीज नाश्य अकुर न थाय अने अकुरा नाश थय बीज नहीं थाय कुकडी नाश थये इडु नाश पाम अने इडानो नाश थये कुकडी नाश पाम वळी अनादिनो सुवर्णथी मल जुदो थाय छे तेम आत्माथकी कर्म जुदा थाय छे ॥ ६७ ॥ ए रीत अनादि सतति जीवकर्मनो जे सबध ते नाश थाय छे ते भव्य जीवो आश्रयी छे अने जेहने अनादि सतति टलती नथी त अभव्य जीवो आश्रयी छे आत्मा तो आकाशना योगनी पर छे ॥ ६८ ॥

द्रव्यभावे समानेऽपि जीवाजीवत्वभेदवत् ॥
जीवभावे समानेऽपि भव्याभव्यत्वयोर्भिदा ॥६९॥

स्वाभाविक च भव्यत्व कलशप्रागभाववत् ॥
नाशकारणसाम्राज्याद्विनश्यन्न विरुध्यते ॥ ७० ॥

अर्थ —जेम द्रव्यनी रीते तो सर्वद्रव्य एकद्रव्यपणे तुल्य छे, पण त द्रव्यमा भेद करीए तो जीव अजीव ए बे थाय, तेमज जीवपणे तो सर्व जीव सरिखा छे, पण भेद करता भव्य

तथा अभव्य ए बे भेद थाय छे ॥ ६९ ॥ जेम घट उत्पत्ति पहेला माटी द्रव्य स्वाभाविकपणे छे अने माटीना नाशथी घट प्रगटे छे ते विरुद्ध नथी तेम स्वाभाविक भव्यपणे कर्मनी अनादि संततिना नाशरूप कारणना सामर्थ्यथी परमात्मापणु प्रगटे ते पण विरुद्ध नथी ॥ ७० ॥

भव्योच्छेदो न चैव स्याद्गुर्वानत्यान्नभोंशवत् ॥
प्रतिमादलवत् क्वापि फलभावेऽपि योग्यता ॥ ७१ ॥
नैतद्भव्य वदामो यद्भव्य सर्वोऽपि सिध्यति ॥
यस्तु सिध्यति सोऽवश्य भव्य एवेति नो मत ॥७२॥

अर्थः—ए रीते भव्यपणानो उच्छेद न थाय, मोटा अनतपणाथकी आकाशना अशनी परे घट आवे आकाश पण आवु अने घट भागे आकाश खड थयो, पण आकाश काई वध्यु नही, तेम कर्मना नाशथकी आत्मा अधिक थतो नथी. जेम कोई ठेकाणे प्रतिमाना दलनी पेरे. प्रतिमादल पाषाणथी बिंबरूप फल उपजे तेम मोक्षनु उपजवु थाय ॥ ७१ ॥ अमे एम कहेता नथी के सघला भव्य जीवो सिद्धि पाम, पण जे सिद्धि वरे तने निश्चय भव्य कहीए ए अमारो मत छे ॥ ७२ ॥

ननु मोक्षेऽपि जन्यत्वाद्विनाशिनी भवस्थितिः ॥
नैव प्रध्वसवत्तस्यानिधनत्वव्यवस्थितेः ॥ ७३ ॥
आकाशस्येव वैविक्त्या मुद्गरादेर्घटक्षये ॥
ज्ञानादेः कर्मणो नाशे नात्मनो जायतेऽधिक ॥७४॥

अर्थः—मोक्षने विषे प्रगटथवापणु नथी अने भवनी स्थिति नाशवती छे, पण मोक्षमा अनतपणानी स्थिति छे.

माटे मुक्तिनो नाश नथी ॥ ७३ ॥ जेम मोगरे करी घडो भाग्यो, अने घडाने क्षये आकाश जुदु थयु, पण वध्यु नही तेम ज्ञानथी कर्मनो नाश थाय, पण आत्मा अधिक थाय नहीं ॥ ७४ ॥

न च कर्माणुसबधान्मुक्तस्यापि न मुक्तता ॥
योगाना बधहेतूनामपुनर्भवसभवात् ॥ ७५ ॥
सुखस्य तारतम्येन प्रकर्षस्यापि सभवात् ॥
अनतसुखसवित्तिर्मोक्ष. सिध्यति निर्भय ॥ ७६ ॥

अर्थ.—जिहा मूलथीज कर्मपरमाणुनो सबध नथी, अने जे मुकाणा तने काइ मुकावापणु नथी तथा मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग ए चार बधहतुना योग छे, तेनु फरी थवापणु नथी, तेहने सिद्धि कहिये ॥ ७५ ॥ सुखनु तारतम्य तथा ज्ञाननी उत्कृष्टता प्रगट थयेथी एटले अनत सुख जाणवाथी निर्भयपणे जे सिद्धि तेनु नाम मोक्ष छे एम कहीये ॥ ७६ ॥

वचन नास्तिकाभाना मात्मसत्तानिषेधकम् ॥
आताना तेन नादेय परमार्थगवेषिणा ॥ ७७ ॥
न मोक्षोपाय इत्याहुरपरेनास्तिकोपमाः ॥
कार्यमस्ति न हेतुश्चेत्येषा तेषा कदर्थना ॥ ७८ ॥

अर्थ.—माटे नास्तिक मतवालाना वचन आत्मसत्ताना निषधक छे, ते भ्रम चित्तवालाये आदरवा नही अथवा नास्तिक मतवालाना भयना वचन छे, एम जाणी आदरवा नही. जे परमार्थनो गवेषक होय तेणे छाडवा ॥ ७७ ॥ हवे वली बीजा नास्तिक मतने मलताज मतवाला छे. तेनु कहवु एम छे के मोक्षनो उपाय नथी एटले कार्य जे मोक्ष ते तो छे, पण तेनु कारण जे उपाय ते नथी. एम माने छे तेमने पण विटमना छे॥ ७८॥

अकस्मादेव भवतीत्यलीकं नियतावधेः ॥
कदाचित्कस्य दृष्टत्वाद्भावे तार्किकोऽप्यदः॥७९॥
हेतुभूतनिषेधाना स्वानुपाख्यविधिर्न च ॥
स्वभाववर्णना नैवमवधेर्नियतत्वतः ॥ ८० ॥

अर्थः—कोइक तो अणचिंतव्यो अकस्मात् मोक्ष थाय छे एम कहे छे ए पण जूठुं छे. नियत अवधिमर्यादाज छे. जे माटीना पिंडथी घट निपजे छे, ते कदाचित् दीठुं छे तेहने तार्किकशास्त्रवाला कहे छे जे अमुक वखतमाज पूरु थाशे एवो काई नियम नथी ॥ ७९ ॥ हेतुभूत मोक्षनो निषेध नथी पोतानो अनुपकथनीय एटले पोताने बोलवु नही एहवो जे विधि ते पण नथी, अने स्वभाव वर्णन करवु, स्तुति करवी ते नथी; केमके ए सर्वनी अवधि छे. एटले अवधिएज मोक्ष थाशे, ते माटे मोक्षनु साधन करवु ते जूठ छे, एम कहे छे ॥ ८० ॥

न च सार्वत्रिको मोक्षः ससारस्यापि दर्शनात् ॥
न चेदानी न तद्व्यक्तिर्व्यञ्जको हेतुरेव यत् ॥ ८१ ॥
मोक्षोपायोऽस्तु किं त्वस्य निश्चयो नेति चेन्मत ॥
तत्र रत्नत्रयस्यैव तथाभावविनिश्चयात् ॥ ८२ ॥

अर्थः—सर्वत्रमोक्ष नथी, केमके जे हमणा नथी तेनी प्रगटता पण नथी, अने ससार तो प्रत्यक्ष देखाय छे, माटे जेहनो जे हेतु छे तेज प्रगट नथी, तो तेहनो सशय छे ॥८१॥ मोक्षनो उपाय छे किंवा नथी ? ए वातनो निश्चय नथी, माटे ए मत पण जूठो छे मोक्षनो हेतु तो रत्नत्रयनी परे, तेमज भावे निश्चयथी जाणिये ॥ ८२ ॥

भवकारणरागादिप्रतिपक्षमदः खलु ॥
तद्विपक्षस्य मोक्षस्य कारण घटतेतरा ॥ ८३ ॥
अथ रत्नत्रयप्राप्तेः प्राक्कर्मलघुता यथा ॥
परतोऽपि तथैव स्यादिति कि तदपेक्षया ॥ ८४ ॥

अर्थ —रत्नत्रयी जे छे ते समारनु कारण जे रागादिक तेहना शत्रु छे, अने मसारूप कार्यनो शत्रु मोक्ष छे, माटे मोक्षनु कारण जे उपाय, ते घटे छे, ॥ ८३ ॥ केमके रत्नत्रयनी प्राप्ति थयाथकी पूर्वभवना कर्मनी जेवी लघुता थाय तो बीजाथकी पण तेमज थाय, ए अपेक्षाये जो अवधि नथी तोपण शु थयुं ? ॥ ८४ ॥

नैव यत्पूर्वसेवातो मृद्वीतो साधनक्रिया ॥
सम्यक्त्वादिक्रिया तस्माद् दृढैव शिवसाधने ॥८५॥
गुणाः प्रादुर्भवत्युच्चैरथवा कर्मलाघवात् ॥
तथाभव्यतया तेषा कुतोऽपेक्षानिवारण ॥ ८६ ॥

अर्थ —जे पूर्वसेवाथकी ते घचनाघोलनारूपथी, रुजुताथी, साघनक्रियामदरूप तेवी न होय, माटे समकितादिकक्रिया ते मोक्षसाधनमा दृढ छे ॥ ८५ ॥ अथवा कर्मना लघुतापणाथकी मोटा जे गुण ते प्रगट थाय छे, ते प्रकारे तेनो भव्यतापणे करीने मोक्ष छे, पण मोक्षनी अपेक्षा वारी नथी ॥ ८६ ॥

तथाभव्यतयाक्षेपाद्गुणा न च न हेतव ॥
अन्योऽन्यसहकारित्वाद् दण्डचक्रभ्रमादिवत् ॥८७॥
ज्ञानदर्शनचारित्राण्युपायास्तद्भवक्षये ॥
एतन्निषेधक वाक्य त्याज्य मिथ्यात्ववृद्धिकृत् ॥८८॥

अर्थः—तेम भव्यपणाना तिरस्कारथकी पुनर्हेतुभूत

गुण न होय, केमके परस्पर सहकारी छे माटे दड, चक्र, भ्रमणनी पेरे भव्यतापणे ज्ञानादिक गुण प्रगट थाय ते गुण मोक्षनो हेतु छे, ए उत्तर कह्यो छे ॥ ८७ ॥ माटे ससारना क्षयरूप जे उपाय ते ज्ञान, दर्शन अने चारित्र छे. तेनो जे निषेध करे अने मिथ्यात्वनी वृद्धि करे तेनु वचन त्याग करवु ॥ ८८ ॥

मिथ्यात्वस्य पदान्येतान्युत्सृज्योत्तमधीधनः ॥
भावयेत्प्रातिलोम्येन सम्यक्त्वस्य पदानि षट् ॥ ८९ ॥

अर्थः—ए पूर्वे कह्या जे सर्व शास्त्रना मतवाद ते मिथ्यातना ठेकाणा छे तेने छांडीने बुद्धिरूप धननु ग्रहण करीने मिथ्यात्वने प्रतिकूलपणे जे समकितना छ पद छे तेने भाववा ॥ ८९॥

इति मिथ्यात्वत्यागाधिकारः त्रयोदशः समाप्तः ॥



कदाग्रहत्यागाधिकार–

मिथ्यात्वदावानलनीरवाह–
सदग्रहत्यागमुदाहरति ॥
अतो रतिस्तत्र बुधैर्विधेया,
विशुद्धभावैः श्रुतसारवद्भिः ॥ १ ॥

अर्थः—मिथ्यात्वरूप जे दावानल तेने शमाववाने मेघ समान एवा मिथ्यात्व कदाग्रहरूप प्रसारनो त्याग पंडिते कह्यो छे जे कदाग्रहना त्यागने विषे रति करवी ते तो जे पंडित होय, वली शुद्ध भाववालो होय अने सिद्धांतना सारनो जाण होय तेणे कदाग्रहने छांडवो ॥ १ ॥

असद् ग्रहाग्निज्वलितं यदन्तः,
क तत्र तत्त्वव्यवसायवल्लिः ॥
प्रशान्तिपुष्पाणि हितोपदेश–
फलानि चान्यत्र गवेषयतु ॥ २ ॥

अर्थ —जेनुं अंतःकरण अछता पदार्थना कदाग्रहरूप अग्निये बल्युं छे तेना हृदयमां तत्त्व–व्यापाररूप वेली केम करी ऊगे ? अने समतारूप फूल केम फूटे ? तथा हित उपदेशरूप फल क्याथी होय ? ते माटे कदाग्रहने तजीने बीजे ठेकाणे तत्त्वनी खोज करवी ॥ २ ॥

अधीत्य किंचिच्च निशम्य किंचिद्–
सदग्रहात्पंडितमानिनो ये ॥
मुखं मुखं चुंबितमस्तु वाचो,
लीलारहस्य तु न तैर्जगाहे ॥ ३ ॥

अर्थः—काइक भणीने तथा काइक शास्त्र सामळीने आत्माने पंडितपणुं मानता एवा मूर्ख कदाग्रहना धरनार ते पोतानु मुखचुंबित जे शास्त्र तेने सुख माने, पण ते सुखे करी लीलारूप रहस्य जे ज्ञान ते अवगाहे नहीं ॥ ३ ॥

असद्ग्रहोत्सर्पदतुच्छदर्प-
र्वोधाशताधीकृतमुग्धलोकैः ॥
विडंविता हंत जडैर्वितंडा-
पांडित्यकंडूलतया त्रिलोकी ॥ ४ ॥

अर्थः—जेने कदाग्रहथकी घणो गर्व वध्यो छे, अने स्वकल्पित ज्ञानने अंधे करी भविक जीवोने जेणे आंधळा कीधा छे, एहवा जड प्राणीये पंडिताइनी खरजे करीने हंत इति खेदे पादप्रहारेयकी त्रण लोकने वितंडा कहेता डाकडमालें विटंबना करी छे ॥ ४ ॥

विधोर्विवेकस्य न यत्र दृष्टि-
स्तमोघनं तत्त्वरविर्विलीनः ॥
अशुक्लपक्ष स्थितिरेव नूनम-
सद्ग्रहास्थूलमतिर्मनुष्यः ॥ ५ ॥

अर्थः—जेना हृदयमा विवेकरूप चंद्रनी दृष्टि नथी तेथी घणो अंधकार छे, अने तत्त्वरूप सूर्य अस्त पाम्यो छे तेथी ते कृष्णपक्षनी निशावत् स्थितिमां छे, केमके तेने कदाग्रहे छल्यो छे ॥ ५ ॥

कुतर्कदात्रेण लुनाति तत्त्ववल्ली-
रसान्सिंचति दोषवृक्ष ॥

क्षिपत्यधः स्वादुफल समाख्य-
मसद्ग्रह. कोऽपि कुट्टविलास ॥ ६ ॥

अर्थः—जे कदाग्रही छे ते कुविचाररूप दातरडे करी तत्त्वरूप वेलीने छेदे छे, अने पापरूप वृक्षने पाणी पाय छे, तथा समतारूप अमृत फलने हेठु धूळमा नाखे छे, एवो कोई कदाग्रहरूप अमावास्यानी रात्रीनो विलास छे ॥ ६ ॥

असद्ग्रहग्रावमये हि चित्ते,
न क्वापि सद्भावरसप्रवेश. ॥
इहाकुराश्चित्तविशुद्धबोधः
सिद्धातवाचा बत कोऽपराध. ॥ ७ ॥

अर्थ —त कदाग्रही माणसनु चित्त पथ्थर जेवु छे जेम पथ्थरने पाणी भेदे नही तेम जिनवाणीरूप रस ते कदाग्रही माणसमा प्रवेश कर नही, तेथी तेना चित्तरूप वृक्षमा शुद्ध बोध रूप अंकुर प्रगटे नही, तो तेमा सिद्धातनी वाणीनो शो वाक?॥७॥

व्रतानि चीर्णानि तपोऽपि तप्त,
कृता प्रयत्नेन च पिंडशुद्धिः ॥
अभूत्फल यत्तु न निन्हवानाम-
सद्ग्रहस्यैव हि सोऽपराधः ॥ ८ ॥

अर्थ —जो पचमहाव्रत पाळ्या, उग्र तप कीधा, उद्यम करी बेतालीस दोष रहित आहार लीधो, तेम छता पण जे निह्नवादिक मुक्तिरूप फळ न पाम्या ते अपराध सर्व कदाग्रहनोज छे ॥ ८ ॥

स्याल स्वबुद्धिः सुगुरोश्च दातु-
रुपस्थिता काचन मोदकाली ॥

अमदग्रहः कोऽपि गले ग्रहीता
तथापि भोक्तु न ददाति दुष्ट. ॥ ९ ॥

जर्थः—पोतानी बुद्धिरूप थालमा काइक शुद्ध ज्ञानरूप मोदकने गुरु पीरसता उठ्या, पण कदाग्रहे आवी गळु पकडयु, तेथी जमायु नही, एवो कदाग्रह दुष्ट छे ॥ ९ ॥

गुरुप्रसादीक्रियमाणमर्थ
गृह्णाति नासद्ग्रहवास्ततः किं ? ॥
द्राक्षा हि साक्षादुपनीयमानाः,
क्रमेलकः कटकभुङ् न भुक्ते ॥ १० ॥

अर्थ.—जो गुरु प्रमन्न थइने अर्थ–उपदेश आपे छे, तोपण कदाग्रही पुरुष ते उपदेशने ग्रहतो नथी, तेथी शु थयु ? उपदेश तो काई खोटो नथी. ए तो जेम प्रगटपणे मीठी द्राक्ष उट आगल मुकिये, तोपण तेने तजीने उट काटाने खाय छे॥१०॥

असद्ग्रहात्पामरसगतिं ये,
कुर्वति तेषा न रतिर्बुधेषु ॥
विष्टासु पुष्टाः किल वायसा नो
मिष्टान्ननिष्ठा प्रसभ भवति ॥ ११ ॥

अर्थः—जे प्राणी कदाग्रहे करी मूर्खनी सगत करे छे तेने पडितनी सोबत गमती नथी जेम कागडा विष्ठाभोगी छे, तेने मधुर आहारनी इच्छा थती नथी तेनी पेरे ॥ ११ ॥

नियोजयत्येव मतिं न युक्तौ,
युक्तिं मतौ यः प्रसभ नियुक्ते ॥

असदूग्रहादेव न कस्य हास्यो-
जले घटारोपणमादधानः ॥ १२ ॥

अर्थ.—जेम कोई मूर्ख नदीना जल उपर घडो भरीने मूके, तेने जोईने कोण हसे नहीं? केमके अगाध निर्मल जलना विस्तार आगल एक तुच्छ मात्र जले भरेलो घडो ते शी गण तीमा छे? तेम गुरुना मुखथी शास्त्रयुक्ति सामलीने तेमा पोतानी मति जोडे नही अने पोतानी युक्तिवडे ऊलटु बोले, जे तमारी युक्तिने नमस्कार होवो! एवा कदाग्रहीने देखी कोण हामी न करे? इहा गुरुनो उपदेश ते नदीना जल तुल्य छे तेना आगल कदाग्रही घट केम नीभे? ॥ १२ ॥

असदूग्रहो यस्य गतो न नाश,
न दीयमान श्रुतमस्य शस्यम् ॥
न नाम वैकल्यकलंकितस्य,
प्रौढा प्रदातु घटते नृपश्री ॥ १३ ॥

अर्थ —जेम कोइ घेला आदमीने महोटी राज्यलक्ष्मी आपनी घटे नही, तेम जेहने कदाग्रह गयो नथी तेना प्राणीने धर्मोपदेश आपवो योग्य नथी ॥ १३ ॥

आमे घटे वारि धृत यथा मद्विनाशयेत्तत्र च घट च सत्र ॥
असदूग्रहग्रस्तमतेस्तथैव श्रुतात्प्रदत्तादुभयोर्विनाश. ॥

अर्थ.—जेम काचा घडामा पाणी भरवाथी घडानो तेमज पाणीनो नाश थाय छे, तेमज कदाग्रही माणसन शास्त्र शीखवता शास्त्रनो तेमज तेनो पोतानो बनेनो विनाश थाय छे ॥ १४॥

असदूग्रहग्रस्तमते प्रदत्ते हितोपदेश खलु यो विमूढ. ॥
शुनी शरीरे स महोपकारी कस्तूरिकालेपनमादधाति ॥

अर्थः—जेम विष्टाये भर्युं मुख देखी कुतरीने उपकार करवा कस्तूरीनो लेप करे ते मूर्ख जाणवो, तेम कदाग्रही प्राणीने उपकार करवाने हितोपदेश आपे ते पण मूर्ख जाणवो ॥ १५ ॥

कष्टेन लब्ध विशदागमार्थं ददाति योऽसद्ग्रहदूषिताय।
स खिद्यते यत्नशतोपनीत बीज वपन्नूषरभूमिदेशे१६

अर्थः—जेम घणा उद्यमे अनाजना बीज भेगा करी उखर जमीनमा वावे, ते आगल जता सदाय खेद पामे छे, तेम पंडित प्राणी गुरुनो विनय करी कष्टे करी निर्मल आगम सिद्धांतना अर्थने पाम्यो होय, ते जो कदाग्रहे करी दुषित प्राणीने तेहनो अर्थ शीखववानो उद्योग करे तो तेथी अंते खेद पामे छे ॥ १६ ॥

शृणोति शास्त्राणि गुरोस्तदाज्ञा,
करोति नासद्ग्रहवान् कदाचित् ॥
विवेचकत्व मनुते च सार
ग्राही भुवि स्वस्य च चालनीवत् ॥ १७ ॥

अर्थः—जो गुरु पासेथी शास्त्र सामले तो पण कदाग्रही जे होय ते कोई काले ते गुरुनी आज्ञा न माने. ते पोतानी मेळे पोते एहवुं माने, जे हुं सर्व पदार्थनी बराबर वहेंचण करुं छुं, पण ते तो जेम पृथ्वीमा चालणीमाथी चाळीने सारभूत वस्तु कढाडी लेइने बाकी असार धान्य रहे छे तेहनो ते ग्राही छे ॥ १७ ॥

दम्भाय चातुर्यमघाय शास्त्रं प्रतारणाय प्रतिभापटुत्व॥
गर्वाय धीरत्वमहोगुणानाम सद्ग्रहस्ये विपरीतसृष्टिः

अर्थः—माटे अहो इति आश्चर्य ! विधाताये कदाग्रही

माणसमा विपरीत गुण सुज्या छे ! जेवा देव तेवी पात्री, अने मेघनल सर्पना मुखमा जेम विषतुल्य थइ जाय छे, ए कहेवतने विधाताये खरी पाडी छे, केमके जे कदाग्रहीनी चतुराइ ते कपटने अर्थे थाय, अने शास्त्र भणवु ते मदने अर्थे थाय, तथा बुद्धि, डहापण अने उपदेश ते लोकने ठगवाना साधनने अर्थे थाय अने धैर्यपणु ते गर्व करवाने अर्थे थाय ॥ १८ ॥

असद्ग्रहस्थेन समं समता-
रसौहार्दभृद् खमवैति तादृग् ।
उपैति यादृक्कदली कुवृक्ष-
स्फुटच्छुटत्कण्टककोटिकीर्णा ॥ १९ ॥

अर्थः—जेम कलनु वृक्ष ते कथेरादिक वृक्षने संगे कांटाये करी कोराय छे तेम जे प्राणी कदाग्रही साथे मित्राई करे ते अंते दुःखनो विपाक पामे छे ॥ १९ ॥

विद्या विवेको विनयो विशुद्धिः,
सिद्धान्तवाल्लभ्यमुदारता च ॥
असद्ग्रहाद्यान्ति विनाशमेते,
गुणास्तृणानीव कणाद्दवाग्नेः ॥ २० ॥

अर्थ —जेम अग्निथी घासना समूह भस्मीभूत थाय छे तेम विद्या, विनय, विवेक, विशुद्धि अने सिद्धांत उपर वलभतापणु अने उदारता ए सर्व कदाग्रहथी नाश पामे छे ॥ २० ॥

स्वार्थः प्रियो नो गुणवांस्तु कश्चिन्-
मूढेषु मैत्री न तु तत्त्ववित्सु ॥
असद्ग्रहापादितविभ्रमाणां
स्थितिः किलासावधमाधमाना ॥ २१ ॥

अर्थः—जे कदाग्रहीनी सोबते रह्या तेने स्वार्थ प्रिय छे ते प्राणी अवगुणरत, मूर्ख साथे मित्राई करे अने पंडित साथे मित्राइ करे नही, एवा कदाग्रहीनी सोबते रह्या, जे अधममा अधम नीच प्राणी तेहनी ए स्थिति छे, ते कही ॥ २१ ॥

इद विदस्तत्त्वमुदारबुद्धि-
रसद्ग्रह यस्तृणवज्जहाति ।
लजेव योषिद्-
का दयिता यशःश्री ॥ २२ ॥

ाणीने तत्त्वने ओलखनार मोटी बुद्धि-
तृणखलानी पेठे छाडे, तेने जेम कुलवती
थी तेम गुणरागी एवी जे यश-कीर्ति-
नथी ॥ २२ ॥

ाधिकार चतुर्दश ॥
श्रीयशोविजयगणिविरचिते
प्रकरणे चतुर्थः प्रबधः ॥



योगाधिकार

असद्ग्रहव्ययाद्वांतमिथ्यात्वविषयीमुषः ॥
सम्यक्त्वशालिनोऽध्यात्मशुद्धेर्योगः प्रसिध्यति ॥१॥
कर्मज्ञानविभेदेन स द्विधा तत्र चादिमः ॥
आवश्यकादिविहितः क्रियारूपः प्रकीर्तितः ॥ २ ॥

अर्थः—हवे कदाग्रहना नाशथी मिथ्यात्वरूप अंधकारनो विषय गयो छे जेमाथी एहवा समकिते करी उज्ज्वल अतःकरण थया छे जेहना एहा जे प्राणी तेमने अध्यात्मनी शुद्धियकी योग प्रसिद्ध रीते प्रगटे॥ १ ॥ ते योगना बे भेद छे एक कर्मयोग अने बीजो ज्ञानयोग तेमा कर्मयोग ते आवश्यकादिक जे क्रिया करवी ते रूप कह्यो छे ॥ २ ॥

शारीरस्पंदकर्मात्मा यदयं पुण्यलक्षणः ॥
कर्मातनोति सद्रागात्कर्मयोगस्ततः स्मृतः ॥ ३ ॥
आवश्यकादिरागेण वात्सल्याद्भगवद्गिरा ॥
प्राप्नोति स्वर्गसौख्यानि न याति परमं पदं ॥ ४ ॥

अर्थ —शरीरचेष्टारूप ते कर्मात्मा कहिये, ए योग पुण्य रूप छे ते रूडा भोग थकी कर्मने निस्तारे छे ते माटे एने कर्मयोग कहिये ॥ ३ ॥ आवश्यकादिक क्रियाने रागे तथा जिनवाणीने विलासे करीने स्वर्गना सुखने पामे, पण ए योगे मुक्तिपदने न पामे ॥ ४ ॥

ज्ञानयोगस्तपः शुद्धमात्मरत्येकलक्षणः ॥
इंद्रियार्थोन्मनीभावात्स मोक्षसुखसाधकः ॥ ५ ॥
न परप्रतिबंधोऽस्मिन्नल्पोऽप्येकात्मवेदनात् ॥
शुभं कर्मापि नैवात्र व्याक्षेपायोपजायते ॥ ६ ॥

अर्थः—बीजो ज्ञानयोग तेहने कहिये, जे तप शुद्धिपणे आत्माने विषे रति पामे, ते एक लक्षण अने इंद्रियोना विषयथी दूर रहेवु ते बीजु, एवा लक्षणे युक्त जे योग तेने पामेलो पुरुष ते मोक्षसुखने साधे ॥ ५ ॥ एक आत्मज्ञानयोगना ज्ञानमा बीजो प्रतिबंध नथी, अने जे कर्मथी मोक्षमा जता वार लागे ते शुभ कर्म पण नथी ॥ ६ ॥

न ह्यप्रमत्तसाधूना क्रियाप्यावश्यकादिका ॥
नियता ध्यानशुद्धत्वाद्यदन्यैरप्यदः स्मृत ॥ ७ ॥
यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ॥
आत्मन्येव च सतुष्टस्तस्य कार्य न विद्यते ॥ ८ ॥

अर्थः—अप्रमत्तसाधुने आवश्यक प्रमुख जे क्रिया तेने पण करवाने विषे प्रतिबंध नथी, केमके तेने ध्यानरूप शुद्धि छे; माटे ॥ ७ ॥ वलि अन्य दर्शनमा पण श्रीकृष्ण कहे छे के–हे अर्जुन ! जे आत्मसुखमा तृप्त छे तेने आत्माने विषे ज रति छे, अने सतोष छे जे आत्म सुखमा सतुष्ट छे, एवो जे जीव तेने काई पण कर्तव्य नथी ॥ ८ ॥

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ॥
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥ ९ ॥
अवकाशो निषिद्धोऽस्मिन्नरत्यानदयोरपि ॥
ध्यानावष्टभतः क्वास्तु तत्क्रियाणा विकल्पन ॥१०॥

अर्थः—ते प्राणीने कार्य करवे अर्थ नथी, तेमज न करवाथी खोट पण नथी, तेने सर्व भूतने विषे काई प्रयोजन नथी ॥ ९ ॥ ए ठेकाणे अरतिनो अने आनदनो अवकाश नथी, केमके ध्याननी स्थिरताथी ते क्रियानो विकल्प पण केम होय ? ॥ १० ॥

देहनिर्वाहमात्रार्था याऽपि भिक्षाटनादिका ॥
क्रिया सा ज्ञानिनोऽसगान्नैव ध्यानविघातिनी ॥११॥
रत्नशिक्षादृगन्या हि तन्नियोजनदृग्यथा ॥
फलभेदात्तथाचारक्रियाप्यस्य विभिद्यते ॥ १२ ॥

अर्थः—देह-निर्वाहरूपे मुनिने गोचरी प्रमुख जे क्रिया ते क्रिया ज्ञानीना असगानुष्ठानथी ध्यानमा विघ्न कर नहीं ॥ ११ ॥ रत्नमाणिक्यपरीक्षाना ग्रथ जुदा अने नजर-परीक्षा पण जुदी. ग्रथ भणीने जेम नजर-परीक्षामा फलभेदथी प्रवर्त्ते छे, तेम आचारक्रिया पण फलभेदे करी भिन्न भिन्न छे, एटले भेदवती छे ॥ १२ ॥

ध्यानार्था हि क्रिया सेय प्रत्याहृत्य निज मन ॥
प्रारब्धजन्मसकल्पादात्मज्ञानाय कल्पते ॥१३॥
स्थिरीभूतमपि स्वात रजसा चलता व्रजेत् ॥
प्रत्याहृत्य निगृह्णाति ज्ञानी यदिदमुच्यते ॥१४॥

अर्थ.—जो पोताना मनने पाछु वाळीने जन्मसकल्पथी माडीने आत्मज्ञान भणी कल्पिये तो ते क्रिया ध्यानरूप छे।१३॥ स्थिर थयेलु जे मन ते पण रजोगुणे करी चपलताने पाम तहने पाछु वाली तनो निग्रह करे तेने ज्ञानी कहवो ॥ १४ ॥

शनैं शनैंरुपशमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ॥
आत्मसस्य मन कृत्वा न किंचिदपि चिंतयेत् ।१५
यतो यतो नि.सरति मनश्चचलमस्थिर ॥
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वश नयेत् ॥ १६ ॥

अर्थ.—हे अर्जुन ! मनने धीरे धीरे धीरजवडे अने बुद्धिवडे स्थिर करवु, पछी ते मन जेवारे आत्माना स्वरूपने

विषे जाय तेवारे काइ वीजुं चितन करवानी जरूर नथी ॥ १५ ॥ मन चचल ने अस्थिर छे तेने ज्या ज्या जाय त्या त्यांथी पाछुं वाळीने आत्मानी साथे वश करी राखवुं ॥ १६ ॥

अत एवाद्दढस्वात' कुर्याच्छास्त्रादिना क्रिया ॥
सकला विपयप्रत्याहरणाय महामतिः ॥ १७ ॥
श्रुत्वा पैशाचिकी वार्त्ता कुलवध्वाश्च रक्षण ॥
नित्य सयमयोगेपु व्यापृतात्मा भवेद्यतिः ॥ १८ ॥

अर्थः—एम परदर्शनमा पण कह्यु छे, माटे ज्या सुधी मन स्थिर न होय त्या सुधी शास्त्रोक्त क्रिया जेटली करिये तेटली सर्व सफल न थाय. जेवारे विपयत्याग थाय तेवारज सफल थाय, माटे जे प्राणी मनने विपयथी वाळवामा उजमाल रह ते महामतिवाळा जाणवा ॥ १७ ॥ जेम एक शेठनो पुत्र देशातर गयो तेना घरनी मामेना एक वृक्ष उपर एक भूत रहेतो हतो ते छल पामी, पुत्रनु रूप धारण करी तेनी स्त्री साथे लागु पड्यो एम करता ते शेठनो दीकरो पोताने घरे आव्यो तेवारे घरमा लडाई चालवा लागी पछी राजदरवार इन्साफने वास्ते गया तिहाथी भूतने घरमाथी काढवानु ठर्युं, पण ते नीकल्यो नहीं ने कहेवा लाग्यो के हु जवानो नथी, हु पण पुत्र छु. ए वात साभळी वहुने लाज लागी छेल्ले शेठने भूतने वैरी साथे युद्ध करवानु काम भळाव्यु, अने वहुने घरनो धधो भळाव्यो, ए रीते अनाचार टाल्यो अने वहुने राखी, तेम मुनिये पण निरतर सयमना योगे आत्माने राखवो ॥ १८ ॥

या निश्चयैकलीनाना क्रिया नातिप्रयोजनाः ॥
व्यवहारदशास्थाना ता एवातिगुणावहा. ॥ १९ ॥

कर्मणोऽपि हि शुद्धस्य श्रद्धामेधादियोगत. ॥
अक्षत मुक्तिहेतुत्व ज्ञानयोगानतिक्रमात् ॥ २० ॥

अर्थ—जेनु मन निश्चयमा लीन छे तेने क्रियानु प्रयोजन नथी व्यवहारदशावालाने क्रिया ते अतिगुणकारी छे ॥ १९ ॥ शुभ कर्मथी अने श्रद्धाबुद्धिना योगथी अखडपणे जे ज्ञानयोगने उलघे नहीं तो तेने मुक्तिनो हेतु प्रगट थाय ॥२०॥

अभ्यासे सत्क्रियापेक्षा योगिना चित्तशुद्धये ॥
ज्ञानपाके शमस्यैव यत्परैरप्यद. स्मृत ॥ २१ ॥
आरुरुक्षो र्मुनेर्योग कर्मकारणमुच्यते ॥
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥ २२ ॥

अर्थ—जे रुडी क्रियानी अपेक्षाये अभ्यास करे छे ते योगीश्वरने चित्तशुद्धिने अर्थ ज्ञान परिपक्व करवाने उपशम कह्यु छे एम अन्य दर्शनीओ पण कहे छे ॥ २१ ॥ हे अर्जुन ! योग पामवाने इच्छता जे योगी छे तेहने कर्म तो एक कारण छे जेवार सर्व सकल्प शमी जाय तेवार तेने ज्ञानयोगी कहिये ते माटे ज्ञानारूढने समता तज कारण छे ॥ २२ ॥

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुपज्यते ॥
सर्वसकल्पसन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥ २३ ॥
ज्ञान क्रियाविहीन न क्रिया वा ज्ञानवर्जिता ॥
गुणप्रधानभावेन दशाभेद किलैतयो· ॥ २४ ॥

अर्थ—जेवार विषयथी विरम, कर्मने विषे मलग्न न थाय, जेवार सर्व सकल्प शमी जाय तवारे तेहने योगारूढ कहिये ॥ २३ ॥ क्रिया विना ज्ञान नथी, अने ज्ञान विना क्रिया नथी.

ए बेमा क्रिया ते गौण छे अने ज्ञान ते मुख्य छे, एवो ए बेनो दिशीभेद कह्यो छे ॥ २४ ॥

ज्ञानिना कर्मयोगेन चित्तशुद्धिमुपेयुषा ॥
निरवद्यप्रवृत्तीना ज्ञानयोगौचिती ततः ॥ २५ ॥
अत एव हि सुश्रद्धाचरणस्पर्शनोत्तरम् ॥
दुःपालश्रमणाचारग्रहण विहित्त जिनैः ॥ २६ ॥

अर्थः—कर्मयोगे करीने मनशुद्धि पामेला अने निर्दोष विहारी एहवा जे ज्ञानी तेने ज्ञानयोग मुख्यपणे सेववो उचित छे एवो वीतरागनो मत छे. ॥ २५ ॥ ए माटे रुडी श्रद्धायें देश-विरतिरूप चारित्रनो स्पर्श कीधा पछी दु खे पाली शकियें एवा मुनिनो आचार जे सर्वविरतिपणु छे ते लेवो एटले प्रभुयें पछी सयम लेवु कह्यु छे ॥ २६ ॥

एकोद्देशेन सवृत्त कर्म यत्पौर्वभूमिक ॥
दोषोच्छेदकर तत्स्याद्ज्ञानयोगप्रवृद्धये ॥ २७ ॥
अज्ञानिना तु यत्कर्म न ततश्चित्तशोधन ॥
योगादेरतथाभावान्म्लेच्छादिकृतकर्मवत् ॥ २८ ॥

अर्थः—कोइएक देश आश्रीने पूर्वभूमि ते पूर्वभवरूप सवृत्तपणे उद्देशीने एटले देशथकी जे पहेला वृत्त आदर्या एहवी जे क्रिया ते पण दुःखने टालनारी छे वली ज्ञानयोगनी वृद्धि-कर्त्ता थाय छे ॥ २७ ॥ अने अज्ञानीनी जे क्रिया ते चित्तशुद्धि करवाने अर्थे नहीं थाय, केमके तेहने ज्ञानयोगनो अभाव छे, माटे म्लेच्छना करेला कार्य सरखी ते जाणवी ॥ २८ ॥

न च तत्कर्मयोगेऽपि फल सकल्पवर्जनात् ॥
सन्यासो ब्रह्मबोधाद्वा सावद्यत्वात्स्वरूपतः ॥२९॥

नो चेदित्थ भवेबुद्धिर्गोहिंसादेरपि स्फुटा ॥
श्येनाद्वा वेदविहिताद्विशेषानुपलक्षणात् ॥ ३० ॥

अर्थः—तो तेवा कर्मयोगे पण फल नथी फल तो सकल्प थर्ने तेवारेज थाय छे आत्मज्ञान विना त्याग पण नथी, अने एवु स्वरूप मानव छे, माटे ब्रह्म जे ज्ञान तना बोधथकी फल प्रगटे ॥ २९ ॥ जो कदापि एम बुद्धि न होय तेवार तो गोहिंसादिकथकी म्लेन्छादिकने पण प्रगट शुद्धि होय, तथा सिंचाणाना वधथी वेदमा पशुयाग कह्या, ते थकी हिंसक कर्मना योगे वेदीयाना अने म्लेन्छना एक सरखा ज लक्षण छे, काई विशेष नथी ॥ ३० ॥

सावद्यकर्म नो तस्मादादेय बुद्धिविप्लवात् ॥
कर्मोदयागते तस्मिन्नसंकल्पान्न बंधनं ॥ ३१ ॥
कर्मण्याचारतो ज्ञातुर्मुक्तिभावो न हीयते ॥
तत्र संकल्पजो बंधो गीयते यत्परैरपि ॥ ३२ ॥

अर्थ —एटला माटे बुद्धिना विपर्यासपणाथी सावद्यकर्म आदरवु नही, अने जो दैवयोगे तेवा कर्म करवानु उदय आव्यु तेवारे ते कर्म करवानो जो संकल्प नथी, तो ते कर्मनुं बंधन पण नथी ॥ ३१ ॥ सांसारिक क्रियानो जो आचार छे, तोपण ज्ञानीने मुक्तिभावनी हाण नथी, केमके संकल्पथी बंधन छे, एवु अन्य दर्शनवालानु पण कहवु छे, ते जुओ आगल कहे छे ॥ ३२ ॥

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म्म यः ॥
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृतकर्म्मकृत् ॥ ३३ ॥
कर्मण्यकर्म वाकर्म कर्म्मण्यस्मिन्नुभे अपि ॥
नोभे वा भगवैचित्र्यादकर्मण्यपि नो मते ॥ ३४ ॥

अर्थः—जे कर्मने विसर्जे, अकर्मपणुं देखे छे, अने कर्म नथी करतो, अने जाणे छे जे हु करु छु, तेने माणसमा बुद्धिवंत कहिये. ते करनापणाना कर्मने अकरनापणु देखे छे ते पोते पोताने स्वरूपे छे, एम घणी भगजाल प्रगटे छे॥ ३३ ॥ निःकर्म मार्गने विषे नहीं माण्यु, ते अकरवु थयु, अने अकरनापणे जे कर छे तेना वे भागा छे एम करणाना विचित्र भागा छे ॥ ३४ ॥

कर्मनैः कर्मवैषम्यमुदासीनो विभावयन ॥
ज्ञानी न लिप्यते भोगै. पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ ३५॥
पापाकरणमात्राद्धि न मौन विचिकित्सया ॥
अनन्यपरमात्मा स्यात् ज्ञानयोगी भवेन्मुनिः ॥३६॥

अर्थः—उदासी भाववालो विचित्रपणे कर्मनुं विषमपणु चिंतवे जेम कमलपत्र जलमा लेपातु नथी तेम ज्ञानी पुरुष भोगमा लेपातो नथी ॥ ३५ ॥ पाप न करवाथी काइ मुनिपणु आवतु नथी. संशय रहितपणे पोतेज ज्ञानयोगमय परमात्मा थाय तेने मुनि कहिये ॥ ३६ ॥

विषयेषु न रागी वा द्वेषी वा मौनमश्नुते ॥
सम रूप विदस्तेषु ज्ञानयोगी न लिप्यते ॥ ३७ ॥
सतत्त्वचिंतया यस्याभिसमन्वागता इमे ॥
आत्मवान ज्ञानवान्वेदधर्मब्रह्ममयो हि स. ॥३८॥

अर्थ —विषयने विषे जेने राग नथी तेम द्वेष पण नथी तेने मुनि कहिये मध्यस्थपणे रूपादिकने जाणतो जे ज्ञानी योगी तेने लेप लागतो नथी ॥ ३७ ॥ जेणे तत्त्वनी ओलखाण-वडे समता धारण कीधी, तेनेज आत्मानी ओलखाण थई, अने तेज ज्ञानी तथा तेज धर्ममय तथा ब्रह्ममय कहेनाय ॥ ३८ ॥

वैषम्यबीजमज्ञानं निघ्नंति ज्ञानयोगिनः ॥
विषयास्ते परिज्ञाय लोकं जानंति तत्त्वतः ॥ ३९ ॥
इतश्चापूर्वविज्ञानाच्चिदानंदविनोदतः ॥
ज्योतिष्मंतो भवंत्येते ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥४०॥

अर्थः—संसारनुं विषम बीज जे अज्ञान छे ते बीजने ज्ञानयोगी बाली नाखे छे, तथा विषयादिकने ओलखीने तत्त्वथी लोकना स्वरूपने जाणे छे ॥ ३९ ॥ ते अपूर्व अनुभवथी अने ज्ञानना आनंदमय विनोदथी महाज्योतिवंत थाय अने तेना पाप ज्ञाने करी बली जाय ॥ ४० ॥

तेजोलेश्याविवृद्धिर्या पर्यायक्रमवृद्धितः ॥
भाषिता भगवत्यादौ सेत्थंभूतस्य जायते ॥४१॥
विषमेऽपि समेक्षी यः स ज्ञानी स च पंडितः ॥
जीवन्मुक्तः स्थिरं ब्रह्म तथा चोक्तं परैरपि ॥४२॥

अर्थ—दीक्षापर्यायनी वृद्धिथी तेजोलेश्यानी वृद्धि थाय छे, एम भगवती आदि ग्रंथोमां कह्युं छे ते एवा प्राणीने प्रगट थाय ॥ ४१॥ जे विषमने विषे समभाव जुए, तेवा ज्ञानीने पंडित कहिये वली जीवनमुक्त अने स्थिर तथा ब्रह्म पण तेने ज कहिये ॥ ४२ ॥

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ॥
शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः ॥४३॥
इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ॥
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥४४॥

अर्थ—तेमज परदर्शनने विषे पण कह्युं छे के, हे अर्जुन ! विद्या, विनय सहित ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुतरुं, चंडाल

ए सर्वने समदृष्टिये जुए छे तेने पंडित कहिये ॥ ४३ ॥ एहवा जीवे इहां बेठे थकेज जगत्सृष्टिने जीती लीधी ने तेनु मन समता पाम्यु. ते निर्दोषपणे सम्यक् जे आत्मस्वरूप तेने पाम्यो, ते ब्रह्मज्ञाने रह्यो एम जाणवु ॥ ४४ ॥

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियं ॥
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः ॥ ४५ ॥
अर्वाग्दशाया दोषाय वैषम्ये साम्यदर्शनं ॥
निरपेक्षमुनीनां तु रागद्वेषक्षयाय तत् ॥ ४६ ॥

अर्थ—जे रुडु मले हर्ष न करे अने भुंडु प्राप्त थये शोक न धरे, ते स्थिर बुद्धिवालो चतुर प्राणी ब्रह्मनो जाण ब्रह्मज्ञाने रह्यो छे एम जाणवु ॥ ४५ ॥ हठली दशावालाने तो जे विषमने विषे समपणे जोवु ते दोषनु कारण छे, अने जे निरपेक्षी मुनि तेने तो विषमने समपणे जोवु ते रागद्वेषनो क्षय करनार थाय छे ॥ ४६ ॥

रागद्वेषक्षयादेति ज्ञानी विषयशून्यतां ॥
छिद्यते भिद्यते वाऽयं हन्यते वा न जातुचित् ॥४७॥
अनुस्मरति नातीतं नैव कांक्षत्यनागतं ॥
शीतोष्णसुखदुःखेषु समो मानापमानयोः ॥ ४८ ॥

अर्थ—रागद्वेषना क्षयथी ज्ञानी मुनि विषयनी शून्यतापणाने पामे छे. तेने कोई छेदी शके नही, कोइ भेदी शके नही, कोई हणी शके नही, केमके ते पोतानो आत्मा आत्मस्वरूपे माने छे ॥ ४७ ॥ ते ज्ञानी पुरुष गई वस्तुने संभारे नहीं अने अनागत वस्तुने इच्छे नही, शीत अने उष्ण तथा सुख अने दुःख, वली मान अने अपमान ए सर्वने समपणे माने छे ॥ ४८ ॥

जितेंद्रियो जितक्रोधो मानमायानुपद्रुतः ॥
लोभसंस्पर्शरहितो वेदखेदविवर्जितः ॥ ४९ ॥
सनिरुध्यात्मनात्मानं स्थितः स्वकृतकर्मभित् ॥
हठप्रयत्नोपरतः सहजाचारसेवनात् ॥ ५० ॥

अर्थ—जे क्रोध रहित, मान–मायाना उपद्रवे रहित, लोभना स्पर्श रहित, वेदोदय रहित, अने खेद रहित होय तेने जितेंद्रिय कहिये ॥ ४९ ॥ ते आत्माए करी आत्माने रोधी रह्यो, पोताना कर्या कर्मने भेदतो कदाग्रहथी निरम्यो, स्वाभाविक आचारने सेवतो ॥ ५० ॥

लोकसंज्ञाविनिर्मुक्तो मिथ्याचारप्रपञ्चहृत् ॥
उल्लसत्कंडकस्थानः परेण परमाश्रितः ॥ ५१ ॥
श्रद्धावानाज्ञया युक्तः शस्त्रातीतो ह्यशस्त्रवान् ॥
गतो दृष्टेषु निर्वेदमनिन्हुतपराक्रमः ॥ ५२ ॥

अर्थ—लोकसंज्ञाथी मूकाणो, मिथ्यात्व आचारनो टालनार, योगस्थानके उल्लसित थयो छे, एवो जे उत्कृष्ट भाव आत्मानो आश्रित थयो छे ॥ ५१ ॥ तथा श्रद्धावंत, आज्ञायुक्त अने माठा अध्यवसायरूप जे शस्त्र तथी वेगलो रहेलो, अने बाह्य शस्त्रथी रहित, देखीता पदार्थने विषे वैराग्यवान्, वली बल–वीर्यने अणगोपवनार ॥ ५२ ॥

निक्षिप्तदंडो ध्यानाग्निदग्धपापेन्धनव्रजः ॥
प्रतिस्रोतोऽनुगत्वेन लोकोत्तरचरित्रभृत् ॥ ५३ ॥
लब्धान् कामान्बहि कुर्वन्नकुर्वन्बहुरूपताम् ॥
स्फारीकुर्वन् परं चक्षुरपरं च निमीलयन् ॥ ५४ ॥

अर्थ—अने त्रण दंड रहित, जेणे ध्यानरूप अग्निए करी

पापरूप काष्टना समूहने बाल्यो छे, जे सामे प्रवाहे चालवे करीने लोकोत्तर चारित्रनो धरनार ॥ ५३ ॥ तथा विषयसुख पामीने ते सुख दूर करनार तथा माया-कपट अने क्रोधादिकने अणकरतो-थको ते ज्ञानचक्षुने विकस्वर करतो अज्ञानरूप चक्षुने वध करतो थको ॥ ५४ ॥

पश्यन्नन्तर्गतान् भावान् पूर्णभावमुपागतः ॥
भुजानोऽध्यात्मसाम्राज्यमवशिष्टं न पश्यति॥५५॥
श्रेष्ठो हि ज्ञानयोगोऽयमध्यात्मन्येव यन्नगौ ॥
वधप्रमोक्ष भगवान् लोकसारे सुनिश्चितम् ॥५६॥

अर्थ—वली जे अध्यात्मभावने देखतो थको पूर्णभावने पामेलो, अध्यात्मनी ठकुराइने भोगवतो थको अन्य पदार्थने नथी जोतो ॥ ५५ ॥ ए उपर कह्यो ते उत्कृष्ट ज्ञानयोग छे. ए अध्यात्म ग्रंथने विषे वध-मोक्ष पण भगवते निश्चये आचारांगना लोकसार अध्ययने कह्यो छे ॥ ५६ ॥

उपयोगैकसारत्वादाश्वसमोहबोधतः ॥
मोक्षाप्तेर्युज्यते चैव तथा चोक्तं परैरपि ॥ ५७ ॥
तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽप्यधिको मतः ॥
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥५८॥

अर्थ,—मोक्षप्राप्तिने विषे उपर कहेलो ज्ञानयोग घटे छे, केमके शीघ्रपणे ज्ञानजागृत एहवो उपयोगज मात्र एक सार छे, अने अन्यदर्शनीए पण एमज कह्यु छे ॥ ५७ ॥ तपसीथी योगी अधिक छे; ज्ञानीथी अने राजाथी पण योगीने मोटो

वह्यो छे, ते माटे श्रीकृष्णे अर्जुनने कह्यु छे के–हे अर्जुन ! तमे पण योगी थाओ ॥ ५८ ॥

समापत्तिरिह व्यक्तमात्मन. परमात्मनि· ॥
अभेदोपासनारूपस्तत. श्रेष्ठतरो ह्यय ॥ ५९ ॥
उपासना भागवती सर्वभ्योऽपि गरीयसी ॥
महापापक्षयकारी तथा चोक्त परैरपि ॥ ६० ॥

अर्थ —माटे इहा आत्मानी समाधि प्रगट छे आत्मा तथा परमात्मा ए बेउने विषे अभेदपणे सेवनरूप जे योग ते घणोज श्रेष्ठ छे ॥ ५९ ॥ माटे सर्वथी मोटी अने मोटा पापने टाले एवी प्रभुनी सेवा छे, अने परदर्शनमा पण एजुज कह्यु छे ॥ ६० ॥

योगिनामपि सर्वषा मद्गतेनातरात्मना ॥
श्रद्धावान् भजते यो मा स मे युक्ततमो मत. ॥६१॥
उपास्ते ज्ञानवान् देव यो निरजनमव्यय ॥
स तु तन्मयता याति ध्याननिर्धूत कल्मष· ॥ ६२ ॥

अर्थ —सर्वयागीमा पण अतरआत्माये भल्यो एवो श्रद्धावत प्राणी तो तहन कहिये, जे मुजने सेवे, ते मुज सरखो पुरुषोत्तम थाय, एम श्रीकृष्ण अर्जुनने कहे छे ॥ ६१ ॥ ज्ञानवत, निरजन अने अविनाशी देव जाणीने, जे पुरुष मने सेवे छे ते तन्मयीपणे थाय छे, अने जेणे महारा ध्यानथी पापवाली नाख्या छे, हे अर्जुन ! ते पुरुष महारूप थाय छे ॥ ६२ ॥

विशेषमप्यजानानो य· कुग्रहविवर्जित ॥
सर्वज्ञ सेवते सोऽपि सामान्य योगमास्थितः ॥६३॥

सर्वज्ञो मुख्य एकस्तत्प्रतिपत्तिश्च यावताम् ॥
सर्वेऽपि ते तमापन्ना मुख्य सामान्यतो बुधाः ॥६४॥

अर्थः—जे विशेषपने अणजाणतो छे, तोपण जे कदाग्रहे रहित छे अने जे सर्वज्ञने सेवे छे ते पण सामान्य योगे आश्रित छे ॥ ६३ ॥ सर्व प्रमाणमा एक सर्वज्ञ तो मुख्य छे, तेहनी सेवाना करनार जेटला छे ते सर्व तेहिज सर्वज्ञना भावने पामे, पण सर्वज्ञनु मुख्यपणु पंडितो सामान्यथकी कहे छे ॥ ६४ ॥

न ज्ञायते विशेषस्तु सर्वथाऽसर्वदर्शिभिः ।
अतो न ते तमापन्ना विशिष्य भुवि केचन ॥६५॥

सर्वज्ञप्रतिपत्त्यशात्तुल्यता सर्वयोगिना ॥
दूरासन्नादिभेदस्तु तद्भृत्यत्व निहंति न ॥ ६६ ॥

अर्थः—ते सर्वथा प्रकारे सर्वज्ञ सर्वदर्शी तेवडे पण विशेष तो जाणतो नथी, तेथी ते कोई विशेष भूमिकाने पाम्या नथी, एटले पृथ्वीमा कोई विशेष जाणपणे सर्वज्ञपणु पाम्या नथी ॥ ६५ ॥ सर्वज्ञपणाना जे प्रत्येक अश छे ते सर्व योगीने सरिखा छे, माटे ढुकडा अने वेगलापणाना भेदथी तेहनु सेवकपणु काइ हणातु नथी ॥ ६६ ॥

माध्यस्यमवलम्ब्यैव देवतातिशयस्य हि ॥
सेवा सर्वैर्बुधैरिष्टा कालातीतोऽपि यज्जगौ ॥ ६७ ॥

अन्येपामप्यय मार्गो मुक्ताविद्यादिवादिना ॥
अभिधानादिभेदेन तत्त्वरीत्या व्यवस्थित ॥ ६८ ॥

अर्थः—माध्यस्थपणु अवलबीने एटले देवताना अतिशयनुं माध्यस्थपणुं धारीने सर्व पंडिते सेवा मानी छे कालथी अतीत छे, तोपण एम कहे छे ॥ ६७ ॥ बीजा पण मुक्तवादीनो

अने अविद्यादिकवादी जे परदर्शनी तेनो पण आ मार्ग छे, एटले पूर्वे कह्यो ते मार्ग छे जो के नामादिक भेदे करी कदापि जुदा छे, तोपण तत्त्व रीते जोता एकज व्यवस्था छे ॥ ६८ ॥

मुक्तोबुद्धोऽर्हन्वापि यदैश्वर्येण समन्वित.॥
तदीश्वर स एव स्यात्सज्ञाभेदोऽत्र केवल ॥ ६९ ॥
अनादिशुद्ध इत्यादिर्यो भेदो यस्य कल्प्यते ॥
तत्तत्तन्त्रानुसारेण मन्ये सोऽपि निरर्थक ॥ ७० ॥

अर्थ.—ते व्यवस्था कही देखाडे छे कोई दर्शनी मुक्त कहे छे, कोई बुद्ध कहे छे, कोइक अर्हत् कहे छे, कोइक ऐश्वर्ययुक्त एटले ईश्वर कहे छे, ए सर्व सर्वज्ञनी संज्ञाना भेद छे, बीजु नथी ॥ ६९ ॥ तेमज वली अनादिशुद्ध ईश्वर छे इत्यादिक भेद जे परदर्शनीओ कल्पे छे, ते भेद सिद्धांतने अनुसारे विचारीए तो मानवा पण निरर्थक छे ॥ ७० ॥

विशेषस्यापरिज्ञानाद् युक्तीना जातिवादित ॥
प्रायो विरोधतश्चैव फलाभेदाच भावत ॥ ७१ ॥
अविद्याक्लेशकर्मादि यतश्च भवकारण ॥
तत प्रधानमेवैतत्सज्ञाभेदमुपागतं ॥ ७२ ॥

अर्थः—केमके जे विशेषपने नहि जाणवाथी, उक्तियुक्तिना जातिवचनथी अने प्राये विरोधथकी मानथी फलनो अभेद छे, ए हेतु माटे ॥ ७१ ॥ जे अविद्या, क्लेश अने कर्म इत्यादिक जे संसारना कारण प्रगटे, ते केटलाएक दर्शनीओ जुदा जुदा कहे छे एटले कोई अविद्या, कोई क्लेश, कोई कर्म, एम सत्तावे करी भेद कहे छे, पण ए त्रणे प्रधानपणे एकज छे ॥ ७२ ॥

यस्यापि योऽपरो भेदश्चित्रोपाधिस्तथा तथा ॥
गीयतेऽतीतहेतुभ्यो धीमता सोऽप्यपार्थकः ॥ ७३॥
ततः स्थानप्रयासोऽय यत्तद्भेदनिरूपण ॥
सामान्यमनुमानस्य यतश्च विषयो मतः ॥ ७४ ॥

अर्थ—ए अविद्यादिक त्रणना वली बीजा भेद कल्पनाये अनेक थाय छे, तेथी अनेक प्रकारनी उपाधी निपजे, तेम तेम जाणिये जे हेतुनो अभाव थाय छे, पण ते उपाधिभेद पडितने निरर्थक छे एम जाणवु ॥ ७३ ॥ तेथी आ स्थानननो जे प्रयास ते भेदनु निरूपण करवाने अनुमाननो विषय ते सामान्य जाणवो, केमके ज्या अनुमान प्रमाण करिये त्या सामान्यपणे उपयोगी होय तेवारे अनुमान विषयनो अभाव थाय ॥ ७४ ॥

सक्षिप्तरुचिजिज्ञासोर्विशेषान बलबलम् ॥
चारिसजीविनीचारज्ञातादत्रोपयुज्यते ॥ ७५ ॥
जिज्ञासापि सता न्याय्या यत्परेऽपि वदत्यद· ॥
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्त्तते ॥ ७६ ॥

अर्थ—जेम सजीवनी नामा चारो जे घासबुटी तेने ओलखनारी मोटी स्त्रीये ते बुटीने योगे भर्त्तारने पशु अवस्थामाथी पुरुष बनाव्यो, तेम सक्षेप रुचिवालो विशेष बलवान् केवारे कहेवाय ? जेवारे तेनी प्रीति साचे साची होय तेवारे कहेनाय पण साची प्रीति विनानुं विशेष बल ते बलमा न गणाय ॥ ७५ ॥ माटे ए त्रण जे कामादि योग तेने 'विषे सत्पुरुषे जाणपणु राखवु उचित छे परदर्शनीनु कहेवु पण एवु ज छे हे अर्जुन ! जे पुरुष ज्ञानयोगने जाणवा इच्छे ते पुरुष परमात्मानी दिशाने पामे ॥ ७६ ॥

आर्ता जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी चेति चतुर्विधा ॥
उपासकास्त्रयस्तत्र धन्या वस्तुविशेषत ॥ ७७ ॥
ज्ञानी तु शांतविक्षेपो नित्यभक्तिर्विशिष्यते ॥
अत्यासन्नो ह्यसौ भर्तुरंतरात्मा सदाशय ॥ ७८ ॥

अर्थ—एक दु खी बीजो जाणवानी इच्छावालो, त्रीजो धननो अर्थी अने चोथो ज्ञानी–ए चार प्रकारना हे अर्जुन ! मारा सेवको छे, पण ते मध्ये एक धनार्थी विना जे बीजा त्रण जातना सेवक ते वस्तुतत्त्वना जाण छे माटे धन्य छे-वखाणवा योग्य छे ॥ ७७ ॥ ए त्रणने धन्य कह्या तेमा पण जेनो विक्षेप शम्यो छे, अने नित्य भक्तिवत एहवो ज्ञानी पुरुष जे चोथो ते मोटो जाणवो ते ज्ञानी अमारी पासे अत्यत नजीक रहे छे माटे श्रेष्ठ छे, केमके अतरात्माए वर्त्ते छे, अने तेना आशय निर्मल छे, ते माटे ॥ ७८ ॥

कर्मयोगविशुद्धस्तद्ज्ञाने युजीत मानसम् ॥
अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च सशयानो विनश्यति ॥ ७९ ॥
निर्भय स्थिरनासाग्रदत्तदृष्टिर्व्रत स्थित ॥
सुखासन प्रसन्नास्यो दिशश्चानवलोकयन ॥ ८० ॥

अर्थ—हे अर्जुन ! कर्मयोगे विशुद्ध थको ते प्राणी ज्ञानमा पोतानु मन जोडे छे, अने हे अर्जुन ! एक मूर्ख, बीजो श्रद्धा रहित अने त्रीजो सशयभरेलो माणस ए त्रणे विनाश पामे छे ॥ ७९ ॥ निर्भय, नासिकाना अग्रभागने विषे दृष्टि राखीने स्थिर रहेनार, तथा निरंतर व्रतमा रहेनार, एहवो सुखासने बेठो, वली प्रसन्न मुख छे जेहनु अने एकदृष्टि राखनार, आडुअवलु नही जोनार ॥ ८० ॥

देहमध्यशिरोग्रीवमवक्रं धारयन्बुधः ॥
दन्तैरसस्पृशन् दन्तान् सुश्लिष्टाधरपल्लवः ॥ ८१ ॥
आर्त्तरौद्रे परित्यज्य धर्मे शुक्ले च दत्तधी ॥
अप्रमत्तो रतो ध्याने ज्ञानयोगी भवेन्मुनिः ॥८२॥

अर्थ—केड, मस्तक अने कोट तेने पासरा धरतो, एटले शरीरनी चपलाइ-वाकाड रहित एहवो डाह्यो, दाते करी दातने अणफरसतो एटले स्पर्श करतो नथी अने जेना होठ पल्लव वेउ रुडी रीते मलेला होय ॥ ८१ ॥ तथा आर्त्त रौद्रध्यान छाडीने धर्म शुक्लध्यानमा बुद्धि दीधी छे अने भावे अप्रमत्तपणे ध्यानमा रत थको एवो जे मुनि तेने ज्ञानयोगी कहेवो ॥८२॥

कर्मयोग समभ्यस्य ज्ञानयोगसमाहितः ।
ध्यानयोग समारुह्य मुक्तियोग प्रपद्यते ॥ ८३ ॥

अर्थ—ते मुनि कर्मयोगनो अभ्याम करी, चढवाने उजमाल थई, ज्ञानयोगरूप दोरडु झाली, समाधिपणे ध्यानयोग नीसरणीए चडीने मुक्तियोगरूप मदिरने पामे ॥ ८३ ॥

॥ इति योगाधिकार. पचदशमो ममाप्तः ॥



अथ ध्यानाधिकारः

स्थिरमध्यवसान यत्तद्ध्यान चित्तमस्थिर ॥
भावना चाप्यनुप्रेक्षा चिंता वा तत्रिधा मत ॥१॥
मुहूर्त्तांतर्भवेद्ध्यानमेकार्थे मनसः स्थिति' ॥
वह्वर्थसक्रमे दीर्घाप्यच्छिन्ना ध्यानसतति' ॥ २ ॥

अर्थ—चित्त चपल छे, पण ते चित्तने जे स्थिरपणे चित्तना अध्यवसायने प्रगट करे तेवारे तेने ध्यानयोगी कहिये एक भावना, बीजी अनुप्रेक्षा, अने त्रीजु चितानु ध्यान-ए त्रण प्रकारे चित्त चपल थाय छे ॥ १ ॥ अतर्मुहूर्त्त ध्यान होय, पण जिहा एक ठाम एक अर्थने विषे घणा अर्थनु सक्रमण थाय, एनी मननी स्थिति होय तिहा ध्याननी अविच्छिन्न दीर्घपणे परपरा थाय तिहा काई अतर्मुहूर्त्तनो नियम नथी ॥ २ ॥

आर्त्त रौद्र च धर्म्म च शुक्ल चेति चतुर्विध ॥
तत्स्याद्भेदाविह द्वौ द्वौ कारण भवमोक्षयोः ॥३॥
शब्दादीनामनिष्टाना वियोगासप्रयोगयो ॥
चिंतन वेदनायाश्च व्याकुलत्वमुपेयुष. ॥ ४ ॥

अर्थ—आर्त्त, रौद्र, धर्म ने शुक्ल—ए चार ध्यानना भेद छे त मध्य प्रथमना बे ध्यान त ससारना कारणिक छे, अने पाछला बे ध्यान ते मुक्तिना कारणरूपी छे ॥ ३ ॥ तेमा प्रथम आर्त्तध्यानना चार भेद कहे छे. प्रथम अनिष्ट जे शब्दादिक, तेनो वियोग वाछे के रखे अनिष्टनो सयोग बने तेम अनिष्ट मले जे पीडा थाय तेनु चिंतन करे तेथी व्याकुल थाय ॥ ४ ॥

इष्टाना प्रणिधान च सम्प्रयोगवियोगयो॰ ॥
निदानचिंनन पापमार्त्तमित्य चतुर्विधम् ॥ ५ ॥

कापोतनीलकृष्णाना लेश्यानामत्र सभवः ॥
अनतिक्लिष्टभावाना कर्म्मणा परिणामतः ॥ ६ ॥

अर्थ—त्रीनो भेद इष्टनु चिंतन करे, एटले रखे इष्ट वस्तुना सयोगनो वियोग थई जाय, त्रीजो नियाणुं करे, चोथो रोगना औषधनी चिंता करे. ए चार आर्त्तध्यानना प्रकार छे ॥ ५ ॥ ए मध्ये कापोत, नील, कृष्ण ए त्रण लेश्यानो सभव छे, केमके जेमा अति क्लिष्ट भावना नथी एवी कर्मनी परिणतिना परिणामे करी ए त्रण लेश्यानो सभव छे ॥ ६ ॥

क्रदन रुदन प्रोच्चैः शोचन परिदेवन ॥
ताडन लुंचन चेति लिगान्यस्य विदुर्बुधाः ॥ ७ ॥

मोघ निदन्निज कृत्य प्रशसन् परसपदः ॥
विस्मितः प्रार्थयन्नेता. प्रसक्तश्चैव दुर्जनः ॥ ८ ॥

अर्थ—चकोर करवो, ऊंचे स्वरे रडवु, शोचना करवी, नाम दईने रडवु, मारवु, माथाना वाल तोडवा इत्यादिकने पडित आर्त्तध्यानना लक्षण कहे छे ॥ ७ ॥ अम मदबुद्धि छीए एम कहीने पोतानु कार्य निंदे, अम शु पालीशु ? मुक्तिमार्ग तो महोटो छे, एम प्रशसा करे, एम विस्मित थको लोक पासे मागतो फरे इत्यादिक दुर्जननी रीत छे ॥ ८ ॥

प्रमत्तश्चेंद्रियार्थेषु गृद्धो धर्म्मपराङ्मुखः ॥
जिनोक्तमपुरस्कुर्वन्नार्त्तध्याने प्रवर्त्तते ॥ ९ ॥

प्रमत्तातगुणस्थानानुगमेतन्महात्मना ॥
सर्वप्रमादमूलत्वात्त्याज्य तिर्य्यग्गतिप्रद ॥ १० ॥

अर्थ—जे प्रमादी होय, विषयमा लीन होय, धर्मथी ऊलटो होय, जिनवाणीने गोपवे तेवो पुरुष आर्त्तध्यानमा प्रवर्त्ते ॥ ९ ॥ ए ध्यान उपला गुणठाणा पामता थका प्रमादमा पाडे अने छट्ठा गुणठाणा लगे रह, माटे मोटा मुनिये सर्व प्रमादनु मूळ तथा तिर्यच् गति पमाडे एवु जाणीने ए ध्यानने छोडवु ॥१०॥

निर्दय वधबधादिचिंतन निबिडक्रुधा ॥
पिशुनासत्यमिथ्यावाक् प्रणिधान च मायया ॥११॥
चौर्य्यधीर्निरपेक्षस्य तीव्रक्रोधानलस्य च ॥
सर्वाभिशकाकलुष चित्त च धनरक्षणे ॥ १२ ॥

अर्थ —हवे जे निर्दय होय, जीवनो वध-बंधनादिक चिंतवे, आकरो क्रोधी होय, चाडीओ होय, जूठु बोले, मिथ्यात्वनु वचन बोले, माया-कपट धरे ॥ ११ ॥ चोरी करनार, परभव रहित, क्रोधरूप अग्निये धमधमतो रहे, धन सचय करनार, धनने डाटी राखे, शकाये मलु मन राखनार, एटले रखेने कोई मारु धन जुए अने लइ जाय ए रीते १ हिंसानुबधी, २ मृषानुबधी, ३ चौर्यानुबधी, ४ परिग्रहरक्षणानुबंधी ए चार प्रकार रौद्रध्यानना जाणवा ॥ १२॥

एतत्सदोपकरणकारणानुमतिस्थिति ॥
देशाविरतिपर्यत रौद्रध्यान चतुर्विध ॥ १३ ॥
कापोतनीलकृष्णाना लेश्यानामत्र सभव ॥
अतिसक्लिष्टरूपाणा कर्मणा परिणामत ॥ १४ ॥

अर्थः—ए रीते ध्यानने करवे, करावचे अने अनुमोदवानी स्थितिये करी ए ध्यान दोषनु कारण छे ए ध्यान चोथा अविरति गुणठाणा अने पाचमा देशविरति गुणठाणा सुधी होय, ए रीते रौद्रध्यानना चार भेद कह्या ॥ १३ ॥ कापोत, नील अने कृष्ण ए त्रण लेश्यानो इहा संभव छे. ए अति सक्लिष्टरूप जे कर्म तेना परिणामथी होय छे ॥ १४ ॥

उत्सन्नबहुदोषत्व नानामारणदोषता ॥
हिंसादिषु प्रवृत्तिश्च कृत्वाघ स्मयमानता ॥ १५ ॥
निर्दयत्वाननुशयौ बहुमानः परापदि ॥
लिगान्यत्रेत्यदो धीरैस्त्याज्य नरकदुःखद ॥ १६ ॥

अर्थः—ए प्राये घणा दोषनु कारण छे नानाप्रकारना जीवने मारनाना दोषे करी हिंसादिकमा प्रवृत्ति थाय, पाप करीने खुशरक्तीपणुं माने ॥ १५ ॥ निर्दयपणु, पश्चात्तापपणु, परआपदाये राजीपणु अने महाविषयीपणु, ए चिह्न करी ए ध्यान नरकना दु खनुं आपनारुं छे, माटे ए ध्यानने छाडवु ॥ १६ ॥

अप्रशस्ते इमे ध्याने दुरते चिरसस्तुते ॥
प्रशस्त तु कृताभ्यासो ध्यानमारोढुमर्हति ॥१७॥
भावना देशकाले च स्वसस्तालयनक्रमात् ॥
ध्यातव्यध्यानानुप्रेक्षा लेश्यालिंगफलानि च ॥१८॥

अर्थः—एवां ए बे ध्यान ते महानिर्बल छे एनो घणो परिचय करीए, तो तेथी कडवा विपाक प्रगटे, माटे डाह्या पुरुषे अभ्यास करता उज्ज्वल ध्याने चढवु योग्य छे ॥ १७ ॥ हवे धर्मध्यान कहे छे. देशकाल जोईने शुभ भावना करवी,

पोतानी सत्ताना आलंबनना क्रमथी ध्येय ध्याना अने ध्याननी अनुप्रेक्षा ते शुभ लेश्याना चिन्हनु फल छे ॥ १८ ॥

ज्ञात्वा धर्मं ततो ध्यायेच्च तत्रस्तत्र भावना ॥
ज्ञानदर्शनचारित्रवैराग्याख्याः प्रकीर्तिताः ॥ १९ ॥

निश्चलत्वमसमोहो निर्जरा पूर्वकर्मणा ॥
सगाशसा भयोच्छेदः फलान्यासा यथाक्रमात् ॥२०॥

अर्थ—ज्ञानभावना, दर्शनभावना, चारित्रभावना अने वैराग्यभावना ए चार भावनाने धर्म जाणी ध्यावनी ॥ १९ ॥ तेमा ज्ञानभावनाथी निश्चलपणु थाय अने दर्शनभावनाथी अमूढ-पणु थाय वली चारित्रभावनाथी पूर्वकर्मनी निर्जरा थाय अने वैराग्यभावनाथी स्त्रियादिकनो सग तथा पुद्गलनी इहा अने भय तेनो उच्छेद थाय ए रीते ए चार भावनाना फल जाणवा ॥२०॥

स्थिरचित्त किलैताभिर्याति ध्यानस्य योग्यता ॥
योग्यतैव हि नान्यस्य तथा चोक्त परैरपि ॥ २१ ॥

चचल हि मन कृष्ण प्रमाथिबलवद्दृढ ॥
तस्याह निग्रह मन्ये वायोरिव सुदुष्कर ॥ २२ ॥

अर्थ—ए भावनामा जेनुं चित्त स्थिर होय तेने ध्यानमा स्थिरता रहे माटे ते प्राणी ध्याननी योग्यता पामे, पण बीजो कोई न पामे तेमज परदर्शनमां पण कह्यु छे, ते कहे छे ॥ २१ ॥ अर्जुन पूछे छे—हे कृष्ण ! मन तो चचल छे, अने शत्रुना सैन्य सरखुं दृढ छे, ते मननो निग्रह हु शी रीते करुं ? केमके पवननी पेठे मन दुष्कर अने अग्राह्य छे ॥ २२ ॥

असंशय महाबाहो मनो दुर्निग्रह चलं ॥
अभ्यासेन च कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ २३ ॥
असंयतात्मनो योगो दुःप्राप्य इति मे मतिः ॥
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥२४॥

अर्थ—श्रीकृष्ण कहे छे–हे महाबाहो ! के० मोटी छे बाहु जेनी एवा हे अर्जुन ! खरेखर मन चपल छे. तेनो निग्रह करवो तो कठण छे, तो पण हे कुंतिना पुत्र ! हे अर्जुन ! अभ्याम अने वैराग्ये करीने मन वश थाय एवु छे ॥ २३ ॥ हे अर्जुन ! जेने पोतानो आत्मा वश नथी एवो जे पुरुष तेने ध्यानयोग पामवो दुष्कर छे, एवी मारी मति छे; पण जेणे आत्माने वश कीधो छे तेने उद्यमे करी अने अभ्यासे करी ध्यानयोग पामवो सुलभ छे ॥ २४ ॥

सदृशप्रत्ययावृत्त्या वैतृष्ण्याद्बहिरर्थतः ॥
एतच्च युज्यते सर्वे भावनाभावितात्मनि ॥ २५ ॥
स्त्रीपशुक्लीबदुःशीलवर्जितस्थानमागमे ॥
सदा यतीनामाज्ञप्त ध्यानकाले विशेषत. ॥ २६ ॥

अर्थ—सरखो प्रत्यय जे निश्वास तेणे सहित अने बाह्य पदार्थनी तृष्णाये रहित तथा शुद्ध भावनाये भावीत पुरुषने ए आत्मा वश करवो सर्व प्रकारे घटे छे ॥ २५ ॥ स्त्री, पशु, नपुसक, दुःशीलादि रहित एहवी वसती मुनिये सेववी, एम आगममा मुनिने सदाय प्रमुए आज्ञा करी छे, तेमा पण ध्यानवेलाये तो विशेषपणे कही छे एम जाणवुं ॥ २६ ॥

स्थिरयोगस्य तु ग्रामे विशेषः कानने वने ॥
तेन यत्र समाधान स देशो ध्यायनो मतः ॥२७॥

यत्र योगसमाधानं कालोऽपीष्टः स एव हि ॥
दिनरात्रिक्षणादीना ध्यानिनो नियमस्तु न ॥२८॥

अर्थ—स्थिरयोगवालाए गाममां अने विशेषे करीने वगडामा तथा वनमा जिहां चित्त समाधीमां रहे ते स्थानके ध्यान करवु ॥ २७ ॥ जे वखत योग स्थिर रह ते काल रुडो समजवो, पण ध्यानवालाने दिवस अथवा रात्रीनो नियम नथी ॥ २८ ॥

यैवावस्था जिता या तु न स्याद्ध्यानोपघातिनी ॥
तया ध्यायेन्निषण्णो वा स्थितो वा शयितोऽथवा॥२९॥
सर्वासु मुनयो देशकालावस्थासु केवल ॥
प्राप्तास्तन्नियमो नासा नियता योगसंस्थिता ॥३०॥

अर्थ—ध्यानवंत मुनिने जे अवस्थाये, जे ठेकाणे अने जे वेलाये ध्यानने व्याघात न लागे ते ठेकाणे, ते वेलाये, ते रीते बेठा, ऊभा अथवा सूता ध्यान करवु ॥ २९ ॥ सर्व देश-काल अवस्थाने विषे रह्या जे, मुनि तेने काई नियम नथी, केमके ते नियतपणे योगमा स्थिर रह्या छे ॥ ३० ॥

वाचना चैव पृच्छा च परावृत्यनुचिंतन ॥
क्रिया चालंबनानीह सद्धर्मावश्यकानि च ॥ ३१ ॥
आरोहति दृढद्रव्यालंबनो विषम पद ॥
तथा रोहति सद्ध्यान सूत्राद्यालंबनाश्रितः ॥ ३२ ॥

अर्थ—वाचना, पृच्छना, परावर्त्तना अने अनुप्रेक्षा ए धर्मना आलंबन इहां कह्या, ते अवश्यकरणी छे ॥ ३१ ॥ जे प्राणी खरी वस्तुनो आलंबक छे ते प्राणी कठण ठेकाणे पण जेम चडे तेम जे जैन सूत्रादिकनो आलंबक छे ते प्राणी रुडे ध्याने पण चडे ॥ ३२ ॥

आलंबनादरोद्भुतप्रत्यूहक्षययोगतः ॥
ध्यानाद्यारोहणभ्रंशो योगिना नोपजायते ॥ ३३ ॥
मनोरोधादिको ध्यानप्रतिपत्तिक्रमो जिने ॥
शेषेषु तु यथायोगसमाधान प्रकीर्तित ॥ ३४ ॥

अर्थ—आलंबनना आदरथी प्रगट्यो जे विघ्ननो क्षय तेना योगथी ध्यानरूप पर्वत उपर चढता, योगीश्वरने भ्रष्टपणुं थतु नथी ॥ ३३ ॥ योगनिरोध ध्यान तो केवलीने छे मनरोधकरण इत्यादि अनुक्रम जिनमतमा छे. बाकी बीजां दर्शनमा तो जेम नजरमा आवे तेम योगनु समाधान कह्युं छे ॥ ३४ ॥

आज्ञापायविपाकाना संस्थानस्य च चिंतनात् ॥
धर्मध्यानोपयुक्ताना ध्यातव्य स्याचतुर्विध ॥ ३५ ॥
नयभंगप्रमाणाढ्या हेतूदाहरणान्विता ॥
आज्ञा ध्यायेज्जिनेंद्राणामप्रामाण्यकलंकिता ॥३६॥

अर्थः—आज्ञा, अपाय, विपाक अने संस्थान ए चार भेदना चिंतनथकी धर्मध्यानवालाये धर्मध्यान करवु ॥ ३५ ॥ सातनय, सप्तभंगी, चार प्रमाण सहित तथा हतु उदाहरणे सहित अने अप्रमाणरूप दूषणे रहित एवी जिनेश्वरनी आज्ञा ध्याववी ए प्रथम भेद ॥ ३६ ॥

रागद्वेषकषायादिपीडिताना जनुष्मता ॥
ऐहिकामुष्मिकास्तास्तान्नानापायान्विचिंतयेत् ॥३७
ध्यायेत्कर्मविपाक च त त योगानुभावज ॥
प्रकृत्यादिचतुर्भेद शुभाशुभविभागत ॥ ३८ ॥

अर्थः—जे जीव राग, द्वेष, कषायवडे पीडाया छे, ते आ

लोक ने परलोक सबधी कष्ट ते बीजे पाये चिंतवे ए त्रीजो भेद ॥ ३७ ॥ जे योगना अनुभवथी थयो अने प्रकृति, स्थिति, रस, प्रदेशना बधथी नीपज्यो एहवो जे कर्मनो विपाक तेने शुभाशुभ वहेंचणथी ध्यावे ए त्रीजो भेद ॥ ३८ ॥

उत्पादस्थितिभगादिपर्यायैर्लक्षणैं पृथक् ॥
भेदैर्नामादिभिर्लोकस्यान चिंतयेद् भृत ॥ ३९ ॥
चिंतयेत्तत्र कर्त्तार भोक्तार निजकर्मणा ॥
अरूपमव्यय जीवमुपयोगस्वलक्षण ॥ ४० ॥

अर्थ'—उत्पाद, व्यय अने ध्रुव, काल तथा भंगादि पर्याय लक्षणे करी जुदा जुदा भेदें नाम, स्थापना, द्रव्य, भावभेदे करीने चौद राजलोकनु सस्थान धारीने चिंतवे ॥ ३९ ॥ तिहा पोताना कर्मनो कर्त्ता–भोक्ता आत्मा छे, एम चिंतवे. ए जीव अरूपी, अविनाशी अने उपयोग लक्षणे युक्त छे, एम चिंतवे ए चोथो भेद ॥ ४० ॥

तत्कर्मजनित जन्मजरामरणवारिणा ॥
पूर्ण मोहमहावर्त्तकामौर्वानलभीपण ॥ ४१ ॥
आशामहानिलापूर्ण कपायकलशोन्छलत् ॥
असद्विकल्पकल्लोलचक्र दधतमुद्धत ॥ ४२ ॥

अर्थ —हवे कर्मजनित ससारसमुद्र वखाणे छे ते जन्म, जरा अने मरणरूप जले पूर्ण भर्यो छ, तथा मोहरूप मोटा आवर्त्त, तद्रूप भमरी अने कामरूप वडवानले करी भयकर ॥४१॥ आशारूप प्रचडवायुवडे भरपूर, कपायरूप चार कलशाये युक्त अने माठा विकल्परूप महाउद्धत कल्लोल जिहा उछले छे एवो भवसमुद्र भयकर छे ॥ ४२ ॥

हृदि श्रोतसिकावेलासपातदुरतिक्रमम् ॥
प्रार्थनावल्लिसतान दुःपूरविपयोदर ॥ ४३ ॥

अज्ञानदुर्दिन व्यापद्विद्युत्पातोद्भवद्भय ॥
कदाग्रहकुवातेन हृदयोत्कपकारिणं ॥ ४४ ॥

अर्थः—वली ते समुद्रमा मनमा श्रोतसिका एटले जे हर्ष तथा शोकनुं भरावु ते रूपवेल एटले भरति कहिये, माटे जो एमा पड्यो तो पछी नीकळवुं घणु कठण छे, अने याचनारूप सेवालनो समूह छे जेने विषे, तथा दुःखे पूर्ण थाय एवो विषय रूप मध्यभाग छे जेनो ॥ ४३ ॥ जिहा अधकार व्याप्यु एवु अज्ञानरूप वादलु छे, तथा जेमा आपदारूप वीजली पडवानो भय छे, अने कदाग्रहरूप खराव पवननो उद्भव थयो छे, तेणे करीने ज्ञान नजरवाळानुं तो हैयु धुजे, एहवो कर्मजनित समुद्र विहामणो छे ॥ ४४ ॥

विविधव्याधिसबधमत्स्यकच्छपसकुल ॥
चिंतयेच्च भवाभोधिं चलदोषाद्रिदुर्गम ॥ ४५ ॥

तस्य सतरणोपाय सम्यक्त्वदृढबधन ॥
बहुशीलागफलक ज्ञाननिर्यामिकान्वित ॥ ४६ ॥

अर्थः—जे समुद्र विविध जातिना जे रोगना सबध-रूपी मच्छ अने काचबाये करी आकुल छे, तथा जेमा चचलता, शून्यता अने गर्व ते रूप जे दोष तद्रूप महोटा पर्वत छे, एवा भव-रूप समुद्रने चितवे ॥ ४५ ॥ हवे एवा समुद्रथी तरवानो उपाय, ते समकितरूप दृढबधन छे जिहा, अने जेने अढार हजार

शिलाग रथरूप पाटीया जड्या छे, तथा ते जहाज ज्ञान-
रूप चलावनार निर्यामक जे नाखुदा तणे सहित छे ॥ ४६ ॥

मवरास्ताश्रवच्छिद्र गुप्तिगुप्तममतत ॥
आचारमडपोद्दीप्तापवादोत्सर्गभूद्वय ॥ ४७ ॥
अमर्त्यैर्दुर्धरैर्योधैर्दु प्रधृष्य सदाशयै ॥
सद्योगकूपस्तभाग्रन्यस्ताध्यात्मसिताशुक ॥ ४८ ॥

अर्थ —वली ते जहाजना पाटीआने विषे रह्या जे छिद्रो तेहने मवररूपी कीचड तद्रूप तेलवडे पुर्या छे, तथा मनोगुप्तिरूप गुप्त सुकान ते मार्ग बतावे छे, तणे करी ते वहाण समु चाले छे, तथा आचाररूप मडपे शोभे छे, वली ते वहाणमा उत्सर्ग अने अपवादरूप बे जातनो माल भरेलो छे ॥ ४७ ॥ जे वहाणमा शुद्ध अध्यवसायरूप घणा बलवत सुभटो जे राग-द्वेशादि शत्रुने दु प्रधृष्य छे, तथा भलो जे योगरूप कुओ जे थभ तेना उपर अध्यात्मरूप उज्वल सड खेच्यो छे जिहा ॥ ४८ ॥

तपोऽनुकूलपवनोद्भूतसवेगवेगत ॥
वैराग्यमार्गपतित चारित्रवहन श्रिता ॥ ४९ ॥
सद्भावनाख्यमञ्जूषान्यस्तसच्चित्तरत्नत ॥
यथाऽविघ्नेन गच्छति निर्वाणनगरे बुधा ॥ ५० ॥

अर्थ—ते सढथी तपस्यारूप अनुकूळ पवन प्रगट्यो छे अने ते पवन करी सवेगगुणरूप वेग प्रगट्यो छे, तेणे करी वैराग्य मार्गमा ते वहाण चालतु जाय छे, एहवु चारित्ररूप जे वहाण तमा बेठा थका ॥ ४९ ॥ रुडी भावनारूप मजूषामा गुप्तपणे शुभ चित्तरूपी रत्न स्थाप्यु छे जेणे एवा मुनि निर्विघ्नपणे मुक्ति-रूप नगरने पामे छे ॥ ५० ॥

यथा च मोहपल्लीशो लब्धव्यतिकरे सति ॥
समारनाटकोच्छेदाशकापकाविले मुहुः ॥ ५१ ॥

सज्जीकृतस्वीयभटे नाव दुर्बुद्धिनामिका ॥
श्रिते दुर्नीतिनौवृन्दारूढशेषभटान्विते ॥ ५२ ॥

अर्थ—ए वातनी खबर चोरनो राजा जे मोहरूपी पल्लीपति तेने पडी, तेवारे ते मोह जे चोरनो राजा छे तेणे विचार्यु जे रखेने ससाररूप नाटकनो उच्छेद थई जाय, एवी शकारूप जे कचरो तेमां लेपाणो थको ॥ ५१ ॥ ते मोहराजा पोताना सुभटोने सज्ज करीने दुर्बुद्धि नामे जे नाव तेमा पोते बेठो थको, दुराचाररूप बीजा जे नाव छे तेमा वली बीजा घणा सुभटोने बेसारीने पोते भवसमुद्रमा आव्यो ॥ ५२ ॥

आगच्छत्यथ धर्मेशभटौघे रणमडप ॥
तत्त्वचितादिनाराच सज्जीभूते गमाश्रिते ॥ ५३ ॥

मिथो लग्ने रणावेशे सम्यग्दर्शनमत्रिणा ॥
मिथ्यात्वमत्रीविषमा प्राप्यते चरमा दशा ॥५४॥

अर्थ—ते वखते धर्मराजाना सुभटोना जे थोक ते मोहना सैन्यने जोईने रणमडपभूमीमा आवी तत्त्वचिता प्रमुख जे बहाण ते लेईने सज्ज थया थका ॥ ५३ ॥ ते पछी वेउने माहोमाहे युद्ध चालवा लाग्यु तेमा सम्यग्दृष्टि जे प्रधान तेणे मिथ्यात्व प्रधानने विषम चरमदशा के० मरणदशा पमाडी, एटले मृत्युप्राय कीधो ॥ ५४ ॥

लीलयैव निरुध्यते कपायचरटा अपि ॥
प्रशमादिमहायोधैः शीलेन स्मरतस्करः ॥ ५५ ॥

हास्यादिषट्कलुंटाकरद वैराग्यसेनया ॥
निद्रादयश्च ताड्यते श्रुतयोगादिभिर्भटैः ॥ ५६ ॥

अर्थ—अने उपशमादिक महासुभटे लीलाये करीने कषायरूप चोरटाने रोक्या तथा शीलसुभटे कदर्परूप चोरने जी त्यो ॥ ५५ ॥ वैराग्यनी सेनाये करीने हास्यादिक जे छ चोर तने जीत्या अने ज्ञानयोगादिक जे सुभटो तणे निद्रादिकने मारी काढ्या ॥ ५६ ॥

भटाभ्या धर्मशुक्लाभ्यामार्तरौद्राभिधौ भटौ ॥
निग्रहैर्णेद्रियाणा च जीयते द्रागसयम ॥ ५७ ॥
क्षयोपशमतश्चक्षुर्दर्शनावरणादयः ॥
नश्यत्यसातसैन्य च पुण्योदयपराक्रमात ॥ ५८ ॥

अर्थ—धर्मध्यान अने शुक्लध्यान ए बे सुभटे आर्त्त अन रौद्र ए बे सुभटने हण्या, तथा पाच इद्रियना निग्रहरूप सुभटे उतावले करी असयमरूप सुभटने जीत्या ॥ ५७ ॥ दर्शनावर-णीयना क्षयोपशम सुभटे चक्षुदर्शनावरणादिक योद्धाओने मार्या वली पुण्योदयना पराक्रमथी अशातारूप सैन्य नासी गयु ॥५८॥

सह द्वेषगजेद्रेण रागकेशरिणा तथा ॥
सुतेन मोहभूपोऽपि धर्मभूपेन हन्यते ॥ ५९ ॥
ततः प्राप्तमहानदा धर्म्मभूपप्रसादतः ॥
यया कृतार्था जायते साधवो व्यवहारिण. ॥६०॥

अर्थ—हवे छेवटे द्वेषरूप हाथीये वेठो तथा रागरूप सिंहे सहित एहनो मोहराजा तेने पण धर्मराजाए हण्यो ॥५९॥ तेवार

पछी साधुरूपी व्यवहारिया धर्मरागानो प्रमाद जे पसाय तथी कृतार्थ थई, आनंद पामी सुखे पोतानो व्यापार करता थया ॥६०॥

विचिंतयेत्तथा सर्वं धर्मध्याननिविष्टधीः ॥
ईदृगन्यदपि न्यस्तमर्थजातं यदागमे ॥ ६१ ॥
मनसश्चेंद्रियाणां च जयाद्यो निर्विकारधीः ॥
धर्मध्यानस्य स ध्याता शांतो दांतः प्रकीर्तितः ॥६२॥

अर्थ—ए रीते सर्व धारी लेवु. ते धर्मध्यानमा जे मुनिनी बुद्धि पेठी छे, तेणे एने तथा एना जेवा बीजा पण जे आगम-सिद्धांतमा पदार्थना समूह स्थाप्या छे तेनु चिंतन करवु ॥६१॥ जे मननो अने इंद्रियनो जय करीने निर्विकार बुद्धिवालो थयो तेने धर्मध्याननो ध्याता कह्यो छे वली शांतदांतपणु पण तेहनेज होय ॥ ६२ ॥

परैरपि यदिष्टं च स्थितप्रज्ञस्य लक्षणं ॥
घटते ह्यत्र तत्सर्वं तथा चेदं व्यवस्थितं ॥ ६३ ॥
प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ ! मनोगतान् ॥
आत्मन्येवात्मसंतुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ ६४ ॥

अर्थ—परदर्शनी पण स्थितप्रज्ञनु लक्षण एम कहे छे अने ते सर्व इहां घटे छे, तेमज इहां व्यवस्थित होय ते जाणवु ॥ ६३ ॥ हे अर्जुन ! जेवारे कंदर्पने छोडे अने मनना सर्व कामने त्यागी आत्मसंतोषी थईने आत्माने विषे रहे ते प्राणीने तेवारे स्थितप्रज्ञावंत कहीए ॥ ६५ ॥

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ॥
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ ६६ ॥

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ॥
नाभिनंदति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६६ ॥

अर्थ.—जेहने दुःखमां उद्वेग नथी अने सुखनी इच्छा नथी, तथा जेहना राग, भय अने क्रोध गया छे ते मुनिने स्थितबुद्धिवालो कहिये ॥ ६५ ॥ जेने विषय उपर 'स्नेह' नथी, जेवुं तेवुं शुभ अशुभ मले तोपण रागद्वेष नथी, हे अर्जुन ! तेनी बुद्धि रुडी छे एम जाणवुं ॥ ६६ ॥

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ॥
इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६७॥

शांतो दांतो भवेदीदृगात्मारामतया स्थितः ॥
सिद्धस्य हि स्वभावो यः सैव साधकयोग्यता ॥६८॥

अर्थ.—हे अर्जुन ! जेम काचबो अंगने संहरी-संकोची राखे तेम इंद्रिओने विषयथी पाछी वाले तेनी बुद्धि मोटी छे ॥ ६७ ॥ ते शांत गुण अने दांतगुणी होय, तेने आत्मारामपणे आत्मामां रह्यो कहिये सिद्धिनो स्वभाव पण एवोज छे, अने एवा जे होय तनेज साधकतापणानी योग्यता कहिये ॥ ६८ ॥

ध्यातायमेव शुक्लस्याप्रमत्तः पादयोर्द्वयोः ॥
पूर्वविद् योग्ययोगी च केवली परयोस्तयोः ॥६९॥

अनित्यत्वाद्यनुप्रेक्षा ध्यानस्योपरमेऽपि हि ॥
भावयेन्नित्यमभ्रांतः प्राणा ध्यानस्य ताः खलु ॥७०॥

अर्थ —ए धणी शुक्लध्यानना बे पायानो अप्रमत्त थको ध्यावनार थाय, पूर्वधरपणे योगी होय अथवा अयोगी होय, पण केवलीपणे होय ते पछी शेष बे पायाने ध्यावे ॥ ६९ ॥

ध्यानने विरामकाले अनित्यत्वादि भावना छांडे नहीं, विश्रम रहितपणे नित्य भावना भावे ते ध्यानना प्राण जाणवा ॥ ७०॥

तीव्रादिभेदभाजः स्युर्लेश्यास्तिस्र इहोत्तराः ॥
लिंगान्यत्रागमश्रद्धा विनयः सद्गुणस्तुतिः ॥ ७१ ॥
शीलसंयमयुक्तस्य ध्यायतो धर्ममुत्तमं ॥
स्वर्गप्राप्तिफलं प्राहुः प्रौढपुण्यानुबंधिनीं ॥ ७२ ॥

अर्थः—इहां पाछली त्रण लेश्याओ छे एटले तेजो, पद्म अने शुक्ल ए त्रण लेश्या जे छे ते तीव्र, तीव्रतर तीव्रत्तम ए त्रण भेदनी भजनारी छे तेना ए चिन्ह छे जे आगमनी श्रद्धा, विनय, रुडा गुणनी स्तवना करवी ॥ ७१ ॥ शील अने संयमयुक्त प्राणीने उत्तम धर्मध्यान ध्यावे थके स्वर्गप्राप्तिफल कह्युं छे. ते मोटा पुण्यानुबंधी पुण्यने पामे ॥ ७२ ॥

ध्यायेच्छुक्लमथ क्षांतिमृदुत्वार्जवमुक्तिभिः ॥
छद्मस्थोऽणौ मनो धृत्वा व्यपनीय मनो जिनः ॥७३॥
सवितर्कं सविचारं सपृथक्त्वं तदादिमं ॥
नानानयाश्रितं तत्र वितर्कपूर्वकश्रुतं ॥ ७४ ॥

अर्थ.—जे समतापणे तथा निष्कपटपणे अने जीवनमुक्तपणे एवी स्थिति राखीने शुक्लध्यानने ध्यावे, अने छद्मस्थपणे अणुमां मन धरीने रह तेवार रागद्वेषने जीते ॥ ७३ ॥ सपृथक्त्वसवितर्कसविचार, ए नाम शुक्लध्याननो पहलो पायो तेने नानाविध नये सहित विचारपूर्वक श्रुते करी ध्याववो ॥ ७४ ॥

अर्थव्यंजनयोगानां विचारोऽन्योन्यसंक्रमः ॥
पृथक्त्वं द्रव्यपर्यायगुणांतरगतिः पुनः ॥ ७५ ॥

त्रियोगयोगिन साधोर्वितर्काद्यन्वित ध्यदः ॥
ईषच्चलत्तरगाऽब्धे क्षोभाभावदशानिभ ॥ ७६ ॥

अर्थः—अर्थ, अक्षर अन योग एना जे विचार तेनु माहोमाह सक्रमण तेनु नाम पृथक्त्व कहिये; ते केवु छे ? के द्रव्य, गुण अने पर्याय तेमा गति छे जेनी एवु छे ए पहलो भेद ॥ ७५ ॥ त्रण योगे उपरम्या जे योगी ते साधुने वितर्कादिक थोडा चचळ तरंग छे, जेमा एहवो जे समुद्र ते क्षोभनो जे अभाव तेनी दशा सरखु छे ॥ ७६ ॥

एकत्वेन वितर्केण विचारेण च मयुत ॥
निर्वातस्थप्रदीपाभ द्वितीय त्वेकपर्ययम् ॥ ७७ ॥
सूक्ष्मक्रियानिवृत्ताख्य तृतीय तु जिनस्य तत् ॥
अर्धरुद्धाङ्गयोगस्य रुद्धयोगे द्वयस्य च ॥ ७८ ॥

अर्थ—एकत्ववितर्कविचार नाम जे बीजो पायो ते पवन रहित जे दीवो ते सरखो छे ए बीजो पायो ते एक पर्याय रूप छे ॥ ७७ ॥ सूक्ष्मक्रियानिवृत्ति नाम त्रीजो पायो ते केवलीने होय, तेमा बादर जे काययोग तेने अर्द्ध रुंध्यो छे, अने मन तथा वचन ए बे योगने समस्त रुंधे त्यारे त्रीजो पायो ध्यावे ॥ ॥ ७८ ॥

तुरीय तु समुच्छिन्नक्रियमप्रतिपाति तत् ॥
शैलवन्निःप्रकपस्य शैलेश्य विश्ववेदिन ॥ ७९ ॥
एतच्चतुर्विध शुक्लध्यानमत्र द्वयो॰ फल ॥
आद्ययो सुरलोकाप्तिरन्त्ययोस्तु महोदय. ॥ ८० ॥

अर्थ.—हवे चोथा पायामा क्रिया उच्छेदी छे अने

पोते पर्वतनी पेरे अप्रतिपाति थयो छे, एहवो विश्ववेदी, जगतना सर्व भावनो जाण जे केवली ते निःप्रकंप पर्वतनी माफक घनीभूत थया शैलेशीकरण करे ॥ ७९ ॥ ए चार प्रकारनुं शुक्लध्यान छे, तेनु फल कहे छे इहां प्रथम बे पायामा जे काल करे ते स्वर्गगति पामे अने उपरना बे पायामा काल करवाथी मोक्ष पामे ॥ ८० ॥

आश्रवापायससारानुभावभवसंततीः ॥
अर्थ विपरिणाम वानुपश्येच्छुक्लविश्रमे ॥ ८१ ॥

द्वयोः शुक्ला तृतीये च लेश्या सा परमा मता ॥
चतुर्थ. शुक्लभेदस्तु लेश्यातीत. प्रकीर्तित ॥ ८२ ॥

अर्थ —शुक्लध्यानने विश्रामे आश्रवनो नाश देखे, संसारना स्वरूपने भवनी परंपरा देखे अने अन्य पदार्थ आत्मानु विपरिणामपणु जुए ॥ ८१ ॥ ए शुक्लध्यानना प्रथम बे पायामा बे लेश्या तथा त्रीजे पाये तो परम उत्कृष्ट शुक्ललेश्या कही छे, अने चोथो पायो जे छे ते तो लेश्याये रहित कह्यो छे ॥८२॥

लिंग निर्मलयोगस्य शुक्लध्यानवतोऽवध. ॥
असमोहो विवेकश्च व्युत्सर्गश्चाभिधीयते ॥ ८३ ॥

अवधाद्उपसर्गेभ्यः कपते न बिभेति च ॥
असमोहान्न सूक्ष्मार्थे मायास्वपि च मुह्यति ॥८४॥

अर्थ —शुक्लध्यानवालाने निर्मल योग होय, तेना लक्षण कहे छे अहिंसक होय, मोहरहित, विवेकी होय अने त्यागबुद्धिये युक्त होय ॥ ८३ ॥ वली अवधी थयो माटे उपसर्ग अने

परिसह तेथी कपे नही तथा नीह पण नहीं ए अहिंसक लक्षण होय १, तथा सूक्ष्म अर्थमा, वली मायामा मुझाय नहीं, ए असमोह एटले मोहरहितनु लक्षण कह्यु २ ॥ ८४ ॥

विवेकात्सर्वसंयोगाद्भिन्नमात्मानमीक्षते ॥
देहोपकरणासंगो व्युत्सर्गाज्जायते मुनि. ॥ ८५ ॥
एतद्ध्यानक्रमं शुद्धं मत्वा भगवदाज्ञया ॥
य. कुर्यादेतदभ्यासं संपूर्णाध्यात्मविद्भवेत् ॥ ८६ ॥

अर्थ'—सर्व संयोगथी आत्माने जुदो देखे, ए विवेकनु लक्षण छे ३, देह तथा उपकरणनी त्यागबुद्धिये असंगानुष्ठान वर्त्ते छे, ए व्युत्सर्गनु लक्षण छे ४ ए चार लक्षण ६६ मा श्लोकमा कह्या छे तेनो ए अर्थ विवरीने कर्यो ए लक्षणे जे मुनि होय ते ज्ञानपणु पामे ॥ ८५ ॥ ए रीते ध्याननो जे अनुक्रम ते शुद्ध रीते जाणीने, प्रभुनी आज्ञा प्रमाण एनो अभ्यास जे करशे ते संपूर्ण अध्यात्मज्ञानी थाशे ॥ ८६ ॥

इति ध्यानाधिकार. षोडश ॥



अथ ध्यानस्तुत्याधिकारः

यत्र गच्छति परं परिपाकं पाकशासनपदं तृणकल्पं ॥
स्वप्रकाशसुखबोधमयं तद्ध्यानमेव भवनाशि भजध्वं॥१

अर्थः—माटे उत्कृष्ट परिपक्व ध्यान पामे थके मुनिराज ते इद्रनी पदवीने पण तृण बरावर गणे, माटे जे थकी सुखे करी आत्माने प्रकाशकारी ज्ञान प्रगटे एवु समारनु नाश करनारु ध्यान सेवनु ॥ १ ॥

आतुरैरपि जडैरपि साक्षात्
सुत्यजा हि विषया न तु रागः ॥
ध्यानवांस्तु परमद्युतिदर्शी
तृप्तिमाप्य न तमृच्छति भूयः ॥ २ ॥

अर्थः—कामातुर जे प्राणी तथा जड जे प्राणी ते पण प्रगटपणे विषयसुखने सुखे छाडे, पण रागदशा छाडवी दुर्घट छे, अने ध्यानवत मुनि तो मात्र परमात्मानो ज दर्शनी छे ते तो ध्यानमा तृप्ति पामीने फरीथी रागद्वेषने वाछे नही ॥ २ ॥

या निशा सकलभूतगणानां
ध्यानिनो दिनमहोत्सव एषः ॥
यत्र जाग्रति च तेऽभिनिविष्टा
ध्यानिनो भवति तत्र सुषुप्तिः ॥ ३ ॥

अर्थः—सर्व प्राणीने निद्रारूप जे रात्रि जाय छे ते ध्यानदशावालाने ए रात्री ते जागृत महोत्सवनो दिवस छे,

अने सपारी जीव विषयमा लीन थका जे वेलाये जागे छे ते वेला ध्यानवाला मुनिराजने शयनरूप छे ॥ ३ ॥

सप्लुतोद्रु इगाधुजलाना सर्वत' सकलकर्मफलाना ॥
सिद्धिरस्ति खलु पत्र तदुचेर्ध्यानमेव परमार्थनिदान ॥४

अर्थ.—जेम वपराया विनाना (अगड कुवानु) पाणी डोहोलु रहे छे तेम जेमा सर्वथकी सकल कर्मना फलनी सिद्धि एहवो जे ध्यानरूप घट जे जलमा रमतो होय, (पाणी वपरातु होय) त्या जल निर्मल होय; माटे सकल क्रियाफलनी सिद्धि ध्यानथी छे, ध्यान ते परम अर्थनु कारण छे ॥ ४ ॥

बध्यते न हि कपायसमुत्थैर्मानसैर्न नतभूपनमद्भिः ॥
अत्यनिष्टविषयैरपि दु.खैर्ध्यानवान्निभृतमात्मनि लीन'

अर्थ—जे ध्यानवान् पुरुष ते कपायजनित मने करी बधातो नथी तेहने जो राजानी श्रेणी आवी नमस्कार करे, तो पण तेनु चित्त डोहोलाय नही, अने अनिष्ट विषयनी प्राप्तिना दु खे करी पण निश्चलपणु छोडे नहि, तेने आत्माने विषे लीन कहिये ॥ ५ ॥

स्पष्टदृष्टसुखसभृतमिष्ट
ध्यानमस्तु शिवशर्मगरिष्ट ॥
नास्तिकस्तु निहतो यदि न ॥
स्यादेवमादिनयवाङ्मयदडात् ॥ ६ ॥

अर्थ—प्रगट दीठु अने मोक्षसुखे भर्यु एवु जे ध्यान ते इष्ट छे, एटले मोक्षसुखथी पण ध्यान मोटु छे, पण जिहा सुधी

शास्त्रना दृष्टथकी नास्तिकभावने अतिशयपणे हण्यो नथी तिहां सुधी नथी, पण नास्तिकभावे रहित जे ज्ञान ते मोटुं छे ॥ ६ ॥

यत्र नार्कविधुतारकदीपज्योतिषां प्रसरतामवकाशः ॥
ध्यानभिन्नतमसामुदितात्मज्योतिषातदपि भाति रहस्य

अर्थ—जेनी आगल सूर्यनु तेज, तथा चद्रमा अने तारानु तेज, वली दीपकना तेजनो प्रकाश अल्प छे, एवु जे ध्यान तेणे करीने भेदाणो छे अज्ञानरूप अधकार जे प्राणीनो एहवा मुदित आत्मावालानु तेज ते गुप्तपणे पण आत्माने विषे शोभे छे ॥ ७ ॥

योजयत्यमितकालवियुक्तां प्रेयसीं शमरतिं त्वरितं यत् ॥
ध्यानमित्रमिदमेव मतं नः किं परैर्जगति कृत्रिममित्रैः॥८॥

अर्थ—शमतारतिरूप स्त्रीनी साथे प्राणीने घणा कालथी वियोग हतो ते क्षणमा वियोग भागीने सयोग मिलावे एहवो ध्यान रूप परममित्र छे, ते ध्यानमित्र अमारे प्रमाण छे, एम ध्यान करनार प्राणी बोले छे, माटे ससारमा कृत्रिम परमित्रथी शु थाय ? ते कृत्रिम मित्रो करता तो ध्यानमित्र घणो श्रेष्ठ छे ॥ ८ ॥

वारितस्मरबलातपचारे
शीलशीतलसुगंधिनिवेशे ॥
उच्छ्रितप्रशमतल्पनिविष्टो
ध्यानधाम्नि लभते सुखमात्मा ॥ ९ ॥

अर्थः—हवे ध्यानने रंगमदिरनी उपमा आपे छे जिहा कामरूप ताप टल्यो छे, अने शीलरूप शीतल सुगधी पसरी रही छे तेवी बेठकने विषे शमतारूप मोटी तलाइ छे, ते उपर आत्मा बेठो थको पूर्ण आनद पामे छे; एवु ध्यानरूप मदिर छे ॥ ९ ॥

शीलविष्टरदमोदकपीठ प्रालिहार्यसमतामधुपर्कैः॥
ध्यानधाम्नि भजति स्फुटमात्माऽऽत्मपूतपरमातिथिपूजा

अर्थ—ध्यानमंदिरमा शीलरूप सिंहासने इंद्रियदमन रूप जलनो पानोट छे, अने शमतारूप पोलीओ ते एवा ध्यानघरमा पवित्रपणे आत्माने तेडीने तेनी मधुपर्क करी परोणागत करे छे ॥ १० ॥

आत्मनो हि परमात्मनि योऽ
भूद्भेदबुद्धिकृत एव विवाद. ॥
ध्यानसंधिकृदमु व्यपनीय,
द्रागभेदमनयोर्वितनोति ॥ ११ ॥

अर्थ—आत्मा अने परमात्माने विषे जे भेदबुद्धिनो विवाद हतो, एटले तेमा पडितना विवादरूप झघडा हता तेने ध्यानरूप मधिपाले एटले ध्यानी पुरुष ते विवादोने टाल्या अने जलदीथी ए बेउनु अभेदपणु करी आप्यु ॥ ११ ॥

कामृत विषभृते फणिलोके ?
क क्षयिण्यपि विधौ त्रिदिवे वा ?।
काप्सरो रतिमता त्रिदशाना ?
ध्यान एव तदिद बुधसेव्य ॥ १२ ॥

अर्थ—विषथकी भरेलो जे नागलोक तिहा अमृत क्याथी होय ? तेम दिन दिन क्षय पामतो जे चद्रमा तेमा अमृत किहाथी होय ? अने देवलोकमा अप्सराना योगे राता जे देवता तेमा पण अमृत किहाथी होय ? माटे ए मात्र ध्यानरूप अमृत ज सत्य छे, तेने ज पडिते सेववु ॥ १२ ॥

गोस्तनीषु न सितासु सुधायां नापि नापि वनिताधरबिंबे॥
तं रसं कमपि वेत्ति मनस्वी ध्यानसंभवधृतौ प्रथते यः॥१३॥

अर्थ—गायना स्तनमां जे रस नथी, जे साकरमा रस नथी अने जे रस अमृतमां पण नथी, तेमज स्त्रीना अधर जे होठ तेमां पण जे रस नथी ते रस ध्यानथी प्रगटयो अने मनो-पथी निस्तर्यो एहवो जे कोइक अपूर्व रस तेने तो कोइक पंडितज जाणे छे ॥ १३ ॥

इत्यवेत्य मनसा परिपक्वध्यानसंभवफले गरिमाणं ॥
तत्र यस्य रतिरेनमुपैति प्रौढधामभृतमाशु यशःश्रीः॥१४॥

अर्थ—ए प्रकारे मने करीने परिपक्व जे ध्यान, तेथी प्रगटयुं जे फल तेहने मोटाइपणे जाणीने तेमां जे रति पामे ते महातेजवंत कांतिवान पुरुष छे अने तेने ज यशलक्ष्मी वरशे ॥१४॥

॥ इति श्री ध्यानस्तुत्यधिकारः सप्तदशः समाप्तः ॥
॥ इति श्री महोपाध्यायश्रीयशोविजयगणिविरचिते अध्यात्मसारप्रकरणे पंचमपरिच्छेदः ॥



अथ आत्मनिश्चयाधिकार.

आत्मध्यानफल ध्यानमात्मज्ञान च मुक्तिद ॥
आत्मज्ञानाय तन्नित्य यत्न' कार्या महात्मना ॥१॥
ज्ञाते ह्यात्मनि नो भूयो ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥
अज्ञाते पुनरेतस्मिन् ज्ञानमन्यन्निरर्थक ॥ २ ॥

अर्थ—आत्माने ध्याननु फल ते ध्यान छे, पण आत्मज्ञान होय तेरागेज तेने मुक्ति आपे, माट ज्ञान ते मोटु छे, तो मोटा पुरुषे आ मज्ञान भणी उद्यम करवो ॥ १ ॥ जेणे आत्माने जाण्यो तने फरी बीजु कइ जाणवानु रह्यु नथी, अने जिहा सुधी आत्माने जाण्यो नथी तिहा सुधी बीजु सर्व जाण्यु ते निरर्थक छे ॥ २ ॥

नवानामपि तत्त्वाना ज्ञानमात्मप्रसिद्धये ।
येनाजीवादयो भावा स्वभेदप्रतियोगिन ॥ ३ ॥
श्रुतो ह्यात्मपराभेदोऽनुभूत सस्तुतोऽपि च ॥
निसर्गादुपदेशाद्वा वेत्ति भेद तु कश्चन ॥ ४ ॥

अर्थ—नवे तत्त्वनु जे जाणपणु करवु ते पण आत्मज्ञान प्रगट करवाने अर्थे छे, कारण के अजीवादिक जे भाव ते पण आत्मज्ञानवडे शमाय छे ॥ ३ ॥ पोतानो अने पारको जे भेद तेने भेदरूपे साभळ्यो, अनुभव्यो, परिचय थयो थको, सहजे अथवा उपदेशथकी कोइक भेदने जाण्यो ॥ ४ ॥

तदेकत्वपृथक्त्वाभ्यामात्मध्यान हितावह ॥
वृथैवाभिनिविष्टानामन्यथा धीर्विडबना ॥ ५ ॥

एक एव हि तत्रात्मा स्वभावसमवस्थित ॥
ज्ञानदर्शनचारित्रलक्षणप्रतिपादितः ॥ ६ ॥

अर्थ—ते माटे एकत्वपृथक्त्वे करी आत्मनान हित-कारी थाय, नही तो फोकटपणे मिथ्यात्वनी बुद्धिनी विटंबना छे ॥ ५ ॥ तिहा एक ज आत्मा स्वभावपणे रह्यो छे, ते आत्मा तो ज्ञान, दर्शन अने चारित्ररूप लक्षणे कह्यो छे ॥ ६ ॥

प्रभानैर्मल्यशक्तीना यथा रत्नान्न भिन्नता ॥
ज्ञानदर्शनचारित्रलक्षणाना तथात्मनः ॥ ७ ॥

आत्मनो लक्षणाना च व्यवहारो हि भिन्नता ॥
षष्ठयादिव्यपदेशेन मन्यते न तु निश्चयः ॥ ८ ॥

अर्थ—जेम रत्ननी काति अने निर्मलता ए तेउनी शक्ति काइ जुदी नथी, तेम ज्ञान, दर्शन अने चारित्रलक्षणे जे आत्मा ते काइ जुदो नथी ॥ ७ ॥ आत्मा अने आत्मानु लक्षण ए ने व्यवहारे जुदा छे. ते षष्ठि आदे विभक्तिने व्यपदेशे करी मानिये, पण निश्चयथी नही ॥ ८ ॥

घटस्य रूपमित्यत्र यथा भेदो विकल्पजः ॥
आत्मनश्च गुणाना च तथा भेदो न तात्त्विकः ॥९॥

शुद्ध यदात्मनो रूप निश्चयेनानुभूयते ॥
व्यवहारो भिदाद्वारानुभावयति तत्पर ॥ १० ॥

अर्थ—जेम घट अने घटनु रूप तेनो भेद ते विकल्प-मात्र छे, तेम आत्माने अने गुणने परमार्थे भेद नथी ॥ ९ ॥

जे आत्मस्प शुद्ध छे ते निश्चयनये करी अनुभवाय छे, अने व्यवहारवडे पण क० काया ते पण ओलखाय छे ॥ १० ॥

वस्तुतस्तु गुणाना तद्रूप न स्वात्मन· पृथक् ॥
आत्मा स्यादन्यथाऽनात्मा ज्ञानाद्यपि जड भवेत् ॥११

चैतन्यपरसामान्यात्सर्वपामेकतात्मना ॥
निश्चिता कर्मजनितो भेद· पुनरूपप्लव· ॥ १२ ॥

अर्थ—वस्तुभावे तो गुणनु अने आत्मानु रूप जुदु नथी जो जुदु कहीए तो आत्मा छे ते अनात्मा थाय, ज्ञानादिक जड थाय ॥ ११ ॥ चैतन्य पर सामान्यपणे सर्व आत्मानी एकता छे, अने निश्चयथी तो कर्म प्रकृत्ये जे भेद ते विटंबनारूप छे ॥ १२ ॥

मन्यते व्यवहारस्तु भूतग्रामादिभेदत ॥
जन्मादेश्च व्यवस्थातो मिथो नानात्वमात्मना॥१३॥

न चैतनिश्चये युक्त भूतग्रामो यतोऽखिल ॥
नामकर्मप्रकृतिज, स्वभावो नात्मन· पुन ॥१४॥

अर्थ— जीवसमूहना भेदथी तथा बाल जुवान वृद्ध ए अवस्थावडे माहामाहे विचित्रपणु जणाय छे, एम व्यवहारनयवालो माने छे ॥ १३ ॥ पण ए वात निश्चयनयवालो मानतो नथी ते एम कहे छे के, ए जीवने सर्व अवस्था नामकर्मना स्वभावथी प्रगट छे; पण ए आत्मानो मूल स्वभाव नथी ॥ १४ ॥

जन्मादिकाऽपि नियत परिणामो हि कर्मणा ॥
न च कर्मकृतो भेद स्यादात्मन्यविकारिणि ॥१५॥

आरोप्य केवल कर्मकृता विकृतिमात्मनि ॥
भ्रमति भ्रष्टविज्ञाना भीमे ससारसागरे ॥ १६ ॥

अर्थ—जन्म जरादिक परिणाम कर्मने वश छे, अने आत्मा तो अविकारी छे तेथी कर्मनो भेद आत्माने संभवे नही, केमके ए आत्मस्वभाव नथी ॥ १५ ॥ जन्म जरादिक कर्मप्रकृति छे, अने कर्मजनित मानने केवल आत्माने विषे आरोपीने अज्ञानी भयकर संसारसमुद्रमा भमशे ॥ १६ ॥

उपाधिभेदज भेद वेतज्ञः स्फटिके यथा ॥
तथा कर्मकृत भेदमात्मन्येवाभिमन्यते ॥ १७ ॥

उपाधिकर्मजो नास्ति व्यवहारास्त्वकर्मणः ॥
इत्यागमवचो लुप्तमात्मवैरूप्यवादिना ॥ १८ ॥

अर्थ—स्फटिकमा उपाधि भेदे जेम मूर्ख प्राणी भेद माने छे, तेम आत्माने विषे प्रगट्यो जे कर्मकृत भेद ते माने छे ॥ १७ ॥ पोताना व्यवहारथी कर्मजनित जे उपाधि ते नथी, एम मानता आत्मविरूपवादी आगमनु वचन लोपे छे ॥ १८ ॥

एकक्षेत्रस्थितोऽप्येति नात्मा कर्मगुणान्वयम् ॥
यथाऽभव्यस्वभावत्वाच्छुद्धो धर्मास्तिकायवत् ॥१९॥
यथा तैमिरिकश्चद्रमप्येक मन्यते द्विधा ॥
अनिश्चयकृतोन्मादस्तथात्मानमनेकधा ॥ २० ॥

अर्थ—धर्मास्तिकायनी परे एक क्षेत्रमा रह्यो छे तो पण कर्मगुणना सयोगने पामतो नथी, एवो आत्मा रुडा स्वभावथी शुद्ध छे ॥ १९ ॥ जेम तिमिर के० ग्रहणवेलो एक चद्रने बे चद्र माने छे तेम निश्चयनयनी जाण विनानो जे प्राणी ते उन्माद ममत्वे करी आत्माने अनेक प्रकारे माने छे ॥ २० ॥

यथानुभूयते लोक स्वरूपास्तित्वमन्वयात् ॥
साहश्यास्तित्वमप्येकमविरुद्ध तथात्मना ॥ २१ ॥

सदसद्वादपिशुनात् मगोप्य व्यवहारत. ॥
दर्शयत्येकतारत्न मता शुद्धनयः सुहृत् ॥ २२ ॥

अर्थ—जेम अन्वयथी एकस्वरूपास्तिपणाने अनुभविये छीए तेम मरगापणे जे विद्यमानपणु छे ते थकी आमाने एक कहिये ॥ २१ ॥ व्यवहारनयथी सदुअसद्वादरूप जे चाडियो तेने छुपावीन शुद्ध नयरूप जे मित्र छे, ते एकतारूप रत्नने देखाडे छे ॥ २२ ॥

नृनारकादिपर्यायैर प्युत्पन्नविनश्वरैः ॥
भिन्नैर्जहाति नैकत्वमात्मद्रव्य सदान्वयि ॥ २३ ॥

यथैक हेमकेयूरकुण्डलादिषु वर्त्तते ॥
नृनारकादिभावेषु तथात्मैको निरजनः ॥ २४ ॥

अर्थ—नर, नारकादि पर्याय जे उपजे छे अने विणशे छे, ते भिन्न पर्याय काइ रम्य नथी, माटे ते पर्याये करीने सदा अन्वयी-जे शुद्धनयी आत्मतत्त्व ते एकत्वपणाने छाडतु नथी ॥ २३ ॥ जेम सुवर्ण एक छे, पण बाजुबंध, कठी, कुडलादिक पर्याये वर्त्ते छे, तेम आत्मा एक छे, पण नर, नारकादिकना भवे करी भिन्न छे, पण आत्मा तो एक निरजन छे ॥ २४ ॥

कर्मणस्ते हि पर्याया नात्मन. शुद्धसाक्षिणः ॥
कर्मक्रियास्वभावो यदात्मा तु न स्वभाववान् ॥२५॥

नाणूना कर्मणो वार्सा भवसर्ग स्वभावज ॥
एककाविरहो भावास च तत्त्वातर स्थित ॥ २६ ॥

अर्थ–जे नर, नारकादिक भव ते तो सर्व कर्मना पर्याय छे, पण शुद्ध साक्षी निश्चयनये आत्मपर्याय छे, अने कर्मक्रियारूप जे स्वभाव ते काइ आत्मानो मूल स्वभाव नथी, आत्मा तो अज, अविनाशी स्वस्वभावी छे ॥ २५ ॥ केवल कर्मना जे परमाणुआ तेथी आ संसार सर्ग स्वाभाविक नथी परतु जीव अने पुद्गल ए बेना मलवाथी ते उत्पन्न थयेल छे, अने ते बेना परस्पर विरहथी संसार सर्गनी उत्पत्ति नथी, तेमन बीजा कोइ तत्त्वथी पण संसारनी स्थिति संभवती नथी. एकेक उज्वलताने विषे भावथकी नव तत्त्वमा रह्यु छे ॥ २६ ॥

श्वेतद्रव्यकृत श्वैत्य भित्तिभागे यथा द्वयोः ॥
भात्यनतर्भवत्सत्य प्रपचोऽपि तथेक्षता ॥ २७ ॥

यथा स्वप्नावबुद्धयोऽर्थो विबुद्धेन न दृश्यते ॥
व्यवहारमतः सर्गो ज्ञानिना न तथेक्षते ॥ २८ ॥

अर्थ—जेम श्वेत द्रव्ये कीधेलु जे चित्रामण ते भीतना भागमा (सबधथी) शोभे, तेम अनत भवसत्यताये ए प्रपचने जाणवो, एटले जीव कर्मनो सबध छुटी गया पछी संसार रहतो नथी ॥ २७ ॥ जेम स्वप्नमा दीठेलो अर्थ जाग्या पछी देखाय नही, तेम व्यवहारे स्वर्गादिक मार्ग श्रेष्ट छे, पण नियत प्रमाणी ज्ञानी पुरुषने ससार न जणाय ॥ २८ ॥

मध्याह्ने मृगतृष्णाया पयः पूरो यदेक्ष्यते ॥
तथा सयोगजः सर्गो विवेकाख्यातिविप्लवे ॥ २९ ॥

गधर्वनगरादीनामबरे डम्बरो यथा ॥
तथा सयोगजः सर्वो विलासो वितथाकृतिः ॥३०॥

अर्थ—जेम मध्याह्ने मृगजलवडे पृथ्वी उपर जलपूर देखाय छे, तेम मयोगे उपनी जे सृष्टि ते निश्चयनी दृष्टिए नाश देखाय छे ॥ २९ ॥ जेम गंधर्वनगरवडे आकाशे आडंबर जणाय, तेम मयोगे प्रगटया जे सर्वे विलास ते जूठा छे ॥३०॥

इति शुद्धनयायत्तमेकत्व प्राप्तमात्मनि ॥
अशादिकल्पनाप्यस्य नेष्टा यत्पूर्णवादिनः ॥ ३१ ॥

एक आत्मेति सूत्रस्याप्ययमेवाशयो मत ॥
प्रत्यग्ज्योतिषमात्मानमाहुः शुद्धनया. खलु ॥३२॥

अर्थ—ए रीते शुद्ध नये जे एकत्वपणु ग्रह्यु ते आत्माने विषे पाम्यु; अने अशादिकनी जे कल्पना ते पूर्ण वादीने वहाली नथी ॥ ३१ ॥ सूत्रमा, " एगे आया " एवो जे पाठ छे, ते एज आशये कह्यो छे एक प्रगट ज्योतिरूप जे आत्मा ते तेनरूप छे, एम शुद्ध नयवाला कहे छे ॥ ३२ ॥

प्रपंच संचयक्लिष्टान्मायारूपाद्बिभेमि ते ॥
प्रसीद भगवन्नात्मन् ! शुद्धरूप प्रकाशय ॥ ३३ ॥

देहेन सममेकत्व मन्यते व्यवहारवित् ॥
कथंचिन्मूर्ततापत्तेर्वेदनादिसमुद्भवात् ॥ ३४ ॥

अर्थ—निश्चय नय कहे छे के, प्रपंच संचयवडे क्लिष्ट एटले दुःखरूप एवु जे ए मायारूप छे, ते थकी हे भगवन् ! हे आत्मा ! हु बीहु छु; माटे प्रसन्न थाओ अने शुद्धरूप प्रकाश करो ! ॥ ३३ ॥ कोइक प्रकार रूपीपणु पाम्यो जे आत्मा तेने वेदनादिक उपजे छे, माटे व्यवहार नयवालो शरीर साथे आत्मानु एकत्वपणु माने छे ॥ ३४ ॥

तन्निश्चयो न सहते यदमूर्त्तो न मूर्त्तता ॥
अशेनाप्यवगाहेत पावकः शीततामिव ॥ ३५ ॥
उष्णस्याग्नेर्यथा योगाद् घृतमुष्णमिति भ्रमः ॥
तथा मूर्त्तांगसंबंधादात्मा मूर्त्त इति भ्रमः ॥ ३६ ॥

अर्थ–पण ते वात निश्चयवालो सही शकतो नथी, जेम अग्नि शीतलता पामतो नथी, तेम जे अरूपी आत्मा छे ते अंशे करीने पण रूपीपणाने पामतो नथी ॥ ३५ ॥ जेम बलता अग्निने संयोगे घृत उष्ण छे एवो भ्रम थाय छे, तेम रूपी शरीरने संयोगे आत्मा पण रूपी दीसे छे, ए पण भ्रमणाज देखाय छे ॥३६॥

न रूपं न रसो गंधो न च स्पर्शो न चाकृतिः ॥
यस्य धर्मो न शब्दो वा तस्य का नाम मुर्त्तता?॥३७॥
दृशाऽदृश्य हृदाग्राह्य वाचामपि न गोचरः ॥
स्वप्रकाश हि यद्रूप तस्य का नाम मुर्त्तता ? ॥३८॥

अर्थ—केमके रूप, रस, गंध, स्पर्श अने संस्थान एटला वाना आत्माने नथी; ए तो पुद्गलने छे, तेमज बाह्य धर्म पण नथी, शब्द नथी, तेवार आत्माने शी रीते रूपी कहवाय ? ॥ ३७ ॥ वली आत्मा नजर देखाय एवो पण नथी, मनथी ग्रहवाय एवो पण नथी, तथा वचने पण अगोचर छे, जेनु रूप पोताना प्रकाशे छे, पण बीजाना प्रकाशे नथी, तेने रूपी केम कहेवाय ? ३८ ॥

आत्मा सत्यश्चिदानंदः सूक्ष्मात्सूक्ष्मः परात्परः ॥
स्पृशत्यपि च मूर्त्तत्व तथा चोक्त परैरपि ॥३९॥
इंद्रियाणी पराण्याहुरिंद्रियेभ्यः पर मन. ॥
मनसोऽपि परा बुद्धिर्योबुद्धेः परमस्तु सः ॥ ४० ॥

अर्थ—आत्मा मन्य छे, चिदानदमयी छे, सूक्ष्मथी पण सूक्ष्म छे, उत्कृष्टमा उत्कृष्ट छे, ते मूर्त्तपणु केम फरसे ? तेमज परदर्शनमा श्रीकृष्ण कहे छे–हे अर्जुन ! शरीरमा इद्रियो मोटी छे, अने इद्रियोथी मन मोटु, मन करता बुद्धि मटोटी छे अने तेथी आत्मा मोटो छे ॥ ३९–४० ॥

विकले हत लोकेऽस्मिन्नमूर्त्ते मूर्त्तताभ्रमात् ॥
पश्यत्याश्चर्यवज् ज्ञानी वदत्याश्चर्यवद्वच. ॥ ४१ ॥
वेदना येन मूर्त्तत्व निमित्ता स्फुटमात्मन. ॥
पुद्गलाना तदापत्तेः किं त्वशुद्धस्वशक्तिजा ॥ ४२ ॥

अर्थ—हत इति खेदे आ विकल लोकने विष अमूर्त आत्माने विष मूर्त्तपणाना भ्रमथकी जे ज्ञानी पुरुष छे ते अचरज देखे छे, अने वचन पण अचरजना बोले छे ॥ ४१ ॥ जे माटे जीवात्मान मूर्त्त निमित्त वदना प्रगटपणे छे, एम जो मानीए तो पुद्गलने वदना थइ जोइय, त माटे ए वेदना तो आत्मानं अशुद्ध शक्तिथी अनुभवाय छे ॥ ४२ ॥

अक्षद्वारा यथा ज्ञान स्वय परिणमत्यय ॥
तथेष्टानिष्टविषयस्पर्शद्वारेण वेदना ॥ ४३ ॥
विपाककाल प्राप्यासौ वेदनापरिणामभाक् ॥
मूर्त्ते निमित्तमात्र नो घटे दटवदन्यथि ॥ ४४ ॥

अर्थ—इद्रियद्वारे करी जेम ज्ञानदिशा पोतानी मेल परिणमे छे, तेम इष्ट अनिष्ट विषय स्पर्शद्वारे करी वदना परिणमे छे ॥ ४३ ॥ विपाककाल पामीने आ वेदना परिणामने जेम आत्मा भजे छे, तेथी अमारे मते मूर्त्तपणु ते

निमित्तमात्र थयुं, अन्वयी कं० सहचारी थयु जेम घटने विषे दंड सहचारी छे तेनी पेठे जाणवु ॥ ४४ ॥

ज्ञानाख्या चेतना बोधः कर्म्माख्य द्विष्टरक्तना ॥
जतोः कर्मफलाख्या सा वेदना व्यपदिश्यते ॥४५॥
नात्मा तस्मादमर्त्तत्व चैतन्य चातिवर्त्तते ॥
अतो देहेन नैकत्व तस्य मूर्त्तेन कर्हिचित् ॥ ४६ ॥

अर्थ—ज्ञान नाम चेतना ते बोध छे अने कर्म नाम द्विष्ट रक्तता छे, तवडे जीवने कर्मफल नाम वेदना व्यपदेश पामे छे ॥ ४५ ॥ त माटे अमूर्त आत्मा ते चैतन्यपणाने उलघे नही अने मूर्तिमान् देह साथे आत्माने कोइ प्रकारे एकत्वपणु छेज नही ॥ ४६ ॥

सन्निकृष्टान्मनोवाणीकर्मादेरपि पुद्गलात् ॥
विप्रकृष्टाद्धनादेश्च भाव्येव भिन्नात्मनः ॥ ४७ ॥
पुद्गलाना गुणोमूर्त्तिरात्मा ज्ञानगुणः पुनः ॥
पुद्गलेभ्यस्ततो भिन्नमात्मद्रव्य जगुर्जिना. ॥ ४८ ॥

अर्थ.—ए रीते कर्म वर्गणाना, मनोवर्गणाना, वचनवर्गणानां जे आत्माने समीपवर्ति, एकत्वपणवर्ति एवा धनधनादिक जे पुद्गल त तो सर्व आत्माथी भिन्न क० दूर छे ॥ ४७ ॥ केमके पुद्गलनो गुण तो मूर्तिमान् छे, अने आत्मा तो ज्ञानगुणमय छे, माटे पुद्गलथी आत्मद्रव्य जुदु छे एम प्रभु कहे छे ।४८।

धर्मस्य गतिहेतुत्व गुणो ज्ञान तथात्मनः ॥
धर्मास्तिकायात्तद्भिन्नमात्मद्रव्य जगुर्जिना. ॥४९॥

अधर्म स्थितिहेतुत्व गुणो ज्ञान गुणोऽस्तुमान् ॥
मतो धर्मास्तिकायान्यमात्मद्रव्य जगुर्जिना: ॥५०॥

अर्थ —धर्मास्तिकायनो गुण गतिहेतु छे अने आत्मानो गुण ज्ञान छे, माटे धर्मास्तिकायथी आत्मा जुदो छे एम प्रभु कहे छे ॥ ४९ ॥ अधर्मास्तिकायना गुण स्थितिहेतु छे अने आत्माना ज्ञान गुण छे, माटे अधर्मास्तिकायथी आत्मद्रव्य जुदु छे एम प्रभु कहे छे ॥ ५० ॥

अवगाहो गुणो व्योम्नो ज्ञान त्वस्वात्मनो गुण. ॥
व्योमास्तिकायात्तद्भिन्नमात्मद्रव्य जगुर्जिना. ॥५१

आत्मज्ञानगुण सिद्ध: समयो वर्त्तनागुण' ॥
तद्भिन्न समयद्रव्यादात्मद्रव्य जगुर्जिना. ॥ ५२ ॥

अर्थ.—आकाशना गुण अवगाह छे, अने आत्मानो गुण ज्ञान छे, माटे आकाशास्तिकाय श्री आत्मद्रव्य जुदु छे एम प्रभु कहे छे ॥ ५१ ॥ आत्मा ज्ञान गुण सिद्ध छे, काल वर्त्तनारूप छे, माटे कालथी आत्मद्रव्य जुदु छे, एम प्रभु कहे छे ॥ ५२ ॥

आत्मनस्तदजीवेभ्यो विभिन्नत्व व्यवस्थित ॥
व्यक्तिभेदनयादेशादजीवत्वमपीष्यते ॥ ५३ ॥

अजीवा जन्मिन शुद्धभावप्राणव्यपेक्षया ॥
सिद्धाश्च निर्मलज्ञाना द्रव्यप्राणव्यपेक्षया ॥ ५४ ॥

अर्थ:—ए प्रमाणे अजीवथी आत्मानु जुदापणु सत्य ठर्यु, पण भेदे करी देशथकी अजीवपणु पण वखीए छीए ॥ ५३ ॥ जेम निर्मल ज्ञानवत सिद्धने द्रव्यप्राणनी अपेक्षा रहित पणे अजीवपणु कहिये, तेम शुद्ध भावप्राणनी अपेक्षा रहित जीवने अजीव कहिये छीए ॥ ५४ ॥

इन्द्रियाणि बल श्वासोछ्वासो ह्यायुस्तथा पर ॥
द्रव्यप्राणाश्चतुर्भेदा' पर्यायाः पुद्गलाश्रिताः ॥ ५५॥

भिनास्ते ह्यात्मनोऽत्यत तदेतैर्नास्ति जीवन ॥
ज्ञानधैर्यमदाश्वासनित्यस्थितिविकारिभिः ॥ ५६ ॥

अर्थः—इद्रिय, बल, श्वासोच्छ्वास अने आयुष्य ए रीते द्रव्यप्राण चार भेदे छे एना पर्याय तो पुद्गलने आश्री रह्या छे ॥ ५५ ॥ ते आत्माथी अत्यत जुदा छे, माटे एवड काइ आत्माने जीववु नथी ए पर्याय तो ज्ञान, धैर्य, तेना श्वासनी जे काइ नित्य स्थिति तेणे करी वर्जित छे ॥ ५६ ॥

एतत्प्रकृतिभूताभिः शाश्वतोभिस्तु शक्तिभि' ॥
जोवत्यात्मा सदेत्येपा शुद्धद्रव्यनयस्थिति. ॥५७॥

जीवो जीवति न प्राणैर्विना तैरेव जीवति ॥
इद चित्र चरित्र को हत पर्यनुयुञ्जता ॥ ५८ ॥

अर्थ·—ए प्रकृतिरूप शाश्वती शक्ति तेणे करीने आत्मा सदैव जीवे छे, ए शुद्ध द्रव्यनयनी स्थिति जाणवी ॥ ५७ ॥ जीव काइ प्राणे करीने जीवतो नथी, ए जीव तो प्राण विना जीवे छे, ए अचबानी वात विचित्रकारी चरित्र मामली कोण न हर्षे ? अने ए वात शुद्ध नये कोण न जोडे ? ॥ ५८ ॥

नात्मा पुण्य न वा पापमेते यत्पुद्गलात्मके॥
आद्यबालशरीरस्योपादानत्वेन कल्प्यते ॥ ५९ ॥

पुण्य कर्म शुभ प्रोक्तमशुभ पापमुच्यते ॥
तत्कथ तु शुभ जतून् यत् पातयति जन्मनि ॥६०॥

अर्थः—आत्मा पुण्य नहीं तेम पाप पण नहीं, केमके

पुण्य ने पाप तो पुद्गलरूप ने प्रथम नालवाले जे शरीर तेने उपादानभाव कल्पे छे ॥ ५९ ॥ जे शुभ कर्म ते पुण्य कहीयें, अने जे अशुभ कर्म ते पाप कहिये, तेथारे ते शुभ कर्म जे छे ते जीवने समारमा केम पाडे छे ? ॥ ६० ॥

न ह्यायसस्य बंधस्य तपनीयमयस्य च ॥
पारतत्र्याविशेषेण फलभेदोऽस्ति कश्चन ॥ ६१ ॥
फलाभ्यां सुखदुःखाभ्यां न भेदः पुण्यपापयोः ॥
दुःखान्न भिद्यते हंत यत पुण्यफलं सुखं ॥ ६२ ॥

अर्थ.—एक लोहनी बेडी अने एक सुवर्णनी बेडी ते पण परवशपणु छे, माटे विचारीए तो फलभेद काइ नथी, तेम अशुभ कर्म ते लोहनी बेडी अने जे शुभ कर्म ते सुवर्णनी बेडी ॥ ६१ ॥ सुखना फल अने दु खना जे फल प्रगटे छे, तेथी पुण्यपाप मध्ये काइ भेद नथी जे थकी पुण्य सुख निलसे ए पुण्यनु फल छे, ते पण दु खरूप ज छे ॥ ६२ ॥

सर्वं पुण्यफलं दुःखं कर्मोदयकृतत्वतः ॥
तत्र दुःखप्रतीकारे विमूढाना सुखत्वधीः ॥ ६३ ॥
परिणामाच्च तापाच्च संस्काराच्च बुधैर्मतं ॥
गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखं पुण्यभवं सुखं ॥ ६४ ॥

अर्थ.—माटे सर्व पुण्यनु फल ते दु खरूप छे, केमके ए कर्मना उदयथी थाय छे, माटे दुःखना प्रतीकारने विषे मूर्खने सुखबुद्धि उपजे छे ॥ ६३ ॥ पंडित कहे छे के, परिणामथी, तापथी अने संस्कारथी गुणवृत्ति विरोधी एहवु जे पुण्य, तेथी नीपन्यु जे सुख ते दुःखप्राय छे ॥ ६४ ॥

देहपुष्टैर्नरामर्त्यनायकानामपि स्फुट ।
महाजपोपणस्येव परिणामोऽतिदारुण: ॥ ६५ ॥

जलूका: सुखमानिन्य: पिबन्त्यो रुधिर यथा ॥
भुजाना विषयान्न याति दशामन्तेऽतिदारुणा ॥६६॥

अर्थ:—नरने, राजाने तथा इन्द्रादिकने पण जे सुखमा शरीरनी पुष्टि थाय छे ते मोटा चोकडानी पेठे छे, ए कथा उत्तराध्ययनसूत्रमा कही छे तिहाथी जाणवी जे वारे वध थयो, ते वारे परिणाम अतिदु:ख छे ॥ ६५ ॥ जेम जलो लोही पीता थका सुख माने छे तेम विषय भोगवता थका प्राणी सुख माने छे, पण तेथी अते माठी दशाने पामे छे ॥ ६६ ॥

तीव्राग्निसगसशुष्यत्पयसामयसामिव ॥
यत्रौत्सुक्यात्सदाक्षाणा तप्तता तत्र किं सुख ? ॥६७॥
प्राक्पश्चाचारतिस्पर्शात्पुटपाकमुपेयुषि ॥
इद्रियाणा गणे तापव्याप एव न निर्वृत्ति: ॥ ६८ ॥

अर्थ:—आकरी अग्निमा बलतराए करी लोह पाणी पीये छे तेम ज्या मन इद्रियोनी उत्कठाथी घणीज बलतरा रहे छे त्या शु सुख छे ? ॥ ६७ ॥ पहेला अथवा पछी पण जे थकी अरति उपजे, तेने जडकाथी विपाक पाम थके इद्रियोना समूहमा ताप व्यापे पण सुख न थाय, एटले पहला बाध्या जे कर्म ते जेवारे भोगववामा आवे तेवारे पण अरति लइनेज आवे, अने पछी ते कर्मो विपाके पण दु:ख आपे ॥ ६८ ॥

सदा यत्र स्थितो द्वेषोल्लेख: स्वप्रतिपथिषु ॥
सुखानुभवकालेऽपि तत्र तापहत मन: ॥ ६९ ॥

स्कधात् स्कधांतरारोपे भारस्येव न तत्त्वत' ॥
अक्षारहालादेऽपि दु,ग्वस्य सस्कारोऽपि निवर्त्तते ॥७०॥

अर्थ —जेहने मदेव शत्रु उपर द्वेष रह्यो छे ते प्राणी जो घरमा सुखे बेठो होय, तो पण तेहने सुख न होय तेम विषयसुखमा अनुभवकाले पण विषयना तापे करी चेतु मन हणायु छे, तेहने सुख क्याथी होय ? ॥ ६९ ॥ जेम एक खभा उपरथी बीना खभा उपर भार लीधो, पण तत्त्वथी भार उतर्यो नहीं एम इद्रियोने आनदे दु खनो सस्कार मटतो नथी ॥ ७० ॥

सुख दु ख च मोहश्च तिस्रोपि गुणवस्तय' ॥
विरुद्धा अपि वर्त्तते दुःखजात्यनतिक्रमात् ॥ ७१ ॥
क्रुद्धनागफणाभोगोपमो भोगोद्भवोऽखिल ॥
विलासश्चित्ररूपोऽपि भयहेतुर्विवेकिना ॥ ७२ ॥

अर्थ —सुख, दु ख अने मोह ए त्रणे जो के विरुद्ध छे, तो पण गुणवृत्तिये वर्ते छे, केमके दु खनो जातिने उल्लघन करी शक्ता नथी, माटे गुणवर्तीरूप छे ॥ ७१ ॥ क्रोधी नागनी फणना विस्तार सरखो सर्व भोगविलास छे वली ते भोग-विलास यद्यपि विचित्ररूप छे, तथापि विवेकीजनने ते भयनो हेतु छे ॥ ७२ ॥

इत्यमेकत्वमापन्न फलत: पुण्यपापयो' ॥
मन्यते यो न मूढात्मा नातस्तस्य भवोदधे. ॥ ७३ ॥
दु खैकरूपयोर्भिन्नस्तेनात्मा पुण्यपापयो. ॥
शुद्धनिश्चयत सत्यचिदानदमय सदा ॥ ७४ ॥

अर्थ.—ए रीते फलनी अपेक्षाये पुण्यपापनुं एकत्वपणु

ठगाव्यु, पण जे मूर्ख न मानशे ते समारमा भटकशे, अने जे मानशे ते भवसागर तरी जशे ॥ ७३ ॥ पुण्य अने पाप ए बेउ एक मरखा दुःखस्वरूप ज छे, ते थकी आत्मा भिन्न छे, शुद्ध निश्चयनयथी सदा सतचिदानदमय छे ॥ ७४ ॥

तत् तुरीयदशाव्यंगरूपमाचरणान्वयात् ॥
भात्युष्णोशीतशीलस्य घननाशाद्रवेरिव ॥ ७५ ॥

जायते जाग्रतोऽक्षेभ्यश्चित्रार्थासुखवृत्तयः ॥
सामान्य तु चिदानदरूप सर्वदशास्वपि ॥ ७६ ॥

अर्थः—ए वात ते चोथी दिशायें जाणवा योग्य छे जेम वर्षाकालमा मघ वरमी रह्या पछी वादलनो नाश थाय छे, अने सूर्यप्रभा शोभे छे, तेम व्यगरूप विचित्र एहवा आचरण विशेष करी चोथी दशामा शोभे छे ॥ ७५ ॥ जागता जीवने इंद्रियोनी सुखवृत्तिओ नाना प्रकारनी थाय छे, पण सामान्य जे चिदानद-स्वरूप तेने तो सर्व दशामा सरखु सुख छे ॥ ७६ ॥

स्फुलिंगनै यथा वह्निर्दीप्यते ताप्यतेऽथवा ॥
नानुभूतिपराभूती तयेताभि. किलात्मन. ॥ ७७ ॥

साक्षिण· सुखरूपस्य सुषुप्तौ निरहकृते ॥
यथा भान तथा शुद्धविवेके तदतिस्फुट ॥ ७८ ॥

अर्थ.—तणखे करीने जेम अग्नि दीप नहीं, तपे नहीं, तेम अनुभव पराभवादिके करीने आत्माने कड नथी ॥ ७७ ॥ निद्रावस्थामा जेम सुखस्पनो साक्षी जे आत्मा तेने अहकारे रहित सुखनो भास थाय छे, तेम शुद्ध विवेकने विषे तो प्रगटपणे सुख भासे छे ॥ ७८ ॥

तच्चिदानंदभावस्य भोक्तात्मा शुद्धनिश्चयात् ॥
अशुद्धनिश्चयात्कर्म्मकृतयोः सुखदुःखयोः ॥ ७९ ॥
कर्मणोऽपि च भोगस्य स्रगादेर्व्यवहारतः ॥
नैगमादिव्यवस्थापि भावनीयाऽनया दिशा ॥८०॥

अर्थ —ते माटे शुद्ध निश्चयनयथकी आत्मा चिदानंदभावनो भोक्ता छे, अने अशुद्ध निश्चयनय थकी कर्मे कर्या जे सुखदुःख ते तेनो भोक्ता छे ॥ ७९ ॥ फूलनी शय्या तथा फूलना भूषण प्रमुखने विषे भोगकर्मनी व्यवहारथी प्रवृत्ति छे, तेम नैगमादिकनयनी व्यवस्था पण आवी रीते भावीये; ते नीचे लख्या प्रमाण छे ॥ ८० ॥

कर्त्तापि शुद्धभावानामात्मा शुद्धनयाद्विभुः ॥
प्रतीत्य वृत्तिं यच्छुद्धक्षणानामेष मन्यते ॥ ८१ ॥
अनुपप्लवसाम्राज्ये विसभागपरिक्षये ॥
आत्मा शुद्धस्वभावानां जननाय प्रवर्त्तते ॥ ८२ ॥

अर्थ —शुद्धभावनो कर्त्ता आत्मा शुद्धनयथी समर्थ छे, जेवार शुद्धपरिणामी छे, ते समर्थ वीर्यवृत्तिने आश्रयीने शुद्धभावना कर्त्ता छे, एम शुद्धनयवालो माने छे ॥ ८१ ॥ उपद्रव अंतरायादिक रहित साम्राज्यपणाने विषे दुष्ट भावनो नाश थये छते आत्मा शुद्धस्वभाव प्रगट करवाने प्रवर्ते छे ॥ ८२ ॥

चित्तमेव हि संसारो रागादिक्लेशवासितं ॥
तदेव तैर्विनिर्मुक्तं भवांत इति कथ्यते ॥ ८३ ॥
यश्च चित्तक्षणक्लिष्टो नासावात्मा विरोधतः ॥
अनन्यविकृतं रूपमित्यर्थेत्त्व शब्दः पदं ॥ ८४ ॥

अर्थः—जे रागादिक क्लेशवडे चित्त वासित होय ते संसार कहेवाय, अने रागद्वेषथी मुकायु तेनु नाम मुक्ति छे, एम जाणवु ॥ ८३ ॥ रागद्वेषे व्याप्यो जे मननो क्लिष्ट परिणाम छे ते काइ आत्मानो नथी, आत्मानु रूप तो सत्यार्थपणे अविकारी छे ॥ ८४ ॥

श्रुत्वानुपयोगश्चेत्येतन्मिथ्या यथा वचः ॥
तथात्मा शुद्धरूपश्चेत्येव शब्दनया जगुः ॥ ८५ ॥
शुद्धपर्यायरूपस्तदात्मा शुद्धस्वभावकृत् ॥
प्रथमाप्रथमत्वादिभेदोऽप्येव हि तात्त्विकः ॥ ८६ ॥

अर्थः—जेम आत्मानो उपयोग श्रुतगत छे, ए खोटुं छे, तेम शब्दनयवाला कहे छे, के आत्मा शुद्धरूप नथी, ए पण खोटु छे ॥ ८५ ॥ शुद्ध पर्यायरूप आत्मा, पूर्वपश्चात्पणानो जे भेद तेपणे शुद्ध स्वभावनो कर्त्ता छे, एम तात्त्विक छे ॥ ८६ ॥

ये तु दिक्पटदेशीया' शुद्धद्रव्यतयात्मनः ॥
शुद्धस्वभावकर्तृत्वं जगुस्तेऽपूर्वबुद्धयः ॥ ८७ ॥
द्रव्यास्तिकस्य प्रकृतिः शुद्धा संग्रहगोचरा ॥
येनोक्ता समतौ श्रीमत्सिद्धसेनदिवाकरैः ॥ ८८ ॥

अर्थः—दिगंबर एम कहे छे के, शुद्ध द्रव्यार्थ वली जेम उपयोग विना श्रुत भण्यो तेनु पण शुद्ध स्वभावनु कर्त्तापणु जतु नथी, केमके ते तेने स्वभावेज परिणम छे, एम अपूर्व बुद्धिनु कहेवु छे ॥ ८७ ॥ द्रव्यास्तिक नयनी जे शुद्ध प्रकृति छे, ते

ग्रहनय उपर चाले, केमके सम्मति प्रथमा सिद्धसेन सूरिए
कह्यु छे ॥ ८८ ॥

तन्मते च न कर्तृत्व भावाना सर्वदान्वयात् ॥
कूटस्थ' केवल तिष्ठत्यात्मा साक्षित्वमाश्रित'॥८९॥
कर्त्तु व्याप्रियते नायमुदासी नइव स्थित ॥
आकाशमिव पंकेन लिप्यते न च कर्मणा ॥ ९० ॥

अर्थः—तने मत कर्त्तापणु नथी, केमके सदैवभावनो अन्वय छे, माटे कूटस्थ केवल निर्विक्रिय जे आत्मा ते साक्षीपणाने आश्रीने रह्यो छे ॥ ८९ ॥ करवानो व्यापार करतो नथी, उदासीनी पेठ रह्यो छे जेम कचर आकाश लेपातु नथी तेम रूम आत्मा लेपातो नथी ॥ ९० ॥

स्वरूप तु न कर्त्तव्य ज्ञातव्य केवल स्वत. ॥
दीपेन दीप्यते ज्योतिर्नित्यपूर्व विधीयते ॥९१॥
अन्यथा प्रागनात्मा स्यात्स्वरूपानुवृत्तित' ॥
भव हेतुसहस्रेणाप्यात्मता स्यादनात्मन ॥ ९२ ॥

अर्थ.—पोताना रूपने नवीन करवु नथी, मात्र पोताना रूपने पोतायकी केवल जाणी लेवु छे जेम दीवेथी ज्योति दीप छे तम नित्य शाश्वत आमा स्वप्रकाश होवाथी पोत पोतान प्रकाशे छे ॥ ९१ ॥ एम आत्माने स्वप्रकाश अने शाश्वत अगीकार करीए नही अने परप्रकाश तथा कर्तृत्व सिद्ध मानीए तो, पूर्वे अनात्मपणु अगीकार करवु पडशे, कमके क्रियावडे उत्पन्न थएला पदार्थनु पूर्वनु रूप जुदुज होय छे, एवो नियम छे एवी रीते आत्मानी उत्पत्तिनी पूर्वे आत्मान अनात्मा मानवो

पडशे अने क्रियावडे आत्मानुं रूपांतर थाय छे, एम मानीए तो आत्मानी आवृत्ति अगीकार करवी पडशे. आवृत्ति अगीकार करीए तो ममार विषयक हजारो कृत्यरूप हेतुवडे हजारो रूप बदलाशे. त्यारे पूर्व पूर्वनु रूप अनात्मा अने उत्तर उत्तरक्रियाजन्य रूप आत्मा मानवो पडशे, अने एम कर्याथी छेवटे अनवस्था दोष प्राप्त थशे ॥ ९२ ॥

नये तेनेह नो कर्त्ता किं त्वात्मा शुद्धभावभृत् ॥
उपचारात्तु लोकेषु तत्कर्तृत्वमपीष्यते ॥ ९३ ॥
उत्पत्तिमात्र धर्माणा विशेषग्राहिणो जगुः ॥
अव्यक्तिरावृत्तेस्तेषा नाभावादिति का प्रमा? ॥९४॥

अर्थः—ते माटे आ नयने विषे कर्तापणु नथी, केमके आत्मा शुद्ध भावनो वरनार छे अने लोकमा उपचारथी तेनु कर्त्तापणु कहे छे ॥ ९३ ॥ विशेषग्राही जे ज्ञानी पुरुषो छे ते पूर्वोक्त रीते आत्माने क्रियासिद्ध मानता नथी, किंतु आत्माना धर्मोनी उत्पत्ति माने छे अहीं कोइने शका थशे के, जेम आ-त्मा अव्यक्त छे तेम आत्माना धर्म पण अव्यक्त छे; तो ज्यारे आत्मानी उत्पत्ति मानता नथी त्यारे तेना धर्मनी उत्पत्ति पण केम मनाय ? तेनु समाधान ए के, केटली एक अव्यक्त वस्तुओ आकाशनी पेठे जेमनी तेम रहे छे अने केटली एक रूपातरने पामे छे आत्मा शाश्वता व्यक्त छे अने तेना धर्म अशाश्वता व्यक्त छे, माटे तेओनी आवृत्ति थाय छे केमके जेम आत्मानी अनावृत्तिमा घणा प्रमाणो छे, तेम आत्माना धर्मनी आवृत्ति न थवामा कोइ प्रमाण नथी, तेथी आत्मानी पुनरावृत्ति थती नथी पण आत्माना धर्मोनी पुनरावृत्ति थाय छे, एवु सिद्ध थयु ॥९४॥

मत्व च परसताने नोपयुक्त कथचन ॥
सतानिनामनित्यत्वात्सतानोऽपि न च ध्रुव· ॥९५॥
व्योमाव्युत्पत्तिमत्त्वदयगाद्दात्मना तत· ॥
नित्यता नात्मधर्माणा तदृष्टांतवलादपि ॥ ९६ ॥

अर्थ.—आत्मानु उत्पत्तिरहितपणु दृष्टातवडे दृढ करे छे. जेम पिता पुत्ररूप परिवारनी उत्पत्तिमा पूर्व पूर्वपितारूप कारणथी उत्तर उत्तरपुत्ररूप कार्यनी उत्पत्ति थवाथी पितापणानो अभाव अने पुत्रपणानो भाव थाय छे, एम सकलना चालता जेम पितानो नाश तेम पुत्रनो पण नाश थाय छे तेम अनात्माथी आत्मानी उत्पत्तिरूप प्रवाहथी पूर्वनो अभाव अने उत्तरनो भाव थता पूर्वनी पेठे उत्तरना नाशनो पण समव सिद्ध थाय छे, एथी आत्मा अशाश्वत अने नाशरूप ठरशे ॥ ९५ ॥ आकाशना दृष्टातवडे आत्मानु अचलपणु अने आत्माना धर्मोनु चलायमान-पणु सिद्ध थाय छे जेम आकाश उत्पत्ति रहित छे तेथी तेनु रूपातर थतु नथी, तेमज आत्मा पण उत्पत्ति रहित होवाथी तेनु रूपातर थतु नथी अने आत्माना धर्म उत्पत्तिवान छे तेथी तेनु रूपातर थाय छे अहीं पण आकाशनु व्यतिरेकपणे दृष्टात लेवु जे वस्तु आकाशनी पेठे उत्पत्ति रहित नथी होती तेनु रूपांतर थाय छे ॥ ९६ ॥

रजुसूत्रनयसूत्र· कर्तृता तस्य मन्यते ॥
स्वय परिणमत्यात्मा य य भाव यदा यदा ॥९७॥
कर्तृत्व परभावानामसौ नाभ्युपगच्छति ॥
क्रियाद्वय हि नैकस्य द्रव्यस्याभिमत जिनै· ॥९८॥

अर्थ·—ज्यारे आत्मानु रूपांतर थतुं नथी त्यारे परिणामवादनो उच्छेद थशे, एवी आशंका करीने तेनो उत्तर कहे छे. ऋजुसूत्रनयवालो, ज्यारे ज्यारे जे जे भावना परिणामने आत्मा पामे छे त्यारे त्यारे ते ते भावरूप कर्मवडे परिणामरूप उत्पत्ति माने छे, तथापि आत्माने कर्तृत्वपणे बीजा भावनी प्राप्ति थती नथी, केमके एक द्रव्यमा बे क्रिया संभवे नही, एवु जिनने अभिमत छे ॥ ९७–९८ ॥

भूतिर्या हि क्रिया सैव स्यादेकद्रव्यसंततौ ॥
न साजात्यं विना च स्यात्परद्रव्यगुणेषु सा ॥९९॥
न चैवमन्यभावानां न चेत्कर्त्ताऽपरो जनः ॥
तदा हिंसादयादानहरणाय व्यवस्थितः ॥ १०० ॥

अर्थः—भूति एटले भाव अने क्रिया ए बन्नेनो एक अर्थ छे ते एक द्रव्य संततिने विषे सामान्य विना न थाय, अने द्रव्यना गुणने विषे पण न थाय; केमके कोइ पण द्रव्य अपरभावनो कर्त्ता होतो नथी ॥ ९९ ॥ एमज आत्माने विषे अन्य भावनु कर्त्तापणु नथी. त्यारे शिष्य पूछे छे के हिंसा, दया, दान वगेरेनी व्यवस्था केम रहेशे ? ॥ १०० ॥

सत्यं पराश्रयं न स्यात् फलं कस्यापि यद्यपि ॥
तथापि स्वगतं कर्म स्वफलं नाभिवर्त्तते ॥ १०१ ॥
हिनस्ति न परं कोऽपि निश्चयान्न च रक्षति ॥
नचायुःकर्मणो नाशो मृतिर्जीवनमन्यथा ॥१०२॥

अर्थ·—त्यारे गुरु कहे छे, यद्यपि ए तारु बोलवु साचु छे केमके कोइने पण पराश्रये फल थतु नथी. (तथापि पोताने

विषे रहेलुं जे कर्म ते पोताना फलने विष प्रवर्त्ततुं नथी) ॥ १०१ ॥ निश्चयवडे बीजा कोइने कोइ मारतो नथी वा कोइनु कोइ रक्षण करतो नथी, आयु कर्मनो नाश थाय नहीं अने मृत्यु जीवन अन्यथा थाय नहीं ॥ १०२ ॥

हिंसादयाविकल्पाभ्यां स्वमताभ्यां तु केवलं ॥
फलं विचित्रमाप्नोति परापेक्षा विना पुमान् ॥१०३॥
शरीरी म्रियतां मा वा ध्रुवं हिंसा प्रमादिनः ॥
दयैव यतमानस्य वधेऽपि प्राणिनां क्वचित् ॥ १०४ ॥

अर्थ.—हिंसा अने दयानी पण मात्र कल्पना छे पोताना मते करी तो परनी अपेक्षाथी पुरुष केवल विचित्र फलने पामे छे ॥ १०३ ॥ जीवनो घात थाय अथवा न थाय, तो पण जे प्रमादी जीव छे तेने निश्चये करी हिंसा थाय छे, अने जे दयावान प्राणी छे तेना हाथे कदाच कोइ जीवनो घात थइ जाय, तो पण तेने हिंसा लागती नथी ॥ १०४ ॥

परस्य युज्यते दानं हरणं वा न कस्यचित् ॥
न धर्मसुखयोर्यत्ते कृतनाशादिदोषतः ॥ १०५ ॥
भिन्नाभ्यां भक्तवित्तादिपुद्गलाभ्यां च ते कुतः ? ॥
स्वत्वापत्तिर्यतो दानं हरणं सत्वनाशनं ॥ १०६ ॥

अर्थः—कोइ बीजाने दान देतो नथी, अने बीजानी पासेथी कोइ काइ हरण करी लेतो नथी, धर्म अने सुखने विषे पण दान तथा हरणनो संभव नथी, केमके कृतनाश अने अकृतनो प्रसंग इत्यादि दोष प्राप्त थशे जेम दान कर्युं तेनो नाश थाय तेने कृतनाश कहे छे, अने जे बीजाने आप्यु नथी तेनु हरण

करवु ते अकृतागम प्रसग कहेनाय एवा दोष आत्माने निष प्राप्त थशे ॥ १०५ ॥ केमके भोजन तथा धनादिक जे पुद्गल त तो आत्माथी भिन्न छे, तो तेमा क्याथी पोतापणुं आव्यु ? माटे दान अने हरण ते पोताथी ज नाश छे ॥ १०६ ॥

कर्मोदयाच्च तद्दान हरण वा शरीरिणा ॥
पुरुषाणा प्रयासः कस्तत्तोपनमति स्वतः ॥ १०७ ॥
स्वागताभ्या तु भावाभ्या केवल दानचौर्ययो. ॥
अनुग्रहोपघातौ स्तः परापेक्षा परस्य न ॥ १०८ ॥

अर्थः—वली ते दान अने हरण प्राणीने कर्मना उदयथकी छे, त्या पुरुपने शो प्रयास छे ? ते तो पोतानी मेलेज उदय पामे छे ॥ १०७ ॥ पोतामा रह्या एवा जे दान अने हरणना भाव तेणे करीने एकथी उपकार थाय, बीजाथी उपघात थाय; त्या परनी अपेक्षा पने नही ॥ १०८ ॥

पराश्रितानां भावाना कर्तृत्वाद्यभिमानतः ।
कर्मणा बध्यतेऽज्ञानी ज्ञानवास्तु न लिप्यते ॥१०९॥
कर्त्तैवमात्मनो पुण्यपापयोरपि कर्मणोः ॥
रागद्वेपाशयाना तु कर्त्तेष्टानिष्टवस्तुपु ॥ ११० ॥

अर्थः—पर आश्रित जे भाव तेनो हु कर्त्ता छुं, एम अभिमानथी कहेतु, एवा कर्मे अज्ञानी बधाय छे, पण ज्ञानी तेना कर्मे लेपाता नथी ॥ १०९ ॥ माटे आत्मा ते पुण्य-पापरूप कर्मनो कर्त्ता छे, राग-द्वेप आशयनो कर्त्ता छे अने इष्ट अनिष्ट वस्तुने विपे पण आत्मा कर्त्ता छे ॥ ११० ॥

रज्यते द्वेष्टि चार्थेषु तत्तत्कार्यविकल्पत. ॥
आत्मा यदा तदा कर्म भ्रमदात्मनि युज्यते ॥१११॥
स्नेहाभ्यक्तत नोरग रेणुनाश्लिष्यते यथा ॥
रागद्वेषानुविद्धस्य कर्मबधस्तथामत· ॥ ११२ ॥

अर्थ —जेवारे ते ते कर्मना विकल्पथी आत्माने कोइ पदार्थ उपर रागदशा अथवा द्वेष उपजे छे तेवारे आत्मामा कर्मना भ्रम जोडाय छे ॥ १११ ॥ तल लगाडेला शरीरे जेम रजनो लेप वलगे छे तेम रागी अने द्वषी आत्माने कर्मनो बध वलगे छे ॥ ११२ ॥

आत्मा न व्यापृतस्तत्र रागद्वेषाशय सृजन् ॥
तन्निमित्तोपनम्रेषु कर्मोपादानकर्मसु ॥ ११३ ॥
लोह स्वक्रिययाभ्योति भ्रामकोपलसनिधौ ॥
यथा कर्म तथा चित्र रक्तद्विष्टात्मसनिधौ ॥११४॥

अर्थ —तिहा आत्मा पोते कोइ क्रिया करतो नथी, पण राग द्वेष करतो थको त निमित्ते पाम्या जे कर्म तना निमित्ते कर्तापणु कर्म छे, पण तिहा आत्मा तो रागद्वेष रूप कर्मनो मूकनागे छे एटले आत्मा भावकर्मनो व्यापाररत छे, पण द्रव्य कर्मनो व्यापाररत नथी ॥ ११३ ॥ जेम चमक पाषाण ते लोहन आकर्षे, तेणे करी लोह पोतानी क्रियाये चमक पासे आवी मले, तेम रागद्वेषी आत्मानी पासे कर्म आकर्षणे आवी मले छे ॥ ११४ ॥

वारि वर्षन् यथाम्भोदो धान्यवर्षी निगद्यते ॥
भावकर्म सृजन्नात्मा तथा पुद्गलकर्मकृत् ॥ ११५ ॥

नैगमव्यवहारौ तु ब्रूतः कर्मादिकर्तृता ॥
व्यापारः फलपर्यंतः परिदृष्टो यदात्मनः ॥ ११६ ॥

अर्थः—जेम पाणी वरसे छे ते लोकव्यवहारे धान्य वरसे छे एम कहीए, तेम भावकर्म करतो थको आत्मा पुद्गल कर्मनो कर्त्ता कहीए ॥ ११५ ॥ नैगम अने व्यवहारनयवाला तो कर्मादिकनो कर्त्ता आत्माने माने छे, जे आत्मानो व्यापार ते फलपर्यंत देखाय छे ॥ ११६ ॥

अन्योऽन्यानुगताना का तदेतदिति वा भिदा ॥
यावच्चरमपर्याय यथा पानीयदुग्धयोः ॥ ११७ ॥

नात्मनो विकृति दत्ते तदेषा नयकल्पना ॥
शुद्धस्य रजतस्येव शुक्तिधर्मप्रकल्पना ॥ ११८ ॥

अर्थः—परस्पर मल्या एवा जे नय तने, (एवो निर्णय यावत् चरमपर्याय छे) परतु जातिभेद केम जणाय ? जेम दूध अने पाणीना सयोगनी पेठे सग्रह माने नैगमने, अने नैगम माने सग्रहने, ए वे नय माहोमाहे भले छे एम व्यवहार पण भले छे ॥ ११७ ॥ वली शुद्धनयवालो बोले छे के, आत्माने विकार नथी. विकार ए नैगम तथा व्यवहारनयनी कल्पना छे केनी पेठे ? ते कह छे. जेम शुद्ध रूपाने छीपनो धर्म कल्पे छे तेनी पेठे जाणवु ॥ ११८ ॥

मुपितत्व यथा पाथ गत पथ्युपचर्यते ॥
तथा पुद्गलकर्मस्था विक्रियात्मनि बालिशैः ॥११९॥

कृष्ण. शोणोऽपि चोपधिर्नाशुद्ध. स्फटिको यथा ॥
रक्तोद्विष्टस्तथैवात्मा संसर्गात्पुण्यपापयो ॥१२०॥

अर्थ.—जेम पथीजनने लुटता लोक कहशे जे मार्ग लुटाणो, ए लोक वाक्य छे तेम मूर्ख प्राणी पुद्गल कर्ममा रही जेनी क्रिया करे ते आत्माने विषे माने छे ॥ ११९ ॥ जेम कालो अथवा रातो स्फटिक छे ते उपाधिथी छे, माटे तने अशुद्ध न कहिये, तेम पुण्य-पापना संयोगथी आत्मा रागी द्वेषी कहेवाय छे ॥ १२० ॥

सेयं नटकला तावद् यावद्विविधकल्पना ॥
यद्रूपं कल्पनातीतं स तु पश्यत्यकल्पक· ॥ १२१ ॥
कल्पनामोहितो जंतुः शुक्लं कृष्णं च पश्यति ॥
तस्या पुनर्विलीनायामशुक्लं कृष्णमीक्षते ॥ १२२ ॥

अर्थ.—जिहा सुधी विविध प्रकारनी कल्पना होय तिहा सुधी ए सर्व नटकलारूप छे, पण कल्पनाये अतीत जे रूप तेने तो जे अकल्प थयो होय ते देखे ॥ १२१ ॥ पण कल्पनाये मुझाणो जे जीव ते तो धोलाने कालु देखे अने कालाने धोलु देखे, अने ते कल्पना जेवार जाय तेवार तो कालाने कालुज देखे अने धोलाने धोलुज देखे ॥ १२२ ॥

तद्ध्यानं सा स्तुतिर्भक्ति सैवोक्ता परमात्मन. ॥
पुण्यपापविहीनस्य यद्रूपस्यानुचिंतनं ॥ १२३ ॥
शरीररूपलावण्यवप्रछत्रध्वजादिभि ॥
वर्णितैर्वीतरागस्य वास्तवी नोपवर्णना ॥ १२४ ॥

अर्थः—पुण्य-पाप रहित एहवा जे परमात्मा प्रभु तेना स्वरूपनु चितवबु तेनेज ध्यान कहिये, अने स्तुति पण तेज तथा भक्ति पण तेज कहिये ॥ १२३ ॥ पण शरीरना वर्णे, रूपे करी, लावण्यताए करी, समवसरणे अने छत्रे करी, तथा इंद्रध्वजादिके करी जे परमात्माने वखाणवा एहवी स्तुतिने वस्तुत· साची न कहिये ॥ १२४ ॥

व्यवहारस्तुतिः सेयं वीतरागात्मवर्त्तिना ॥
ज्ञानादीना गुणाना तु वर्णना निश्चयस्तुति ॥१२५॥
पुरादिवर्णनाद्राजा स्तुत· स्यादुपचारत· ॥
तत्त्वतः शौर्यगाभीर्यधैर्यादिगुणवर्णनात् ॥ १२६ ॥

अर्थ·—केमके ए स्तुति तो व्यवहार छे, पण जेमा वीतरागना ज्ञानादिक गुण प्रशंसवा तेहने निश्चय स्तुति कहिये ॥ १२५ ॥ जेम देश नगरादिके करी राजा वखाणवो ए उपचारे स्तुति जाणवी, पण राजानु बल, गाभीर्यता, धैर्यतानु वर्णवबु, ते निश्चयथी स्तुति कहिये ॥ १२६ ॥

मुख्योपचारधर्माणामविभागेन या स्तुति· ॥
न सा चित्तप्रसादाय कवित्व कुकवेरिव ॥ १२७ ॥
अन्यथाभिनिवेशेन प्रत्युतानर्थकारिणी ॥
सुतीक्ष्णखड्गधारेव प्रमादेन करे धृता ॥ १२८ ॥

अर्थ·—जेम कुकविनी कविताथी पडित रीझे नहीं, तेम साच उपचार देखी वहेंचण विनानी जे स्तुति करिये ते थकी चित्तप्रसन्न थाय नहीं ॥ १२७ ॥ जे पोताना हठ–कदाग्रहे करी

गुणउपचार स्तुति करी गुण माने छे, पण ते उलटी अनर्थकारी छे, जेम प्रमादे करी हाथमा झालेली तरवार ते जो कदाच पडे, तो उलटी अनर्थ-निपात करे छे, तेनीपरे ते स्तुति पण अन्यथा जाणवी ॥ १२८ ॥

मणिप्रभामणिज्ञानन्यायेन शुभकल्पना ॥
वस्तुस्पर्शितया न्याय्या यावन्नानंजनप्रथा ॥ १२९ ॥
पुण्यपापविनिर्मुक्त तत्त्वतस्त्वविकल्पक ॥
नित्य ब्रह्म सदा ध्येय मेषा शुद्धनयस्थिति ॥१३०॥

अर्थ —मणिरत्ननी कांति देखीने जेम मणिनु ज्ञान के० ओळखाण थाय छे, ए दृष्टात शुभ कल्पनाये करी आत्मानु ज्ञान थाय छे पछी वस्तुस्पर्शिकवडे करी योग्यता थाय छे, पण ज्या सुधी निरजन प्रथा नथी थई त्या सुधी धर्म छे ॥ १२९ ॥ माटे पुण्य-पाप रहितपणे तत्त्वथी निर्विकल्प एवो शाश्वतो जे आत्मा ते सदाय ध्याववो एवी शुद्ध नयनी स्थिति छे ॥१३०॥

आश्रव सवरश्चापि नात्मा विज्ञानलक्षण ॥
यत्कर्मपुद्गलादानरोधावाश्रवसवर ॥ १३१ ॥
आत्मादत्ते तु यैर्भावे स्वतत्र कर्मपुद्गलान् ॥
मिथ्यात्वाविरती योगा कषायास्ते तदाश्रवा॥१३२

अर्थ —आत्मा ज्ञानरूप छे, माटे आत्माने आश्रव सवर काइ न कहिये, पण कर्म पुद्गलनु ग्रहणु तथा रोधवु ते आश्रव सवर छे ॥ १३१ ॥ जे भाव करी स्वाधीनपणे कर्म पुद्गलने आत्मा ग्रहे छे, ते मिथ्यात्व, अविरति, कषाय अने योगरूप आश्रवे करी जाणवु ॥ १३२ ॥

भावनाधर्मचारित्रपरिषहजयादयः ॥
आश्रवोच्छेदिनो धर्मा आत्मनो भावसंवराः ॥१३३॥
आश्रवः संवरो न स्यात्संवरश्चाश्रवः क्वचित् ॥
भवमोक्षफलाभेदोऽन्यथा स्याद्धेतुसंकरात् ॥ १३४ ॥

अर्थः—अने भावना धर्म जे चारित्र छे, जेथकी परिषहनो जय थाय ते ए आश्रवनो उच्छेदक धर्म छे ए आत्माने भावसंवर कहिये ॥ १३३ ॥ जे आश्रव ते संवर न थाय, अने जे संवर ते आश्रव न थाय हेतु संकर ए बे जो कदापि एकरूप थाय, तो संसार अने मोक्ष ए बेना फल पण एक थाय, पण तेमां भेद रहे नहीं एटले ज्यां आश्रवे करी संवरनु संक्रमण थाय त्यां मोक्षफल जाणवु, अने ज्यां संवरे करी आश्रवनु संक्रमण थाय त्यां संसारफल जाणवुं ॥ १३४ ॥

कर्माश्रवांश्च संरुन्धन्नात्मा भिन्नैर्निजाशयैः ॥
करोति न परापेक्षामलभूष्णुः स्वतः सदा ॥१३५॥
निमित्तमात्रभूतास्तु हिंसाऽहिंसादयोऽखिलाः ॥
ये परप्राणिपर्याया न ते स्वफलहेतवः ॥ १३६ ॥

अर्थः—आश्रवभावने संवर करतो थको जे पोताना आत्माथी जुदा नथी एवा जे पोताना आशय तेणे करी परअपेक्षा न करे, केमके ते पोताथी सदा समर्थ छे ॥ १३५ ॥ जे हिंसा अहिंसादिक सघला पर प्राणिना पर्याय ते आत्माने निमित्तभूत छे, पण पोतान फलहेतु नथी ॥ १३६ ॥

व्यवहारविमूढस्तु हेतूंस्तानेव मन्यते ॥
बाह्यक्रियारतस्वान्तस्तत्त्वं गूढं न पश्यति ॥१३७॥

हेतुत्व प्रतिपद्यन्ते नैवेति नियमास्पृशः ॥
यावन्त आश्रवाः प्रोक्तास्तावन्तोहि परिश्रवाः॥१३८

अर्थ.---व्यवहारमूढ जे आत्मा ते परपर्यायने पोताना फलहेतु माने छे, माटे जेनु मन बाह्यक्रियामां रक्त छे तेवा प्राणी शुद्ध तत्त्वने देखता नथी ॥ १३७ ॥ जे हिंसादिक तथा अहिंसादिक परपर्याय हेतुपणु छे, तेने पडिवजे अथवा नथी पडिवजता एहवो नियम ते तो निश्चयना जे फरसनारा छे तेहने जेटला आश्रव छे तेटला संवररूप थाय ॥ १३८ ॥

तस्मादनियत रूप बाह्यहेतुषु सर्वथा ॥
नियतौ भाववैचित्र्यादात्मैवाश्रवसंवरौ ॥ १३९ ॥
अज्ञाता विषयासक्तो बध्यते विषयैस्तु न. ॥
ज्ञानाद्विद्विमुच्यते चात्मा नतु शास्त्रादिपुद्गलात् १४०

अर्थ.---ते माटे सदाय बाह्य हेतुने विषे अनियतरूप छे नियतिने विषे भावना विचित्रपणाथकी आत्मा तेज संवर आश्रवरूप छे ॥ १३९ ॥ जे अज्ञानी छे अने विषयासक्त छे, तेहिज विषयथी बधाय छे ते विषय तो आत्माने आत्मज्ञानथकी मूकाय, पण शास्त्रादिक पुद्गलथकी न मूकाय ॥ १४० ॥

शास्त्रं गुरोश्च विनयं क्रियामावश्यकानि च ॥
संवरागतया प्राहुर्व्यवहारविशारदाः ॥ १४१ ॥
विशिष्टा शक्तनुस्मात पुद्गलास्तेऽफलावहा. ॥
ये तु ज्ञानादयो भावा संवरत्व प्रयाति ते ॥१४२॥

अर्थ ---शास्त्र भणवु, गुरुनो विनय करवो, तथा आवश्यकादिक क्रिया करवी अने व्यवहारमां विचक्षण पुरुषोए संवरना

अंग कह्या छे ॥ १४१ ॥ जे रुडा मन-वचन-कायाये करी प्रवर्तवुं तेहना जे पुद्गल ते फलदायी छे, पण जे ज्ञानादिक भाव छे, ते संवरपणाने पाम छे ॥ १४२ ॥

ज्ञानादिभावयुक्तेषु शुभयोगेषु तद्गत ॥
मवरत्व समारोप्य स्मयते व्यवहारिण: ॥ १४३ ॥
प्रशस्तरागयुक्तेषु चारित्रादिगुणेष्वपि ॥
शुभाश्रवत्वमारोप्य फलभेद वदन्ति ते ॥ १४४ ॥

अर्थ:—ज्ञानादिक भावे युक्त एवा जे शुभ योग तेने विष तद्गत जे सवरत्व तेने आरोपीने व्यवहारे प्रवर्त्तक जे जीव ते हर्ष पाम छे ॥ १४३ ॥ रुडा रागे युक्त एवा जे चारित्रादिक गुण तेने विष पण शुभ आश्रवपणु आरोपीने फलभेद कह छे ॥ १४४ ॥

भवनिर्वाणहेतूना वस्तुतो न विपर्यय' ॥
अज्ञानादेव तद्भाना ज्ञानी तत्र न मुह्यति ॥ १४५ ॥
तीर्थकृन्नामहेतुत्व यत्सम्यक्त्वस्य वर्ण्यते ॥
यच्चाहारकहेतुत्व सयमस्यातिशायिन. ॥ १४६ ॥

अर्थ:—ससार तथा मोक्षनो हेतु तने वस्तुतत्त्वे काइ विपर्यास नथी, पण अज्ञानना योगथकी त जणाये विपर्यासपणु थाय छे, पण तिहा ज्ञानी पुरुष काइ मुझाता नथी ॥ १४५ ॥ जिननाम कर्मनो हेतु जे समकितने वर्णवीए छीए, ते पण उपचार कहेवाय छे, अने आहारक शरीरनो हतु जे अतिशय लब्धिवत संयमी मुनि ते पण उपचारे कहेवाय छे ॥ १४६ ॥

तप.सयमयोः स्वर्गहेतुत्व यच्च पूर्वयो॰ ॥
उपचारेण तद्युक्त स्याद् घृत दहतीतिवत ॥ १४७ ॥
येनाशेनात्मनो योगस्तेनाशेनाश्रवो मत॰ ॥
येनाशेनोपयोगस्तु तेनाशेनास्य सवर ॥ १४८ ॥

अर्थ.—जे पूर्वे कहला तप अने सयम स्वर्गहेतु छे, ते पण उपचारे कहिये सर्व परिणाम छे, पण जेम घी बळे छे ए उपचारे छे, पण अग्नि बळे छ ए खरु छ ॥ १४७ ॥ जे अशे करी आत्मा योगवतो थया ते अंशे आश्रव कहिये अने जे अशे आत्मा उपयोगी थयो ते अशे सवर कहिये ॥ १४८ ॥

तेनासावशविश्रान्तौ विश्रवाश्रवसवरौ ॥
आत्यादर्श इव स्वच्छास्वच्छभागद्वय॰ सदा॥१४९॥
शुद्धैव ज्ञानधारा स्यात्सम्यक्त्वप्राप्त्यनतर ॥
हेतुभेदाद्विशेषे तु योगधारा प्रवर्त्तते ॥ १५० ॥

अर्थ —ते माटे आ अश विश्रातिने विषे आश्रवसवर धरे छे, तेमा एक छे मलिन अने एक छे निर्मल; जेम आरिसाना पडखाडाना भाग मलिन छे अने आगलो भाग निर्मल छे तेहनी पर सदाय निर्मल मलिन ए बे भागे करीने आत्मा अरिसानी पठ शोभे छे ॥ १४९ ॥ समकित पाम्या पछी जे शुद्ध ज्ञानधारा प्रगट ते हतुभेदथकी विशेष करी योगधारा प्रवर्त्त छ ॥ १५० ॥

सम्यग्दृशा विशुद्धत्व सर्वास्वपि दशास्वत ॥
मृदुमध्यादिभावस्तु क्रियावैचित्र्यतो भवेत् ॥१५१॥

यदा तु सर्वत शुद्धिर्जायते धारयोर्द्वयो. ॥
शैलेशीमजित, स्थैर्यात्तदा स्यात्सर्वसवरः ॥१५२॥

अर्थः—समकितीने सर्व दशामा शुद्धपणुं छे, ए माटे लघु, मध्यम, उत्तम ए भाव जे छे ते क्रियाविचित्रताथी छे ॥ १५१ ॥ जेवार सर्वथी मन–वचन–कायाना योग तथा उपयोग, ए वे धारानी शुद्धि थाय तेवार शैलेशी नामे स्थिरताथी सर्व सवर होय ॥ १५२ ॥

ततोऽर्वाग् यच यावच्च स्थिरत्व तावदात्मनः ॥
संवरो योगचाचल्य यावत्तावत्किलाश्रवः ॥१५३॥
निर्जरा कर्मणोत्साडो नात्माऽसौ कर्म्मपर्यवः ॥
येन निर्जीर्यते कर्म स्वभावस्त्वात्मलक्षण ॥१५४॥

अर्थः—अने तेथी पेहला हठला गुणठाणे तो जिहा सुधी आत्माने स्थिरतापणु छे तिहा सुधी सवर वर्ते छे, अने जिहा सुधी योगनी चचलता छे तिहा सुधी निश्चयथी जाणीए जे आत्माने आश्रवपणु वर्त्ते छे, एम यावत् शैलेशीकरण सुधी समझवुं ॥ १५३ ॥ कर्मनु जे शाडवु तेने निर्जरा कहिये, पण आत्मा पोते कर्मपर्यायरूप नथी, त माटे कर्म निर्जरिये एवो जे स्वभाव ते आत्मानु लक्षण छे ॥ १५४ ॥

तत्तपो द्वादशवि र शुद्धज्ञानसमन्वित ॥
आत्मशक्तिसमुत्थान चित्तवृत्तिनिरोधकृत् ॥१५५॥
यत्र रोधः कपायाणा ब्रह्मध्यान जिनस्य च ॥
ज्ञातव्य तत्तप. शुद्धमवशिष्टं तु लघनं ॥ १५६ ॥

अर्थः—निर्जरानु कारण ते शुद्ध ज्ञाने सहित प्रगटयो अने चित्तनी चचलवृत्तिने रोकतो एहवो घार भेदे तप छे ॥ १५५ ॥ जिहा प्रभुना ध्यानयुक्त कषायनो रोध छे, ब्रह्मचर्यनु धरवु छे ते शुद्ध तप जाणवो. ए सिवाय बीजा तप ते मात्र लाघण करवा जेवो छे ॥ १५६ ॥

बुभुक्षा देहकार्श्य वा तपसो नास्ति लक्षण ॥
तितिक्षाब्रह्मगुप्त्यादिस्थान ज्ञान तु तद्वपु ॥१५७॥
ज्ञानेन निपुणेनैस्य प्राप्त चदनगधवत् ॥
निर्जरामात्मनो दत्त तपो नान्यादृश क्वचित् ॥१५८॥

अर्थ.— भूखे मरवु, शरीरने दुर्बल करवु, ए तपनु लक्षण नथी, पण जिहा ज्ञानयुक्तपणे ब्रह्मचर्यनी गुप्ति, तथा तितिक्षा के० शाति होय ते तपनु स्वरूप छे ॥ १५७ ॥ ज्ञान साथे एकता भावने पाम्यो एवो जे तप तेने तप कहिये, जेम चदन साथे गध एकताभावने पाम्यो छे, तेनीपेरे ए तप ते ज्ञाने युक्त थको आत्माने निर्जरा फल आपे, पण बीजी रीते न आपे ॥ १५८ ॥

तपस्वी जिनभक्त्या च शासनोद्भासनोत्थया ॥
पुण्य बध्नाति बहुल मुच्यते तु गतस्पृह ॥ १५९॥
कर्मतापकर ज्ञान तपस्तन्नैव वेत्ति य ॥
प्राप्नोतु स हतस्वातो विपुला निर्जरा कथ ? ॥१६०॥

अर्थः—निरासी भावे तपनो करनारो तपसी जिन तथा ज्ञानभक्तिए करी शासनने दिपावे, घणु पुण्य बाधे अने कर्मथी मुकाय ॥ १५९ ॥ कर्मने तपावे एवु ज्ञान छे, अने ते ज्ञानने

जे धणी तप न जाणे ते तपमी निर्बुद्धिनो धणी निपुल निर्जरा केम पामे ? ॥ १६० ॥

अज्ञानी तपसा जन्मकोटिभि: कर्म यन्नयेत ॥
अत ज्ञानतपोयुक्तस्तत्क्षणेनैव सहरेत् ॥ १६१ ॥
ज्ञानयोगस्तप:शुद्धमित्याहुर्मुनिपुगवा. ॥
तस्मान्निकाचितस्यापि कर्मणो युज्यते क्षय:॥१६२॥

अर्थ:—ज्ञान विना एक कोटि भव सुधी जेटला तप करे, ते तपमा जेटला कमक्षय न थाय तेटला कर्मोने एक क्षणमा ज्ञान सहित तपे करी खपावे ॥ १६१ ॥ माटे ज्ञानयोगे जे तप करवो ते शुद्ध छे, ए रीते प्रभु कहे छे, केमके ते तपथी निकाचित कर्मनो क्षय थाय छे ॥ १६२ ॥

यदिहापूर्वाकरण श्रेणि: शुद्धा च जायते ॥
ध्रुव: स्यितिक्षयस्तत्र स्थिताना प्राच्यकर्मणा॥१६३॥
तस्मादज्ञानमय. शुद्धस्तपस्वी भावनिर्जरा ॥
शुद्धनिश्चयतस्त्वेषा शुद्धाशुद्धस्य कापि न ॥१६४॥

अर्थ:—जे तपथी इहा अपूर्वकरण श्रेणि शुद्ध थाय, वली एथी पूर्वकर्मनी रही जे स्थिति ते स्थिति निश्चयथी क्षय थाय ॥ १६३ ॥ ते माटे ज्ञानमयी जे शुद्ध तपमी तेने निश्चयथी शुद्ध भाव निर्जरा थाय, पण अज्ञान तपसीने काइ न थाय॥१६४॥

बध: कर्मात्ममश्लेषो द्रव्यत: स चतुर्विध: ॥
तद्धेत्वध्यवसायात्मा भावतस्तु प्रकीर्त्तित: ॥१६५॥

वेष्टयत्यात्मनात्मानं यथा सर्पस्तथाप्ययम् ॥
तत्तद्भावैः परिणतो बध्नात्यात्मानमात्मना ॥१६६॥

अर्थ —कर्मनी साथे आत्मानु जे मळवु तेने बंध कहिये, ते बंध चार भेदे छे ते हेतु अन्यपणाये आत्ममात्रथी थयो छे ॥ १६५ ॥ जेम सर्प पोतानी मेळे पोते विंटाय छे तेम आत्मा पण ते ते भावे परिणम्यो थको पोतपोतानी मेळेज कर्म साथे बंधाय छे ॥ १६६ ॥

बध्नाति स्वं यथा कोशकारकीटः स्वतन्तुभिः ॥
आत्मनः स्वगतैर्भावैर्बंधने सोपमा स्मृता ॥ १६७॥
जंतूनां सापराधानां बंधकारी न चेश्वरः ॥
तद्बंधकानवस्थानादबंधस्याप्रवृत्तितः ॥ १६८ ॥

अर्थ.—जेम रेशमनो कीडो पोतानी लाळे करी पोतेज बंधाय छे तेम आत्मा पोताना रागादि परिणामे करी पोतेज बंधाय छे, ए उपमा कही ॥ १६७ ॥ पण जे ईश्वर कर्त्ता कहे छे ते वात निषेध छे, अपराधी जीवने कांइ ईश्वर बंधकर्त्ता नथी, ते ईश्वर बंधकर्त्तापणाना निषेधथी थकी अबंधनीय आत्माने निष्प्रवृत्ति छे एटले स्वभावेज बंधनिवृत्ति आत्मानं छे पण ईश्वर कर्त्ता नथी ॥ १६८ ॥

तत्त्वज्ञानप्रवृत्त्यर्थं ज्ञानवन्नोदना ध्रुवा ॥
अबुद्धिपूर्वकार्येषु स्वभावो तद्दर्शनात् ॥ १६९ ॥
तथाभव्यतया जंतुर्नोदितश्च प्रवर्त्तते ॥
बध्नन् पुण्यं च पापं च परिणामानुसारतः ॥१७०॥

अर्थः—ज्ञानवंतनी जे प्रेरणा छे ते तत्त्वज्ञाननी प्रवृत्तिने अर्थे जुत्र छे, केमके स्वभावादिक जे अबुद्धिपूर्वक कार्य छे तेने विषे ए ज्ञाननी प्रेरणा काइ देखाती नथी, ते माटे ॥ १६९ ॥ तेमज प्राणी भव्यताये प्रेर्यो थको परिणामने अनुसारे करी पुण्य, पापने बाधतो थको प्रवर्त्ते छे ॥ १७० ॥

शुद्धनिश्चयतः स्वात्मा न बद्धो बधशंकया ॥
भयकंपादिकं किंतु रज्जावहिमतेरिव ॥ १७१ ॥
रोगस्थित्यनुसारेण प्रवृत्ती रोगिणो यथा ॥
भवस्थित्यनुसारेण तथा बधोऽपि वर्ण्यते ॥ १७२ ॥

अर्थः—शुद्ध निश्चयनयथकी तो आत्मा अबधक छे, पण भयकंपादिके करी बधनी शंका रहे छे, जेम दोरडु देखी सर्पनी शंका उपजे छे तेनीपरे जाणवु ॥ १७१ ॥ रोगनी स्थितिने अनुसारे रोग छे, एटले जे दिवसे शरीर उपनु, तेज दिवसथी सर्व रोगनी स्थितिओ शरीरमा उत्पन्न थयेली छे अर्थात् शरीर केवल रोगनी स्थितिरूपज छे, पण ते रोग जेवारे रोगी कुपथ्य सेवे तेवारे प्रगट थाय छे तेवार रोगी पुरुष जेम रोगनी प्रवृत्ति गणे छे तेमज भवस्थितिने अनुसारे आत्माने बंध कहिये छीए ॥ १७२ ॥

दृढाज्ञानमयीशंका मनोमयनिर्नीपत ॥
अध्यात्मशास्त्रमिच्छंति श्रोतुं वैराग्यकांक्षिणः ॥ १७३
दिशाप्रदर्शकं शाखा चद्रन्यायेन तत्पुनः ॥
प्रत्यक्षंविपया शंका न हि हंति परोक्षधीः ॥ १७४ ॥

अर्थ.—दृढ अज्ञानमय एहवी जे शंका तेहने टालवाने

इच्छतो, वैराग्यनो अभिलाषी थको, अध्यात्मशास्त्र सांभलवाने इच्छे छे ॥ १७३ ॥ जेम निर्मल चक्षु छता ग्रहणघेला जेवी नजर थइ जाय तो तणे करी एक चद्रनी पासे बीजो चद्र देखे ए न्याये करी जे अध्यात्मशास्त्र छे ते पण दिशिनु देखाडनार छे, पण परोक्ष बुद्धि काइ प्रत्यक्ष विषयनी आशकाने टाळी न शके. एटले अध्यात्मनो विषय प्रत्यक्षपणे नथी, परोक्षपणे छे, माटे स्वभाव जे अध्यात्मशास्त्र छे ते परोक्षबुद्धि छे, पण अनुभव ते साक्षात् प्रत्यक्षपणाने हणी न शके, एटले आत्मानुभवी पुरुषो पोताना अनुभवे करी आत्मानो प्रत्यक्ष अनुभव करे छे ॥१७४॥

शखे श्वैत्यानुमानेऽपि दोषात्पीतत्वधीर्यथा ॥

शास्त्रज्ञानेऽपि मिथ्याधी' सस्कारादुवधधीस्तया१७५

श्रुत्वा मत्वा मुहु स्मृत्वा साक्षादनुभवति ये ॥

तत्त्व न बधधीस्तेषामात्माबद्ध प्रकाशते ॥ १७६ ॥

अर्थ —जेम मधुरानो रोगवत पुरुष ते यद्यपि शखने उज्ज्वल तो जाणे छे, पण रोगे करी तेने पीला वर्णनी बुद्धि थाय छे, तेम शास्त्रे करी आत्माने निर्मल तो जाणे छे पण मिथ्यात्व बुद्धिना सस्कारथकी बधरूप बुद्धि छे एटले आत्माने रागी द्वेषी बधरूप जे देखे छे, ते अनुभव विना देखे छे ए भावार्थ छे ॥ १७५ ॥ गुरुना मुखथी अध्यात्मशास्त्रनु सामलवु तने श्रवण कहे छे, ते साभळेला विषयनो अनुक्रम पुन पुन अत' करणमा विचार करवो तेने मनन कहे छे, अने साभळीने विचार करी सशय तथा विपर्ययभाव रहित थइने उक्त आध्यात्मिक विषयरूप स्वात्मतत्त्व अतर्वृत्ति करीने जे साक्षात् अनुभव करवो तेने निदिध्यासन कहे छे एवा स्वात्म तत्त्वज्ञात पुरुषने बधबुद्धि

हाती नथी, केमके बधने प्रकाश करनार तो आत्मा पोतेज छे ते अनुभव थया पछी अज्ञानरूपबंधनो आश्रय केम करे? ज्या सुधी आत्मा अनुभव अथवा ज्ञानवडे प्रकाशन पाम्यो न हतो त्या सुधी तमरूप अज्ञान अने बधवान् थयो हतो, पण अनुभव थया पछी आत्माने लिप बध नथी ॥ १७६ ॥

द्रव्यमोक्षः क्षयः कर्मद्रव्याणा नात्मलक्षण ॥
भावमोक्षस्तु तद्धेतुरात्मा रत्नत्रयान्वयी ॥ १७७ ॥
ज्ञानदर्शनचारित्रैरात्मैक्यं लभते यदा ॥
कर्माणि कुपितानीव भवत्याशु तदा पृथक् ॥१७८।

अर्थ·—जे द्रव्यकर्मनो क्षय ते द्रव्यमोक्ष छे, पण ते काइ आत्मानु लक्षण नथी, मात्र ते द्रव्य कर्मनो क्षय ते मोक्षनो हेतु थाय छे, पण आत्मा तो रत्नत्रय परिणतिरूप छे, तेने द्रव्यकर्मनो क्षय तो उपचारथी मोक्षहेतु कहिये, पण वस्तुथी तत्त्वबुद्धिये कहवाय नहीं ॥ १७७ ॥ ज्ञान-दर्शन-चारित्र ए रत्नत्रयीवडे करीने जेवार आत्मा एकभावपणाने पामे, तेवार जे कर्म हता, ते क्रोडक संसारी जीव जेम रीसाइने घरमाथी जुदो निकळे तेम जीवथी जुदा नीकली जाय ॥ १७८ ॥

अतो रत्नत्रयं मोक्ष स्तदभावे कृतार्थता ॥
पाखण्डिगणलिंगैश्च गृहलिंगैश्च कापि न ॥ १७९ ॥
पाखण्डिगणलिंगेषु गृहलिंगेषु ये रता' ॥
न ते समयसारस्य ज्ञातारो बालबुद्धयः ॥ १८० ॥

अर्थ —ए माटे जे रत्नत्रयी तेथीज मोक्ष छे, पण ते रत्नत्रयीने अभावे पाखडी साधुना समूहने तथा पाखडी ग्रही-

लिंगीने कृतार्थपणुं काइ नथी ॥ १७९ ॥ माटे पाखंडी साधुना समूहमां तथा पाखंडीग्रही लिंगीमां जे प्राणी रक्त छे तेहने नाम-मतिवाळा समजवा, पण ते सिद्धांतना सार एटले रहस्यना जाण नथी ॥ १८० ॥

भावलिंगरता येषु सर्वसारविदो हि ते ॥
लिंगस्था वा गृहस्था वा सिध्यंति धुतकल्मषा ॥१८१॥

भावलिंगं हि मोक्षांगं द्रव्यलिंगमकारणं ॥
द्रव्यं नात्यंतिकं यस्मान्नाप्येकांतिकमिष्यते ॥१८२॥

अर्थ —अने जे प्राणी भावलिंगे राता छे तेहने सर्व सारना जाण कहिये ते वेषधारी साधुलिंगे होय अथवा गृहस्थ लिंगे होय, सोपण पापकर्म धोइने मोक्ष पामे ॥ १८१ ॥ केमके जे भावलिंग ते मोक्षनुं अंग छे, अने द्रव्यलिंग तो अकारण छे, द्रव्यलिंग ते काइ आत्यंतिक नथी, माटे जे भावलिंगी छे ते द्रव्यलिंगने एकांत नथी इच्छता ॥ १८२ ॥

यथाजातदशालिंगमर्थादव्यभिचारि चेत् ॥
विपक्षबाधकाभावात् तद्धेतुत्वेतु का प्रमा ॥१८३॥

वस्त्रादिधारणेच्छा चेद्बाधिका तस्य ता विना ॥
धृतस्य न किमस्थाने करादेरिव बाधकं ॥ १८४ ॥

अर्थ —इहां कोइक कहशे जे नग्नपणे मोक्ष छे तेनो उत्तर कहे छे जो ए अर्थथी वात खरी छे तो आत्माने मोह-बाधक छे, ते मोहनो अभाव थाशे अने जो नग्नपणे मोक्ष होय तो मोह टालवानुं शुं प्रमाण? तेवारे तो मोह टालवानी काइ जरूर न रहे ॥ १८३ ॥ वस्त्र रक्षणे एटले इच्छा विना पण

जो वस्त्र राखता मोक्षनी वाधकता छे तो इच्छा विना जे करादिक एटले हाथ प्रमुख अंग धर्यां छे ते पण मोक्षना वाधक थाशे, एटले दिगंबर लोक कहे छे के वस्त्र राखवाथी मोक्षनी वाधकता छे तेहने निरुत्तर कर्या ॥ १८४ ॥

स्वरूपेण च वस्त्रं चे त्केवलज्ञानवाधकं ॥
तदा दिक्पटनीत्यैव तत्तदावरणं भवेत् ॥१८५॥
इत्थं केवलिनस्तेन मूर्ध्नि क्षिप्तेन केनचित् ॥
केवलित्वं पलायेत त्यहो किमसमंजसं ॥१८६॥

अर्थः—जो परमार्थथी जे वस्त्र छे तेहिज केवलज्ञानने वाधकपणे होय तो दिगंबरनी रीते केवलज्ञानावरणीयने ठेकाणे वस्त्रावरणीय एम थवु जोइये, ते वस्त्रावरणीय कर्म दिगंबरीयो कहेता नथी एटली एनी चुक छे ॥ १८५ ॥ ए रीते तो केवलीने माथे कोइक वस्त्र ओढाडे तेवारे केवलज्ञाने नासी जवु जोइये, पण केवलीने वस्त्र ओढाडता केवलज्ञान नासी जाय छे एम तो थतु नथी, माटे अहो इति आश्चर्ये शु जुठु असमंजस बोलो छो ? ॥ १८६ ॥

भावलिंगात्ततो मोक्षो भिन्नलिंगेष्वपि ध्रुवः ॥
कदाग्रहं विमुच्यैतद्भावनीयं मनस्विना ॥ १८७ ॥
अशुद्धनयतो ह्यात्मा बधो मुक्त इति स्थितिः ॥
न शुद्धनयतस्त्वेष वध्यते नापि मुच्यते ॥ १८८ ॥

अर्थः—ते माटे भावलिंगथी मोक्ष छे, वेषनो काइ नियम नथी, कदापि द्रव्यथी अन्यलिंगीनो वेष होय, तो पण निश्चये मोक्ष छे. माटे कदाग्रह छाडीने बुद्धिवंत पुरुषे ए रीते

विचारु ॥ १८७ ॥ अशुद्ध नयथी आत्मा बधाय छे अने मुझाय पण छे, पण शुद्ध नय तो ए आत्मा बधातो पण नथी अने मुझातो पण नथी ॥ १८८ ॥

अन्वयव्यतिरेकाभ्यामात्मतत्त्वविनिश्चय ॥
नवभ्योऽपि हि तत्त्वेभ्य. कुर्यादेव विचक्षण' ॥१८९॥
इद हि परमध्यात्ममृत एद एव च ॥
इद हि परम ज्ञान योगोऽय परम. स्मृत ॥ १९० ॥

अर्थ·—अन्वय व्यतिरेक करीने जे छत ते छतु, तेहने अन्वय कहिये अने जे अछते ते अछतु तेहने व्यतिरेक कहिये ॥ तद्भावे तद्भावो अन्वय' तदभावे तदभावो व्यतिरेक दडघट-दृष्टातेन भाव्य ॥ विचक्षण पुरुषे ए रीते आत्मतत्त्वनो निश्चय नव तत्त्वे करीने करवो ॥ १८९ ॥ एहिज उत्कृष्ट अध्यात्म छे, एहिज अमृतोपम छे, वली एहिज परमज्ञान छे अने एहिज परमयोग कह्यो छे ॥ १९० ॥

गुह्याद्गुह्यतर तत्त्वमेतत्सूक्ष्मनयाश्रित ॥
न देय स्वल्पबुद्धीना ते ह्येतस्य विडबिकाः ॥१९१॥
जनानामल्पबुद्धीना नैतत्तत्त्व हितावह ॥
निर्बलाना क्षुधार्त्ताना भोजन चक्रिणो यथा ॥१९२॥

अर्थ·—छानामा छानु ए तत्त्व छे, माटे सूक्ष्मनय आश्रीने ए तत्त्व अल्पबुद्धिने न समजाववु, शामाटे के जे अल्पमतिवाला ते ए तत्त्वना विडबक छे ॥ १९१ ॥ माटे अल्पबुद्धि वत प्राणीने ए तत्त्व हित करे नही, जेम चक्रवर्त्तीनु खीरनु भोजन

निर्बल जे क्षुधाये पीड्या प्राणी होय तेने पचे नही तेनीपरे जाणवु ॥ १९२ ॥

ज्ञानागद्दुर्विदग्धाना तत्त्वमेतदनर्थकृत् ॥
अशुद्धमन्त्रपाठस्य फणिरत्नग्रहो यथा ॥ १९३ ॥
व्यवहाराविनिष्णातो यो ज्ञीप्सति विनिश्चय ॥
कासारतरणाशक्तः सागर स तितीर्षति ॥ १९४ ॥

अर्थः—तेम खड खड पडिताइये करीने अर्धनल्या एहवा जे प्राणी तेने ए तत्त्व अनर्थकारी छे, जेम अशुद्ध मत्रना पाठवालो पुरुष सर्पनो मणि लेवा जाय, ते तेने अनर्थकारी थाय तेनीपरे जाणवु ॥ १९३ ॥ जे प्राणी व्यवहारनयमा कुशल नथी अने निश्चयनयने समजवा जाय, ते प्राणी तलावने तरवामा असमर्थ छता समुद्र तरवा वाछे छे ॥ १९४ ॥

व्यवहार विनिश्चित्य ततः शुद्धनयाश्रितः ॥
आत्मज्ञानरतो भूत्वा परम साम्यमाश्रयेत् ॥१९५॥

अर्थः—व्यवहार अने निश्चये करी शुद्धनयने आश्रीने आत्मज्ञाने रत थइ जे प्रवर्त्ते ते प्राणी परमपदने पामे ॥ १९५ ॥

इति आत्मनिश्चयाधिकार अष्टादश समाप्त. ॥



जैनमतस्तुत्याधिकार·

उत्सर्पद्व्यवहारनिश्चयकथाकल्लोलकोलाहल
त्रस्यद्दुर्नयवादिकच्छपकुल भ्रश्यत्कुपक्षाचल ॥
उग्रयुक्तिनदीप्रवेशसुभग स्याद्वादमर्यादया
युक्तश्रीजिनशासन जलनिधिं मुक्त्वा पर नाश्रये ॥१॥

अर्थ —हवे जिनशासनरूप रत्नाकरनी स्तुति करे छे तेमा प्रथम जिनशासनने समुद्रनी उपमा आपे छे, ते जिनशासनरूप समुद्र केवो छे ? त कह छे प्रसरती एहवी व्यवहार तथा निश्चयनयनी जे कथा, तेरूप जे कल्लोल तेनो जे कोलाहल, तेणे करीने दुष्टजन नयवादिरूपी काचवानो कुल जेने विषे त्रास पामे छे वली जेमाथी कुमतिरूपी पर्वत तूटी गया छे, भाग्या छे, वली जेमा मोटी उक्तियुक्तिरूपिणी नदीओनो प्रवेश छे तणे करी जे सुभग एटले मनोहर छे, वली स्याद्वादशैलीरूप मर्यादाये जे युक्त छे एवो श्रीजिनशासनरूप रत्नाकर जे समुद्र तेने तजीने परदर्शनने कोण सेवे ? ॥ १ ॥

पूर्णपुण्यनयप्रमाणरचनापुष्पै सदास्यारसै
स्तत्त्वज्ञानफलै सदा विजयते स्याद्वादकल्पद्रुम ॥
एतस्मात् पतितै प्रवादकुसुमै षट्दर्शनारामभू-
य, सौरभमुद्वमत्यभिमतैरध्यात्मवार्तालवै ॥ २ ॥

अर्थः—हवे ए जिनमतने कल्पवृक्ष करी देखाडे छे. जेमा पूर्ण पवित्र जे सात नय अने चार प्रमाण तेहनी जे रचना तेरूपी फूलमाहेथी सदैव श्रद्धारूप रसे करीने तत्त्वज्ञानरूप फल नीपन्या छे, एवो स्याद्वाद नामा जे कल्पवृक्ष ते सदा जयवंतो वर्त्तो ! ए कल्पवृक्षथी खरी पड्या जे प्रवाहरूपी फूल तेणे करीने षड्दर्शनरूप वाडीनी जे धरती ते नवनवी अध्यात्मनी जे वार्त्ताओ तेना जे लव तेणे करीने भूयः कहेता फरी फरीने सुगधपणाने प्रगट करे छे ॥ २ ॥

चित्रोत्सर्गशुभापवादरचनासानुश्रियालङ्कृतः
श्रद्धानन्दनचन्दनद्रुमनिभप्रज्ञोल्लसत्सौरभः ॥
भ्राम्यद्भिः परदर्शनग्रहगणैरासेव्यमानः सदा
तर्कस्वर्णशिलोच्छ्रितो विजयते जैनागमो मन्दरः ॥३॥

अर्थः—हवे जिनशासनने मेरुपर्वतनी उपमा आपे छे. नाना प्रकारनो उत्सर्ग मार्ग अने रुडो जे अपवाद मार्ग तेनी रचनारूप शिखर तेनी शोभाए शोभित छे वली श्रद्धारूप नंदनवनमा चंदनना वृक्ष तेरूप जे बुद्धि ते थकी प्रकटी छे सुगध जिहा एवो मेरुतुल्य छे वली ए मेरुपर्वतनी पछवाडे भमता जे परदर्शनरूपी ग्रहना समूह तेणे करीने सदा सेवित छे, तथा तर्क जे शुद्ध विचार ते रूपिणी सुवर्णशिला तेणे करीने उचो छे, एवो जैनागमरूप जे मेरु ते जयवतो वर्त्तो ! ॥ ३ ॥

स्याद्दोषापगमस्तमासि जगति क्षीयन्त एव क्षणा-
दध्वानो विशदीभवन्ति निविडा निद्रा दृशोर्यान्ति ॥

यस्मिन्नभ्युदिते प्रमाणदिवसप्रारंभकल्याणिनी
प्रौढत्वं नयगीर्दधाति स रविर्जैनागमो नंदतात् ॥४॥

अर्थः— हवे जिनशासनने सूर्यनी उपमा आपी वखाणे छे जैनागमरूप सूर्यना उदयथकी चोरी जारी इत्यादि दोष टळे, वली जे थकी क्षणेकमा जगतने विष अज्ञानरूप अधारु क्षय थाय, जे थकी मार्ग निर्मल थाय छे, वली चक्षुमाथी प्रमादरूप निद्रा जाय छे, तथा जेम सूर्योदयथी दिवस उग्यो एम सिद्ध थाय छे तेम जैनागमना उदयथी प्रमाणनी सिद्धतारूप दिवसनी सिद्धता थाय छे ते जाणे दिवसने प्रारंभे लोक प्रभाते मगलिक बोले छे जेम सूर्य उदये लोक न्यायमार्गे चाले, न्यायना वचन बोले, तेम जैनसूर्य उदये नय तथा आगमनी वाणी ते घणी रुडी रीते प्रौढता पामे छे एवो ए जिनशासनरूपी सूर्य ते जयवतो वर्त्तो ! ॥ ४ ॥

अध्यात्मामृतवर्षिभि कुवलयोल्लास विलासैर्गवा
तापव्यापविनाशिभिर्वितनुते लब्धोदयोय' सदा ॥
तर्कस्याणुशिर'स्थित परिगत स्फारैर्नयस्तारकै'
सोऽयं श्रीजिनशासनामृतरुचि कस्येतिनो रुच्यता॥५॥

अर्थ'—हवे जिनशासनने चद्रनी उपमा आपी वखाणे छे अध्यात्मरूप अमृतनो जे वरसाद तणे करीने कुवलय जे पृथ्वीरूप कमल तेने विकस्वर करे छे एवो, वली गवा के० वाणीरूप किरण तेना विलासे करीने समग्ना तापनो जे समूह तेनो नाश करे छे एवो, वली ए चद्रमा केवो छे? जे तर्कविचाररूपी जे महादेव तेना मस्तके रह्यो थको उदय पाम्यो छे एवो,

वली दीप्त जे नय तेरूप जे तारामडल तेणे परिवर्यो थको फिरे छे एवो जिनागमरूपी चद्र ते कोने रुचिपणाने न उपजावे? अपितु सर्वने उपजावेज ॥ ५ ॥

बौद्धानामृजुसूत्रतो मतमभूद्वेदातिना सग्रहात्
साख्याना तत एव नैगमनयाद् योगश्च वैशेषिकः ॥
शब्दब्रह्मविदोऽपि शब्दनयत॰ सर्वनयैर्गुफिना
जैनी दृष्टिरितीह सारतरता प्रत्यक्षमुद्वीक्षते ॥ ६ ॥

अर्थः—जैना अनेक नयमाथी एकेका नय ग्रहण करीने एटले रुजुसूत्रनयथी बौद्धनो मत प्रगट्यो, अने सग्रहनयथी वेदातिकनो मत प्रगट्यो, तथा साख्यमत पण सग्रहनयथीज उपनो अने नैगमनयथी योगमत अने वैशेपिकमत प्रगट्यो, शब्दनयथकी मीमामक दर्शन उपनु अने जैनशासन तो सर्व नये करीने गुफित छे, ते माटे आ जिनशासनमा सारमा सारपणु प्रत्यक्षपणे रुडी रीते देखीए छीए ॥ ६ ॥

ऊष्मा नार्कमपाकरोति दहन नैव स्फुलिंगावली
नाब्धि सिंधुजलप्लवः सुरगिरि ग्रावा न वाभ्यापतन् ॥
एव सर्वनयैकभावगरिमस्थान जिनेद्रागम
तत्तद्दर्शनसकथाशरचनारूप न हतु क्षमा ॥ ७ ॥

अर्थ॰—उकलाट जे वाफ तेनो जे ताप ते सूर्यने जीती शके नहीं, अने अग्निना कणिया ते दावानलने जीती न शके, तथा सिंधुनदीनु जल तेनो जे वेग ते लवणसमुद्रने ठेली न शके, पत्थरना जे खड ते मरुपर्वतने दाबी न शके, एम सर्व

नयना एकता भावनी मोटाइनु स्थानक एहवु तीर्थंकरनु जे आगम तेहने ते परदर्शनीओ हणवाने समर्थ नथी, शा माटे जे ए जैन ते सर्वदर्शनी छे, अने ते दर्शनीयो जैनना एकेक अंशी छे ॥ ७ ॥

दुःसाध्य परवादिना परमतक्षेप विना स्व मत
तत्क्षेपे च कषायपककलुष चेतः समापद्यते ॥
सोऽय निःस्वनिधिग्रहव्यवसितो वेतालकोपक्रमो
नाय सर्वहितावहो जिनमतं तत्त्वप्रसिद्धयर्थिना ॥ ८ ॥

अर्थ —परदर्शनी जेटला छे ते एक एकना मतने खड्या विना पोताना मतने थापी शकता नथी ए मतमतनो जे कदाग्रह तेनो प्रक्षेप करता कषायरूप कादवे करीने मन मलिन थाय छे ए कदाग्रहनो व्यापार ते तो दरिद्रीना घरनो निधान हरवाने वेताल गयो ते प्राय जाणवो, ए उपक्रम सर्व जिनमतने विषे हितकारी नथी, माटे अर्थी जीवने ए जिनमत ते तत्त्वरूपे प्रसिद्ध छे ॥ ८ ॥

वार्ता सति सहस्रश प्रतिमत ज्ञानाशबद्धक्रमा
श्चेतस्तासु ततः प्रयाति न तु मा लीन जिनेन्द्रागमे ॥
नोत्सर्पति लताः कति प्रतिदिश पुष्पैः पवित्रा मधौ
ताभ्यो नैति रति रसालकलिकारक्तस्तु पुस्कोकिल ।९।

अर्थ —जेनो अनुक्रम ज्ञानने मात्र अंशे करीने बधायो छे एवी परदर्शनीओनी वार्ता छे, तथा मतमतरु हजारो गम वर्ते छे, पण ते वार्ताोने विषे माहरु चित्त जातु नथी शा माटे?

जे सिद्धांतोने विषे महारु मन लीन छे, माटे चैत्रमासे दिशोदिशे जे फूल तेणे करीने पवित्र एहवी जे लता ते केटलीक विकस्वर थाय, फले; पण पुस्कोकिल जे कोयल ते आंबानी मंजरीथी रक्त एटी थकी ते लताओने विषे रति न पामे, तेनी परे महारु चित्त पण सिद्धांतरूप आंबानी मंजरिये रक्त थयु थकु अन्य दर्शनरूप लताओमां जातुं नथी ॥ ९ ॥

शब्दो वा मतिरर्थ एव वस्तु वा जातिः क्रिया वा गुणः।
शब्दार्थः किमिति स्थिति. प्रतिमतं संदेहशंकुर्यथा ॥
जैनेंद्रे तु मते न सा प्रतिपदं जात्यंतरार्थस्थितिः ।
सामान्यं च विशेषमेव च यथा तात्पर्यमन्विच्छति ॥१०॥

अर्थः—आ शब्द छे, किंवा मति छे, के अर्थ छे, के गुण छे, के वस्तु के० द्रव्य छे, के जाति छे के क्रिया छे? वली एनो शब्दार्थ केम हशे? एवो संदेहरूपी खीलो मत मत प्रत्ये रह्यो छे पण जिनमतमां नथी. ते पद पद प्रत्ये जात्यंतर अर्थनी स्थिति छे, माटे सामान्य अने विशेष जेवा पदार्थनो यथार्थ निश्चय तात्पर्य-अर्थ तेने भजे छे, माटे जिनमतमां संदेह-रूप खीलो नथी ॥ १० ॥

यत्रानर्पितमादधाति गुणतां मुख्यं तु वस्त्वर्पितं ।
तात्पर्यानवलंबनेन तु भवेद्बोधः स्फुटं लौकिकः ॥
संपूर्णं त्ववभासते कृतधियां कृत्स्नाद्विवक्षाक्रमात् ।
तां लोकोत्तरभंगपद्धतिपदं स्याद्वादमुद्रां स्तुमः ॥११॥

अर्थः—स्याद्वादरूप जैन मुद्रामां केनो गुण छे? के

जेमा वस्तुने अनर्पण करी छता पण ते वस्तु गौणताने प्राप्त थाय छे, अने वस्तु अर्पण करी छता ते मुख्यताभावने पामे छे, अने जेना तात्पर्य अर्थने अनलग्ने करीने तो प्रगटपण लौकिक बाध थाय छे, अने सपूर्ण बाध तो समग्र विवक्षाना अनुक्रमथकी महा निपुण बुद्धिवालाने प्रकाश थाय छे, ते माटे ए लोकोत्तर भंग जालनु ठेकाणु एवी जे स्याद्वादशैलीरूप मुद्रा तेने अम स्तवीए छीए ॥ ११ ॥

आत्मीयानुभवाश्रयार्थविषयोऽप्युच्चैर्पदीय क्रमो ।
म्लेच्छानामिव संस्कृत तनुधियामाश्चर्यमोहावह ॥
व्युत्पत्तिप्रतिपत्तिहेतुविततस्याद्वादवागृगुम्फित ।
त जैनागममाकलय्य न वय व्याक्षेपभाज. क्वचित्॥१२॥

अर्थ.—ते जैनागम केवु छे ? जेमा पोताना आत्मानो अनुभव करवाना आश्रयनो विषय छे, एवो उचपणे करीने जेनो क्रम छे एटले परिपाटी छे, अने म्लेच्छने जेम संस्कृत भाषा आश्चर्य करनारी अने मोह उपजावनारी छे तेनी पर अल्पबुद्धि-वाळाने अर्थनो पामी मुझावानु स्थानक छे, माटे जैनागम ते व्युत्पत्तिनु निरूपण करनारा जे हेतु तणे करी विस्तीर्ण एहवो जे स्याद्वाद मार्ग तणे करी रचेलु छे तेने पामीने महारा चित्तमा बीजु कोइपण व्याक्षेपपणु क्यारे पण थतु नथी ॥ १२ ॥

मूल सर्ववचोगतस्य विदित जैनेश्वर शासन ।
तस्मादेव समुत्थितैर्नयमतैस्तस्यैव यत्खडन ॥
एतत्किंचन कौशल कलिमलच्छन्नात्मनः स्वाश्रिता ।
शाखा छेत्तुमिवोद्यतस्य कटुकोदर्काय तर्काधिन ॥१३॥

अर्थः—माटे सर्ववचनगत समूहनु जे मूल एहवु ए जिनशासन कह्यु छे ए जिनशासनथकीज प्रगट्या एहवा जे नयनयना मत तेना मते करीनेज दुष्ट प्राणी तेज जिनआगमनु खंडन करे छे, ते पापिष्ट आत्माओनो आत्मा पापरूप मेले करी ढकाणो छे, एवा दुष्टोनुं जे काइ किंचित्मात्र डहापणपणुं छे, ते जेम कोइ मूर्ख जे वृक्षनी डाले बेठो थको तेज डाल कापवाने उजमाल थाय तेथी कडवा विपाक पामे, तेम ते कुविचारवालाने आगल कडवा फल प्रगटे छे ॥ १३ ॥

त्यक्त्वोन्माद विभज्य वादरचनामाकर्ण्य कर्णामृत ।
सिद्धातार्थरहस्यवित्क लभतामन्यत्र शास्त्रे रति॥
यस्या सर्वनया वसति न पुनर्व्यस्तेपु तेष्वेव या।
मालाया मणयो लुठति न पुनर्व्यस्तेपु तेष्वेव सा।१४।

अर्थः—विवेचना लक्षण जे नयनोवाद तेनो उन्माद तजीने, माहोमाहे झगडो तजीने, वली काने अमृतरूप वाणी साभलीने, सिद्धातना अर्थरहस्यनो जे जाण पुरुष ते बीजा शास्त्रने विपे रति केम पामे ? अर्थात् नज पामे जे जैनवाणीने विपे सघला नय प्रवेश करे छे, पण ते जुदा जुदा मतवालाना मतमा सर्वनय नथी. तेथी जैन वाणी काइ तेमा रहेती नथी शा माटे जे ते सर्वे व्यग्र चित्तवाला छे माटे जैनमा सर्वे नय छे जेम मालाने विपे सर्व मणका रमे छे, पण छुटा मणका पड्या होय तेने माला न कहिये, अने एक मणके सर्वे मणका समाणा एम पण न कहीए, माटे ते माला सरखो जैनमत छे ॥ १४ ॥

अन्योऽन्यप्रतिपक्षभाववितथान् स्वस्वार्थसत्यान्नया—
नपेक्षाविपयग्रहैर्विभजते माध्यस्थमास्थाय यः ॥

स्याद्वादे सुपथे निवश्य हरते तेषां तु दिङ्मूढता ।
कुंदेंदुप्रतिम यशोविजयिनस्तस्यैव सवर्धते ॥ १५ ॥

अर्थ.—एम एकवीनाने नेरभावे करी जूठा जूठा जे पोतपोताना अर्थ तेने साचा करता एवा मतवाला जे दर्शनी ते पोताना नयनो विषय ग्रहण करी, माध्यस्थपणाने स्वीकारी, सारा माठानो विभाग करीने, स्याद्वादरूप उत्तम मार्गने विष लोकनु चित्त स्थापन करावीने अने माध्यस्थपणु ग्रहण करी तेमनी दिग्मूढतानो नाश करे, ते विजयवत प्राणी ईंदतु फूल तथा चद्रमा सरखो उजस्लो जे जश तणे करी वृद्धिवन्ता थशे अहीं कर्त्ताये पोतानु नाम पण सूचव्यु छे ॥ १५ ॥

॥ इतिश्री जैनमतस्तुत्यधिकार एकोनविंशति समाप्त ॥

॥ इतिश्री महोपाध्याय श्री यशोविजयगणिना
विरचिताध्यात्मसारप्रकरणे षष्टप्रबंध. ॥



अनुभवाधिकार

शास्त्रोपदर्शितदृशा गलितासद्ग्रहकषायकलुषाणा
 प्रियमनुभवैकवेद्य रहस्यमाविर्भवति किमपि ॥१॥
प्रथमाभ्यासविलासा दाविर्भूयैव यत्क्षणाल्लीन ॥
 चचलतरुणीविभ्रमसम सुतरलमन. कुरुते ॥ २ ॥

अर्थः—शास्त्रे बतावी जे दिशा तेणे करीने गली गइ छे सारी नरसी असद्ग्रहरूप कषायनी कलुषता जेनी, तेने प्रिय एहनो जे एक अनुभव तेथी जणातु एवु जे रहस्य ते काइक प्रगट थाय छे ॥ १ ॥ प्रथम अभ्यासरूपी विलासना योगे करीने ते प्राणी पूर्वोक्त काइक रहस्यना लीन थाय छे अने फरी चचलपणे रहे छे, जेम चचल स्त्री पोताना विलासना योगे करी काइक सुरतमा लीन थाय छे अने पछी जेवी ने तेवी चचल रहे छे, तथा जेम कीडाने भमरी ज्यारे चटको भरावे छे त्यारे तेना ध्याने करीने ते तल्लीन थइ जाय छे अने पछी ज्यारे भमरी पोताना चटकानो उद्योग मुकी दे छे, त्यारे ते सर्व भूली जइ पोतानो मूलनो स्वभाव धारण करे छे तेनी परे जाणी लेवु ॥ २ ॥

सुविदितयोगैरिष्ठ क्षिप्त मूढ तथैव विक्षिप्त ॥
 एकाग्र च निरुद्ध चेत॰ पचप्रकारमिति ॥ ३ ॥
विषयेषु कल्पितेषु च पुर.स्थितेषु च निवेशित रजसा ॥
 सुखदुःखयुग्बहिर्मुखमाम्नात क्षिप्तमिह चित्त

ज्ञानविचाराभिमुखं यथा यथा भवति किमपि सानंदं।
अर्थैः प्रलोभ्य बाह्यैरनुगृह्णीयात्तथा चेतः ॥ १३ ॥
अभिरूपजिनप्रतिमा विशिष्टपदवाक्यवर्णरचना च॥
पुरुषविशेषादिकमप्यत एवालंबनं ब्रुवते ॥ १४॥

अर्थः—ज्ञानविचारणाना सुखथी जेम काइक आनंद थाय एहने बाह्य अर्थे करी लोभावीने तेमा चित्तने थोभावी राखीने ज्ञानना विचारने सन्मुख करीये ॥ १३ ॥ रुडी जिन प्रतिमा, रुडा सिद्धांतना पद, वचन, अक्षर, ते पुरुषविशेष जे बहुश्रुत गीतार्थ मुनि होय तेहने ए त्रण आलंबन प्रमुख कह्या छे ॥ १४ ॥

आलंबनैः प्रशस्तैः प्रायो भावः प्रशस्त एव यतः॥
इति सालंबनयोगी मनः शुभालंबनं दध्यात् ॥१५॥
सालंबनं क्षणमपि क्षणमपि कुर्यान्मनो निरालंबं॥
इत्यनुभवपरिपाकादाकालं स्यान्निरालंबनं ॥१६॥

अर्थः—रुडे आलंबने करीने प्राये रुडो भाव होय, माटे सालंबन योगी जे रुडा जीव होय तेणे शुद्ध आलंबन धरवुं ॥ १५ ॥ अने क्षणिकमा सालंबन मन करे, अने क्षणिकमां निरालंबन मन करे, ए रीते अनुभवना परिपाकथी ते प्राणी सदा निरालंबन थाय ॥ १६ ॥

आलंब्यैकपदार्थं यदा न किंचिद्विचिंतयेदन्यत् ॥
अनुपनतेंधनवन्हिवदुपशांतं स्यात्तदा चेतः ॥ १७॥
शोकमदमदनमत्सरकलहकदाग्रहविषादवैराणि ॥
क्षीयंते शांतहृदामनुभव एवात्र साक्षात्तु ॥ १८॥

अर्थः—पछी एक पदार्थने अवलंबीने जे वार बीजुं काइ चिंतवे नही तेवारे जेम काष्ठ विनानो अग्नि उपशम छे, तेनी परे मन उपशांतपणुं पामे ॥ १७ ॥ माटे शोक, गर्व, काम, मत्सर, क्लेश, हठ, विषाद अने वैर एटला वाना शमतावंत प्राणीने न होय, ए वातनो साक्षी इहां अनुभव छे ॥ १८ ॥

शांते मनसि ज्योतिः प्रकाशते शांतमात्मनः सहज ॥
भस्मीभवत्यविद्या मोहध्वांत विलयमेति ॥ १९ ॥

बाह्यात्मनोऽधिकारः शांतहृदामंतरात्मना न स्यात् ॥
परमात्मानुध्येयः सन्निहितो ध्यानतो भवति ॥२०॥

अर्थः—शांत मनने विषे रहेता थका आत्मानुं शांत, स्वाभाविक, सहजानंदरूप जे तेज छे ते प्रगट थाय, तेवार जे कुविद्या ते राख थइ जाय अने मोहांधकार नाश पामे ॥ १९ ॥ बाह्यथकी मननो जे अधिकार ते शांत परिणामी अंतरआत्मा वाला प्राणीने न होय, केमके तेने ध्येयरूपी जे परमात्मा ते ध्यानथी ढुकडो छे ॥ २० ॥

कायादिर्बहिरात्मा तदधिष्ठातांतरात्मतामेति ॥
गतनिःशेषोपाधिः परमात्मा कीर्तितस्तज्ज्ञैः ॥२१॥

विषयकषायावेशस्तत्त्वाश्रद्धा गुणेषु च द्वेषः ॥
आत्माज्ञानं च यदा बाह्यात्मा स्यात्तदा व्यक्तः ॥२२॥

अर्थः—काया अधिष्ठित जे बहिरात्मा तनु अधिष्ठान जे अंतरात्मा छे ते प्रवे पामे अने गइ छे समस्त उपाधि जेने तेने ज्ञानिये परमात्मा कह्यो छे ॥ २१ ॥ जेने विषयकषायनो आवेश

होय. तत्त्वनी अश्रद्धा होय, गुणी उपर द्वेष होय, अने जेने आत्मानी ओलखाण नथी तेने प्रगटपणे बहिरात्मा कहिये ॥२२॥

तत्त्वश्रद्धा ज्ञानं महाव्रतान्यप्रमादपरता च ॥
मोहजयश्च यदा स्यात् तदान्तरात्मा भवेद्व्यक्तः ॥२३॥
ज्ञानं केवलसंज्ञं योगनिरोधः समग्रकर्महतिः ॥
सिद्धिनिवासश्च यदा परमात्मा स्यात्तदा व्यक्तः ॥२४॥

अर्थः—जेने तत्त्वनी श्रद्धा होय, ज्ञानपणु होय, महाव्रतीपणु होय, तथा अप्रमादीपणु होय, एम करता ज्यारे मोहने जीते त्यारे तेने प्रगटपणे अंतरात्मा कहिये ॥ २३ ॥ ज्यां केवलज्ञान होय अने मन-वचन-कायाना योगनिरोधी आठ कर्म क्षय करी सिद्धमा वसे त्यारे तेने प्रगटपणे परमात्मा कहिये ॥ २४ ॥

आत्मानं गुणवृत्तिर्विविच्य यः प्रतिपदं विजानाति ॥
कुशलानुबंधयुक्तः प्राप्नोति ब्रह्मभूयमसौ ॥ २५ ॥
ब्रह्मस्थो ब्रह्मज्ञो ब्रह्म प्राप्नोति तत्र किं चित्रं ?॥
ब्रह्मविदां वचसाऽपि ब्रह्मविलासाननुभवामः ॥ २६ ॥

अर्थः—जे प्राणि आत्माने अने गुणवृत्तिने माहोमाह वहेंचण करीने ठेकाण जोडे ते प्राणि कुशलानुबंधी पुण्य सहित मोक्षपदने पामे ॥ २५ ॥ जे ब्रह्ममा रह्यो ब्रह्मनो जाण ते ब्रह्म पामे, एमा शुं अचंबो छे ? माटे ब्रह्मवेत्ता पुरुष जे ज्ञानी तेना वचने करी ब्रह्म जे मोक्षविलासी सुख, तेने अमे अनुभवीए छीए ॥ २६ ॥

ब्रह्माध्ययनेषु मतं ब्रह्माष्टादशसहस्रपदभावैः ॥
येनाप्तं तत् पूर्णं योगी स ब्रह्मणः परमः ॥ २७ ॥

ध्येयोऽय सेव्योऽय कार्या भक्ति' सुकृतधिया मैव ॥
अस्मिन्गुरुत्वबुद्ध्या सुतरः ससारसिंधुरपि ॥ २८॥

अर्थः—ब्रह्मअध्ययनने विषे कह्यु छे के, अढार हजार शीलांगरथे करी जे ब्रह्मचर्यने पाम्यो, तेने पूर्ण योगी अने परम ब्रह्म कहिये ॥ २७ ॥ माटे एनेज ध्यावो, एनीज पुण्यवते भक्ति करो, अने एने विषे मोटापणानी बुद्धि धरीये, तो ससारसमुद्र तरवो महल छे ॥ २८ ॥

अवलब्येच्छायोग पूर्णाचारासहिष्णवश्च वय ॥
भक्त्या परममुनीनां तदीयपदवीमनुसरामः ॥२९॥
अल्पापि यत्र यतना निर्दभा सा शुभानुबधकरी ॥
अज्ञानविषय यत्तद्विवेचन चात्मभावानां ॥ ३० ॥

अर्थः—इच्छायोग तो अमारे निर्मल छे, पुरो आचार पण अमे पाली शकता नथी, पण मोटा मुनिनी भक्तिए करीने तेहनी पदवीने पामशु ॥ २९ ॥ थोडी पण जयणा कपट रहित थशे तो ते शुभ अनुबधकारी छे, पण आत्मभावनी जे वहेंचण ते अज्ञानने टालनार छे ॥ ३० ॥

सिद्धातनदगाना शास्त्राणा य सुपरिचय' शक्त्या ॥
परमालबनभूतो दर्शनपक्षोऽयमस्माक ॥ ३१ ॥
विधिकथन विधिरागो विधिमार्गस्थापन विधेरिच्छा ॥
अविधिनिषेधश्चेति प्रवचनभक्ति' प्रसिद्धातः ॥३२॥

अर्थ —सिद्धातना अमे पक्षी छीये, तेना अंग जे शास्त्र तेनो शक्ति प्रमाणे अमारे परिचय छे, माटे परम आलबनभूत एवो जे समकितपक्ष ते अमार रूडो छे ॥ ३१ ॥ शुद्ध मापवु,

विधिशास्त्रनो राग करवो, शुद्ध मार्गनुं स्थापन करवुं, विधिमार्गनी इच्छा राखवी, अविधि टालवी अने सिद्धांतनी भक्ति करवी ए अमारो सिद्धांत छे ॥ ३२ ॥

अध्यात्मभावनोज्ज्वलचेतोवृत्त्योचित हित कृत्य ॥
पूर्णक्रियाभिलाषश्चेति द्वयमात्मशुद्धिकरम् ॥ ३३ ॥
द्वयमिद शुभानुबंध शक्यारंभश्च शुद्धपक्षश्च ॥
अहितो विपर्यय पुनरित्यनुभवसंगतः पंथाः ॥३४॥

अर्थः—अध्यात्मनी भावनाए करी उज्ज्वल एहवी जे चित्तवृत्ति तेणे करीने उचित कार्य करवु, तथा हितकारी करणी करवी, पूर्ण क्रियाना निलामनो अभिलाष धरवो, ए अमारे आत्मानी शुद्धिकारक छे, एटले एक अंत करणनी उज्ज्वलता जे शुद्धि करवी ते, अने बीजु आंयथी मांडी अंतपर्यंत पूर्ण शुभ क्रिया करवानी अभिलाषा ए बे वाना आत्मानी शुद्धि करनारा छे ॥ ३३ ॥ तथा एक करवा योग्य आरंभ ते शक्य आरंभ अने बीजो शुद्ध पक्ष ए बे वाना शुभानुबंधी छे, ए बे जेने प्रारंभ काले समर्थ छे, एमा जेनी शक्ति, उद्यम अने शुद्ध प्ररूपकपणु छे तेने हितकारी माने अने एथी विपर्यास जे छे, तेने अहितकारी माने, एवी रीते अनुभवज्ञानने मलवानो पंथ छे एथी मिथ्यात्व टले ॥३४।

ये त्वनुभवाविनिश्चितमार्गाश्चारित्रपरिणतिभ्रष्टाः ॥
बाह्यक्रियया चरणाभिमानिनो ज्ञानिनोऽपि न ते ॥३५॥
लोकेषु बहिर्बुद्धिषु विपणिकाना बहि क्रियासु रति ॥
श्रद्धा विना न चैता सता प्रमाण यतोऽभिहित ॥ ३६ ॥

अर्थ —जेने अनुभवनो निश्चय नथी, अने निश्चय मार्गना चारित्रथी भ्रष्ट छे, तथा बाह्य क्रियानी आचरणा छे अने लोकमा

उग्र विहारी थइ आचारनो गर्व धरे छे, तेने ज्ञानी न कहीए ॥ ३५ ॥ बाह्य दृष्टिवाला जे मुर्ख लोक ते तेने बाह्यक्रियावत देखी प्रीति धरे, ते तो जेम कोइक वाणियो बाह्य करियाणानो व्यापार करतो देखिये तेनी परे जाणवी, माटे श्रद्धा विनानुं कशुये प्रमाण नथी ॥ ३६ ॥

बालः पश्यति लिङ्गं मध्यमबुद्धिर्विचारयति वृत्तं ॥
आगमतत्त्वं तु बुधः परीक्षते सर्वयत्नेन ॥ ३७ ॥
निंद्यो न कोऽपि लोके पापिष्ठेष्वपि भवस्थितिश्चिन्त्या ॥
पूज्या गुणगरिमाढ्या धार्यो रागो गुणलवेऽपि ॥३८॥

अर्थः—जे बाल जीव होय ते वेष जोइने परीक्षा करे, तथा मध्यम जीव ते आचरणा जोइ परीक्षा करे, अने पंडित तो ज्ञानतत्त्व देखी परीक्षा करे ॥ ३७ ॥ लोकने विषे कोइनी निंदा करिये नहीं. पापीने विषे महोटी समाग्नी स्थिति चितविये, जे गुणयुक्त पुरुष होय तेनी पूजा करीये, वडाइ करीये, तथा जे अल्पगुणी होय तेना उपर पण राग धरीये ॥ ३८ ॥

निश्चित्यागमतत्त्वं तस्मादुत्सृज्य लोकसंज्ञां च ॥
श्रद्धाविवेकसारं यतितव्यं योगिना नित्यं ॥ ३९ ॥
ग्राह्यं हितमपि बालादालापैर्दुर्जनस्य न द्वेष्यं ॥
त्यक्तव्या च पराशापाशा इव संगमा ज्ञेयाः ॥४०॥

अर्थः—आगमनो निश्चय करी लोकसंज्ञा छोडीने विवेकनो सार जे श्रद्धा तेने विषे योगीश्वरे सदा उद्यम करवो ॥३९॥ बालकथकी पण आलापे करीने हितनी वात लेवी, दुर्जन उपर द्वेष न करवो, सत्य बोलवुं अने पारकी आशा पाश सरखी जाणवी ॥ ४० ॥

स्तुत्या स्मयो न कार्यः कोपोऽपि च निंदया जनैः कृतया ॥
सेव्या धर्माचार्यास्तत्त्वं जिज्ञासनीयं च ॥ ४१ ॥
शौचं स्थैर्यमदंभो वैराग्यं चात्मनिग्रहः कार्यः ॥
दृश्या भवगतदोषाश्चिंत्यं देहादिवैरूप्यं ॥ ४२ ॥

अर्थ —कोइ वखाणे तो गर्व न करवो, कोइ निंदे तो कोप न करवो, धर्माचार्यनी सेवा करवी, तत्त्वने जाणवानी इच्छा राखवी ॥ ४१ ॥ पवित्रपणुं, स्थिरतापणुं अने निष्कपटपणुं आदरवुं तथा वैराग्य धरवो अने मनने वश करी राखवुं, तथा संसारना दोष देखवा, वली देहने विनाशीपणे चिंतववो ॥ ४२ ॥

भक्तिर्भगवति धार्या सेव्या देशः सदा विविक्तश्च ॥
स्थातव्यं सम्यक्त्वे विश्वास्यो न प्रमादरिपुः ॥४३॥
ध्येयात्मबोधनिष्ठा सर्वत्रैवागमः पुरस्कार्यः ॥
त्यक्तव्याः कुविकल्पाः स्थेयं वृद्धानुवृत्त्या च ॥ ४४ ॥

अर्थ,—प्रभु उपर भक्ति धरवी, पशुपंडकादि दोष रहित देश जे स्थानक ते सेववुं, समकितरूपमां स्थिर रहवुं, प्रमादरूप शत्रुनो विश्वास न करवो ॥ ४३ ॥ ध्येयस्वरूप जे आत्मबोध तेमां रहवुं, सघले स्थले आगमसिद्धांतने आगल करवुं, कुविकल्प छांडवा, जे मार्गे वृद्ध चाले ते मार्ग चालवुं ॥ ४४ ॥

साक्षात्कार्यं तत्त्वं चिद्रूपानंदमेदुरैर्भाव्यं ॥
हितकारी ज्ञानवतामनुभववेद्यः प्रकारोऽयम् ॥४५॥

अर्थ —तत्त्वने प्रगट करवुं, ज्ञानरूप आनंदभर रहवुं, ज्ञानवंतने हितकारी थइने रहवुं, ए अनुभववंत जीवोना प्रकार छे ॥ ४५ ॥

॥ इति अनुभवाधिकार समाप्त ॥ २० ॥

प्रशस्तिः

येषां कैरवकुन्दवृन्दशशभृत्कर्पूरशुभ्रा गुणा ॥
मालिन्यं व्यपनीय चेतसि नृणां वैशद्यमातन्वते ॥
सन्तस्सन्तु मयि प्रसन्नमनसस्ते केऽपि गौणीकृत–॥
स्वार्थामुख्यपरोपकारविधयोऽत्युच्छृंखलैः किं खलैः ?॥१॥

अर्थः— चंद्रविकासी कमलना फूलनो समूह, चंद्रमा, कपूर, ए सरखा उज्ज्वला जेना गुण छे, तथा जे मनुष्यना चित्तने विषे मलिनता टालीने निर्मलता–उज्ज्वलताने विस्तारे छे, एवा जे सज्जन पुरुषो ते, मारा उपर प्रसन्न मने सदैव रहजो ! जेणे पोतानो अर्थ गौण कर्यो छे, अने जेनी मुख्यपणे परउपकारनी बुद्धि छे, एवा सज्जन जो मारा उपर प्रसन्न छे तो, उन्मत्त एवा खल जे दुर्जन लोक तेनी अप्रसन्नताए शुं थवानुं छे ? ॥१॥

ग्रथ्नाति प्रगुणीकरोति सुकविर्यत्नेन तेषां प्रथा–
मातन्वन्ति कृपाकटाक्षलहरीलावण्यतः सज्जनाः ॥
माकन्दद्रुममंजरी वितनुते चित्रं वा मधुश्रीस्ततः
सौभाग्यं प्रथयति पंचमचमत्कारेण पुंस्कोकिलाः॥ २ ॥

अर्थः—रुडा जे कवि छे, ते अर्थानुपत्तिए नवा ग्रंथ रचे, पण कृपानजरनी लेहरो तेनुं घर एवा जे सज्जन ते ग्रन्थने वखाणीने विस्तार करे छे. ते उपर दृष्टांत कहे छे, जेम वसंत-लक्ष्मी आंबानी मंजरीना मनोहरपणाने प्रगट करे छे, पण पोताना पंचम रागना चमत्कार करी एटले रागनो टहुको तेणे करीने कोयल मंजरीनुं सौभाग्यपणुं जगमां विस्तारे छे ॥ २ ॥

दोषोर्मिखविष. खलाननविलादुत्थाय कोपाज्ज्वलन्
जिह्वाहिर्ननु किं गुणान्न गुणिना वासक्षय प्रापयेत् ॥
तस्माच्चेत्प्रबलप्रभावभवन दिव्यौषधी सन्निधौ
शास्त्रार्थप्रतिपद्विदा शुभहृदा कारुण्यपुण्यप्रथा ॥ ३ ॥

अर्थ.—दोषना विस्ताररूप विष सहित एहवु खल प्राणीना मुखरूप जे सर्पनु घर तेथी उठीने कोपे बलतो थको एवो दुर्जननी जीभरूप जे सर्प ते गुणीना गुणने ननु के० निश्चेथी क्षयपणाने न पमाडे शु ? अपितु पमाडेज ते माटे महाप्रभावनु घर एहवो जे शास्त्रनो अर्थ छे तनी प्राप्तिना जाण जे सज्जन तेनी जे करुणा ते पुण्य वार्तारूपनी बुटी एटले जडी ते दिव्य औषधि कहिये, तनी पास रहता थका तेने झेर चढ नहीं ॥ ३ ॥

उत्तानार्थगिरा स्वतोऽप्यवगमान्निःसारता मेनिरे
गभीरार्थसमर्थने बत खला. काठिन्यदोष दधु. ॥
तत्को नाम गुणोऽस्तु कश्च सुकवि किं काव्यमित्यादिका
स्थित्युच्छेदमतिं हरति नियता दृष्टा व्यवस्था. सता ॥४॥

अर्थ.—जेवार पोतानी मळे पद वाचता अर्थ सुझे एवा अल्पार्थ ने सुगम पद जो अम जोडाय तो खल माणस एम कहेशे जे, आ ग्रथमा काइ सार नथी, वली जो अम गभीर अर्थ सहित पद बाधीए तो खल माणस कहेशे के, कठण पद बाध्या छे, एनो शु अर्थ करीए ? ए तो मुखानी पाग्मी छे एवे ग्रथे कोइने गुण न थाय, जे आगलबुद्धि विचार एवा आजे कोण रुडा कवि छे ? वली सर्वने भोग पडे एवा काव्य क्या छे ? एवु दुर्जन बोले माटे ए ग्रन्थ मर्यादानी स्थितिन उच्छेद करवानी

मति ठे तने जे टाले, कविना गुणने जाणे एवा जे सज्जन पुरुष तेनी व्यवस्था रुडी दीठी ॥ ४ ॥

अध्यात्मामृतवर्षिणीमपि कथामापीय सतः सुखं
गाहते विषमुद्गिरति तु खला वैषम्यमेतत्कुतः ॥
नद्दं वाद्भुतमिंदुदीधितिपिना: प्रीताश्चकोरा भृशं
किं न स्युर्वत चक्रवाकतरुणास्त्वत्यतम्वेदातुराः ॥५॥

अर्थः—अध्यात्मरूप अमृतवृष्टि एवी वार्त्ता, तेनु पान करीने सज्जन पुरुष सुख माने छे, अने जे खल लोक छे ते एवी वाणीने विषमपद कहीने विषरूप प्रगट करे छे, एमा शु आश्चर्य छे ? ते उपर दृष्टात कहे छे. जुओ चद्रकिरणना दर्शनथी अमृत पीने चकोर घणु रीझ पामे छे, तो शुं चद्र देखीने चकवो चकवी घणो खेद नथी पामता ? अपितु पामेज छे ॥ ५ ॥

किंचित्साम्यमवेक्ष्य ये विदधते काचेंद्रनिलाभिदा
तेषा न प्रमदायद्वा तनुधिया गूढा कवीना कृतिः ॥
ये जानति विशेषमप्यविषमे रेखोपरेखाशतो
वस्तुन्यस्तु सतामितः कृतधिया तेषा महानुत्सवः ॥६॥

अर्थः—जेम काइक सरखापणु देखीने काचमा अने इंद्रनीलमणिमा अभेदरूप ते एकपणु जाणे, तेवा अल्प बुद्धिवालाने मोटा कविनी गूढ अर्थनी रचना ते हर्षभणी न थाय जे प्राणी अविषम वस्तुने विषे एक रेखा, उपरेखा, अर्धरेखा इत्यादिक अशे करी वस्तुने विशेषपणे जाणे छे, एवा कुशल बुद्धिवाला सज्जनने आ ग्रन्थना जे भाव छे, ते महा ओच्छवरूप छे ॥ ६ ॥

पूर्णाध्यात्मपदार्थसार्थघटना चेतश्चमत्कारिणी
मोहच्छन्नदृशा भवेत्तनुधिया नो पंडितानामिव ॥
काकुव्याकुलकामगर्वगहनप्रौढाम वाक्चातुरी
कामिन्या, प्रसभ प्रमोदयति न ग्राम्यान् विदग्धानिव॥७॥

अर्थ.—जेमा पूर्ण अध्यात्म पदार्थ ते सहित घटना छे, पण जेनी दशा अज्ञाने करीने अगगणी छे एवा अल्पबुद्धिवालाना चित्तमा तो जे रीत पंडित लोक आरा ग्रथथी रीझ पाम ते रीतनो चमत्कार न उपजावे. तेहनो दृष्टात—जेम कामे व्यापी थकी, अतरगमा विषयसुखने इच्छती थकी, तथा बाह्यथी भय शोक धरती थकी, पुरुषने वल्लभ, हु रूपवती एम गर्व भरी थकी, रुडी वचननी चतुराइ करनार एवी जे चतुर स्त्री होय ते पण गामडीआ मूर्खने रीझवी न शके, पण पंडितने तो आनद पमाडे तेनी पेरे जाणवु ॥ ७ ॥

स्नात्वा सिद्धातकुंडे विधुकरविशदाध्यात्मपानीयपूरै-
स्ताप ससारदु.ख कलिकलुषमल लोभतृष्णा च हित्वा॥
जाता ये शुद्धरूपा. शमदमशुचिताचदनालिप्तगात्राः
शीलालकारसारा सकलगुणनिधीन्सज्जनास्तान्नमामः८

अर्थ.—सिद्धातरूप कुंडमा चद्र सरखा निर्मल अध्यात्म रूप पाणीना पूरमा स्नान करीने, भवदु खरूप जे ताप अने पापरूप जे मल तथा लोभ, ने तृष्णाने छाडीने, यथा शुद्धरूपे करी, वली समतारूप इंद्रियदमन जे पवित्र ते रूप चदने करी शरीर विलेपित छे जेनु, वली शीलरूप घराणे करी शोभता, सर्वगुणना निधान एवा जे सज्जन तेने अमे नमीए छीए

पायोदः पत्रबन्धैर्विपुलरसभरं वर्षति ग्रथकर्त्ता
प्रेम्णा पूरैस्तु चेतःसर इह सुहृदा प्लाव्यते वेगवद्भिः ॥
त्रुट्यंति स्वातयथाः पुनरसमगुणद्वेषिणा दुर्जनाना
चित्र भावज्ञनेत्रात् प्रणयरसवशान्निःसरत्यश्रुनीरम्॥९॥

अर्थः—जे ग्रथकर्त्ता मेघ सरखा छे ते पत्रबंधे करीने, बहु रसभरे, वरसता थका ते प्रेमरूप पूर ते सज्जनना चित्त-रूप सरोवरमा वेगे करीने भराय छे, वली असाधारण गुणना द्वेषी जे दुर्जन, तेना तो अतःकरणना बध तूटे छे, अने एवा विचित्रकारी जे ग्रथ तेना भावना जाण जे पुरुष छे ते विनये-प्रणीत रसे उज्ज्वला छे तेना नेत्रथी स्नेहरूप आसु झरे छे ॥९॥

उद्दामग्रथभावप्रथनभवयशः सचयः सत्कवीना
क्षीराब्धिर्मथ्यते यः सहृदयविबुधैर्मेरुणा वर्णनेन ॥
एतड्डिंडीरपिंडो भवति विधुरुचेर्मंडल विप्लुषस्ता
स्ताराः कैलासशैलादय इह दधते वीचिविक्षोभलीला॥१०॥

अर्थः—रुडा कविनी उद्दामके० प्रौढ एहवी जे ग्रथना भावनी रचना तेणे करीने उपनो जे यशनो समूह ते रूप क्षीर समुद्र ते सज्जन पंडिते वर्णनरूपी मेरुए करीने मथ्यो तेथी प्रगट्यु जे फीण, तेनो उज्ज्वलो चन्द्रमा थयो, वली तेने वलोवता जे छाटा उड्या तेना तारामडल थया, तथा कैलासादिक पर्वत थया, ए रीते ग्रथनो जश लीलाए करी प्रसर्यो ॥ १० ॥

काव्य दृष्ट्वा कवीना हृतममृतमिति स्वः सदा पानशकी
स्वेद धत्ते तु मूर्च्छा मृदुतरहृदयः सज्जनो व्याधुतेन ।

ज्ञात्वा सर्वोपभोग्य प्रसृमरमथ तत्कीर्त्तिपीयूपपूरं
नित्य रक्षाविधानानियतमतितरा मोदते च स्मिलेन ॥११॥

अर्थ —कविना काव्य देखीने अमृत हरायु, एम विचारीने देवताओ सदा अमृत पीवानी शका धरता थका खेद धरे छे शामाटे जे मृदु सुकोमल छे हृदय जेनु एवा जे सज्जन ते मस्तक धूणावीने जे सर्वने उपभोग्यपणे प्रसरतु एवु, कविनी कीर्त्तिरूप अमृतनु पूर तथा जेने निरतर रक्षारूप ढांकणु अत्यन्तपणे दीधु छे तेने जाणीने, देखीने हर्ष पामे छे ॥ ११ ॥

निष्पाद्य श्लोककुभ निपुणनयमृदा कुभकाराः कवींद्रा
दाक्ष्य चारोप्यस्मिन् किमपि परिचयात्तत्परीक्षार्कभासाम्
पक्क कुर्वंति याद गुणहरणमतिप्रज्वलद्दोपदृष्टि-
ज्वालामालाकराले खलजनवचनज्वालजिह्वे निवेश्य॥१२॥

अर्थ—रुडा नयरूप माटीवडे कवीश्वररूपी जे कुभकार ते श्लोकरूप घडो निपजावे, पछी जेम कुभकार ते घटने परिचयथी हाथे झाली, टपणे समारी तडके मूके तेम श्लोक घटने परिचय विचारीने पद अक्षर आघापाछा होय तने समारे एवी रीते तडके मूके, पछी पंडितने देखाडी परिपक्व करे, ते जाणे नीभाडो देखाडे छे हवे दुर्जन जाणे जे ए पडित छे, तेथी माहरा गुण हरण थशे, एम बलतो थको पडितनी जोडेली कलामा दोप काढवानी दृष्टिरूप आगमनी ज्वालानी श्रेणि तेणे करी निकराल एवी पोतानी नजररूप अग्नि, वली ते दुर्जननां जे वचन ते जाणे निंदारूप अग्निनी ज्वाला तेणे करी घडेली जीभ ते

वेडु अग्निना वचमां ग्रथरूप घडो मूकीने पाको करे छे, अने नीभाडानी राख थाय, घटमूल पोसाय छे ॥ १२ ॥

इक्षुद्राक्षारसौघः कविजनवचन दुर्जनस्याग्नियन्त्रा-
न्नानार्थद्रव्ययोगात्समुपचितगुणे मद्यता याति सद्यः ॥
सतः पित्वा यदुच्चैर्दधति हृदि मुद घूर्णयत्यक्षियुग्म
स्वैरं हर्षप्रकर्षादपि च विदधते नृत्यगानप्रबध ॥ १३ ॥

अर्थः—शेलडी अने द्राक्षना रसना समूह सरखु कविनुं वचन छे, पण दुर्जनरूपी अग्निनु जे यत्र छे ते मध्ये नाना प्रकारना द्रव्यना योगथकी रुडी रीते गुणपुष्टिने पामतु एहवु कविनु जे वचन ते, ताजा मदिरापणाने पामे छे, ते मदिराने हर्षे करी सज्जन पुरुष पान करीने हृदयमा हर्ष धरे छे, तथी बे आखो घुर्णायमान थाय छेः स्वइच्छाये हर्षना कल्लोलथी पण श्लोकनो भावार्थ पामीने नाचे छे, गाय छे॥ १३ ॥

नव्योऽस्माकं प्रबधोऽप्यनणुगुणभृता सज्जनाना प्रभावात्
विख्यात स्यादिति सुहितकरणविधौ प्रार्थनीया न किं न ॥
निष्णाताश्च स्वतस्ते रविरुचयइवाभोरुहाणा गुणाना-
मुल्लासेऽपेक्षणीयो न खलु परस्या कापि तेपा स्वभाव ॥१४

अर्थः—अमारो ग्रथ नवो छे तोपण महागुणवत
सज्जन तेना प्रभावथकी विख्यात थशो । ए रीते रुडा
अर्थे अमारे ए सज्जनने प्रार्थना करवा योग्य नथी
छे ज जेम कमलना गुणने ... करवाने सूर्यना
पोताथकी जे प्रविण छे एवा सज्जनना जे
पररुचिभूणी निश्चे अपेक्षा नथी ॥ १४

यत्कीर्त्तिस्फूर्त्तिगानावहितसुरवधूवृंदकोलाहलेन
प्रक्षुब्धस्वर्गसेतो' पतितजलभरैः क्षालित' शैत्यमेति ॥
अश्रान्तभ्रान्तकान्तग्रहगणकिरणैस्तापवान् स्वर्णशैलो
भ्राजन्ते ते मुनीन्द्रा नयविजयबुधा सज्जनव्रातधुर्याः ॥१५॥

अर्थ.—हवे पोताना गुरुनो वर्णव करे छे जेनी प्रसरती जे कीर्त्ति तेने गावाने सावधान एटले स्वर्गमां देवतानी अप्सराओ जे छे ते श्रीनयविजयजीना गुण गाय छे, तेना गीत शब्दना कोलाहले करीने क्षोभना पामी एवी जे स्वर्ग नदी तेनी पाज भागी, तेथी पड्युं जे जल तेना समूहे करी पखाल्यो जे मेरु पर्वत, तेणे करी मेरुपर्वत पण शीतलताने पाम्यो छे नहि तो अहर्निश प्रदक्षिणाये भमता जे ग्रहमंडल तेना किरणे करी तापवत मेरु हतो, ते हमणा शीतल थयो थको शोभे छे एवा ते मुनींद्र श्रीनयविजयनामा पडित जे सज्जन पुरुषोना समूहमां वडेरा हता ॥ १५ ॥

चक्रे प्रकरणमेतत्तत्पदसेवापरो यशोविजय. ॥
अध्यात्मधृतरुचीनामिदमानंदावह भवतु ॥ १६ ॥

अर्थ.—तेना चरणना सेवक उपाध्याय श्रीयशोविजयजी ए प्रकरण करता हवा ते अध्यात्मने विषे जेणे रुचि धरी छे, एवा प्राणीने रुचि सहित ए प्रकरण आनद सुखनु आपनार होजो ॥ १६ ॥

॥ इति सज्जनस्तुतिअधिकार एकविंशतितम' समाप्त' ॥

॥ इति महोपाध्याय श्रीकल्याणविजयगणि शिष्यमुख्य पंडित
श्रीलाभविजयगणि शिष्य मुख्य पंडित श्रीजितविजयगणि
सतीर्थ्यमुख्य पंडित श्रीनयविजयगणी चरणकमलचंचरी-
केण पंडित श्रीपद्मविजयगणिसहोदरेण पंडित श्री
यशोविजयेन विरचिते अध्यात्मसारप्रकरणे
समर्थ्य समाप्तं ॥

॥ इति श्रीमत्तपागच्छे भट्टारकश्रीविजयसिंहसूरीश्वर
शिष्य पंडित श्रीसत्यविजयगणि शिष्य पंडित श्री
कर्पूरविजयगणि शिष्य पंडित श्रीक्षमाविजय-
गणि शिष्य पंडित श्रीयशोविजयगणि शिष्य
पंडित श्रीशुभविजयगणि शिष्य पंडित
श्रीवीरविजयगणिभिरध्यात्मसार
ग्रंथस्य वार्त्तिकरूपो मुनि कीर्त्ति-
विजयस्यानुग्रहाय घटयार्थं
कृत संवत् १८८१ चैत्र
शुक्लपक्षे पूर्णिमाया-
मिति श्रेयः ॥